ISSN 0975-5217

भैरवी (दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका) (खण्ड 25 अंक 2)

ISSN 0975-5217
UGC-CARE LIST (GROUP-I)
वर्ष 2023

भैरवी

(दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

(खण्ड 25 अंक 2, जनवरी-जून, 2023)

मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

ISSN 0975-5217
UGC-Care list (Group-I)

भैरवी

(दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

(Volume-25, Issue-2, January-June, Year-2023)

मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित कला संकाय
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004

भैरवी (दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

ISSN 0975-5217

UGC-Care list (Group-I)

(Volume-25, Issue-2, January-June, Year-2023)

प्रधान सम्पादक

प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण

प्रकाशक : मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

मूल्य

इस अंक का मूल्य : 400/- रुपये

व्यक्तियों के लिए :

वार्षिक : 800/- रुपये / त्रैवार्षिक 2400/- रुपये

पंचवार्षिक 4000/- रुपये / आजीवन : 15000/- रुपये

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 850/- रुपये / त्रैवार्षिक 2500/- रुपये

पंचवार्षिक 4500/- रुपये / आजीवन : 16000/- रुपये

(केवल मनी आर्डर / चेक / बैक ड्राफ्ट से)
(दरभंगा से बाहर के चेक में 40 रुपये अधिक जोड़ें)

''भैरवी'' विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित एवं UGC-Care list (Group-1) में शामिल है। साथ ही यह Peer Reviewed Refereed Visual and Performing Arts Research Journal है।

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद दरभंगा न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

मुद्रक : विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद-201 102

Patron

Prof. Chaman Lal Verma
Ex. Dean and Head
University Department of Music
Himachal Pradesh University, Shimla

Prof. Pt. Ritwik Sanyal
Top Grade Dhrupad Artist
Ex. Dean, Faculty of Performing Arts
Banaras Hindu University, Varanasi

Prof. Pt. Sahitya Kumar Nahar
Vice-chancellor
Raja Maan Singh Tomar Sangeet Vishwavidyalaya
Gwalior, Madhya Pradesh

Editorial Board

Chief Editor

Prof. Pushpam Narain
Ex. Dean, Faculty of Fine Arts
Head, University Department of Music and Dramatics
Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

Editorial/ Advisory Board

1. Prof. K. Shashi Kumar
   Dean, Faculty of Performing Arts
   Banaras Hindu University, Varanasi
2. Prof. Snehashish Janpriya Das
   Head. Department of Music
   Women's College Jag Chowk, Amarawati, Maharashtra
3. Dr. Ashwani Kumar Singh
   Associate Prof, Department of Music
   Faculty of Performing Arts. M.S. University, Baroda, Gujrat
4. Dr. Shobhit Kumar Nahar
   Asst. Prof. Instrumental Music
   Women's College
   Banaras Hindu University, Varanasi

Peer Review Committee

1. Prof. Om Prakash Bharti
   Head, Department of Performing Arts
   Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya,
   Wardha, Maharashtra

2. Dr. Rajesh Kelkar
   Dean, Faculty of Performing Arts
   Maharaja Siyaji Rao University, Baroda, Gujrat

3. Prof. Umesh Kumar
   Head, Department of Hindi
   B.M.A Callege Baheri, Bihar

4. Dr. Amar Kant Kuwar
   Head, Department of Hindi
   M.L.S.M College, Darbhanga, Darbhanga, Bihar

5. Dr. Santosh Dattatrayrao Parchure
   Head, Department of Music
   S.P.H. Women's College, Malegaon, Nashik, Maharashtra

6. Dr. Shashank S. Maktedar
   Associate Prof. and Officiating Principal
   Goa College of Music, Panji, Goa

7. Dr. Ved Prakash
   University Department of Music and Dramatics
   Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

8. Dr. Ramshankar
   Faculty of Music and Performing Arts
   B.H.U., Varanasi

9. Dr. Pallavi Shailesh Meshram
   Associate Prof. In Applied Arts
   Bharti Vidyapeeth' Collge of Fine Arts, Pune, Maharashtra

जपात्कोटि गुणं ध्यानं ध्यानात् कोटि गुणं लय।
लयात्कोटि गुणं गानं गानात् परतरं नाहि।।

(जप से करोड़ों गुणा प्रभावी ध्यान है, ध्यान से करोड़ गुणा लयात्मकता प्रभावशाली है। लय प्रधान जप से करोड़ गुणा प्रभाव गान का है और साधना के लिए गान अर्थात् संगीत से उत्तम उपाय अन्य कोई नहीं।)

'Music is the bridge of peace and love'

'संगीत दो देशों के बीच शान्ति और प्रेम का सेतु है।'

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

संपादक की कलम से ...

प्राचीनकाल से ही भारतीय संगीत प्रत्यक्षत: धर्म से जुड़ा हुआ है। चूँकि सभी धर्मों का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति है और अन्य कलाओं की भाँति संगीत कला का भी चरम लक्ष्य परम आनन्द और पूर्ण पार्थिव अवस्था की अनुभूति कराना है। मोह-माया रूपी भवसागर से मुक्ति, आत्मा का परमात्मा से मिलन, परम शान्ति तथा अन्तत: मोक्ष प्राप्त करना ही उसका प्रमुख ध्येय माना गया है।

संगीत को साक्षात् ईश्वर का पर्याय भी माना गया है। आध्यात्मिक उद्‌गारों के प्रकटीकरण का माध्यम मानकर संगीत की उपासना भी की गई है। ईश भक्ति की कोई तार्किक चर्चा नहीं अपितु मन: स्थिति, आत्मिक अनुभूति एवं आस्था का विषय है एवं इस अवस्था की अनुभूति हेतु संगीत सर्वाधिक सबल माध्यम माना गया है।

प्राचीन काल में वेदों द्वारा ईश्वर प्राप्ति के तीन मार्ग निश्चित किए गए- (1) ज्ञान मार्ग, (2) कर्म मार्ग, और (3) उपासना मार्ग। इनमें से उपासना मार्ग अत्यन्त सहज तथा ईश्वर से सीधा सम्पर्क स्थापित करने का सरल मार्ग है। संगीत ने उपासना मार्ग को ही अपनाया। संगीत से अपने अलौकिक प्रभावों को अनुभव किया गया, जिसे स्वानुभूति द्वारा परमानन्द की अवस्था कहा गया।1

संगीत 'रसो वै स:' की उपासना है। यह परम आनन्द में डूबने का सहज माध्यम है। संगीत ईश्वरी सुन्दरतम् सृष्टि की मधुरतम अभिव्यक्ति है। आराध्य के प्रति पूर्ण तन्मयता के लिए यह भजन-कीर्तन के रूप में प्रयुक्त हुआ है। भारतीय संगीत अपने इष्ट की भक्ति का एक सुन्दर माध्यम है। यह मात्र मनोरंजन नहीं है, यह सगुण से निर्गुण, अपूर्ण से पूर्ण, भौतिक से भौतिकेतर की ओर एक अनन्त एवम् सुमधुर यात्रा है। संगीत नादब्रह्य से एकाकार हो जाने की ऊर्ध्वमुखी साधना है, संगीत में डूबा संगीतकार नादबह्य ही उपासना, अभ्यर्थना करता है और उसके लिए राग-रागिनियाँ, ताल, तान, स्वर, आरोह-अवरोह आदि अभिव्यक्ति मात्र हैं। संगीत की निर्झरिणी तो अन्तस् से बहती हुई ब्रह्य तक पहुँचती है। इसी आधार पर प्रत्येक भारतीय साधक कलाकार अपनी कलाकृति या रचना की उत्कृष्टता में केवल परमात्मा को देखता है। इसमें वह सांसारिकता से ऊपर उठकर ब्रह्य-स्वाद-सहोदर-संगीतानन्द को प्राप्त करता है। यह संभजनीय गुण ही सत्य है, सत्य ही शिव है और वही अनन्त सौन्दर्य का स्वामी है। इसीलिए संगीत को ब्रह्य विद्या कहा गया है और ईश्वर तथा उसकी

महान् कृति-प्रकृति से उसका सामंजस्य स्थापित किया गया है। संगीत से सद्भावना तथा साधु-भाव उत्पन्न होते हैं, जो कि धर्म के पावन स्तम्भ से बुनियादी घटक हैं।

शास्त्रीय संगीत व्यापक शब्द ब्रह्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति की विद्या है। इसमें धर्म एवम् अध्यात्म के गुह्य रहस्य आवृत हैं, अत: यहाँ संगीत को देवताओं से उद्भूत और परम पावन माना गया है। नटराज आशुतोष नृत्य के आदि देवता माने गए हैं। शिव-पार्वती का ताण्डव पहले संहार और फिर सृजन की प्रक्रिया प्रस्तुत करता है। विघ्नविनाशक गणेश अवनद्ध वाद्य मृदंग के प्रथम वादक थे तो विद्या, बृद्धि एवं संगीत की अधिष्ठात्री माँ सरस्वती वीणावादिनी तथा संगीतज्ञों की आराध्या कहलाईं। देवर्षि नारद ने वीणावादन करते हुए भगवान नारायण का दिव्यगान कर पूरे विश्व को रसप्लावित किया तो वेणुवादक भगवान श्रीकृष्ण ने मधुर मन्द वंशी की स्वच्छन्द, निर्मल लहरों से सकल सृष्टि को संगीतमय आनन्द की रिमझिम फुहार से आप्लावित किया। यही नहीं, इससे चित्र एवम् काव्य-कला की नूतन सृष्टि भी हुई। भारतीय संगीत अध्यात्म विद्या में गहराई से समाहित है।

हम कह सकते हैं कि मानव जीवन के तीन शाश्वत मूल्य-सत्यम,शिवम एवं सुंदरम धर्म के आधार स्तम्भ हैं। सभी धर्मों का अंतिम लक्ष्य मानवीय मूल्यों से परेईश्वर में विलीन होना है। संगीत का ध्येय भी इसी चरमोत्कर्ष को प्राप्त करना है। संगीत संदर्भित कई बातें चर्चा योग्य हैं। फिलहाल भैरवी शोध पत्रिका के पच्चीसवें अंक का भाग -2 वर्ष 2023 आपके हाथ में है। सुधि पाठकगण त्रुटियों के लिए सहृदय क्षमा करेंगे। इसी आशा के साथ।

प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण
संपादक
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा-846004
मो. 09430063265
ईमेल : *npushpamji@gmail.com*

अनुक्रम

संपादक की कलम से ... 9

1. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत किशोर विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता एवं उनके सामाजिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन — रबिन्द्र पासवान, प्रो. नवीन रंजन रवि 15
2. जनजीवन का लोकसंगीत — डा. प्रतिभा सक्सेना 20
3. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका संपत्तिशास्त्र — कविता 23
4. मिथिलांचल के लोकगीतों में राम का स्वरूप — कुमार गौरव मिश्रा 28
5. किशोर मन पर सांगीतिक संस्कार का प्रभाव का अध्ययन — ललित कुमार 34
6. नुक्कड़ नाटक के उद्देश्य एवं स्वरूप — मकसूदन कुमार अभिनेता 41
7. भाषा के सामाजिक संदर्भ — डॉ ममता चावला 47
8. आधुनिक समय में गंधर्ववेद की उपादेयता — डॉ. नबीता जम्वाल 52
9. सुधांशु शेखर चौधरी और उनकी बहुचर्चित पुस्तक 'सन्दर्भ' — नारायण झा 57
10. मौसमी लय: संगीत शैलियों में गीतों में ऋतुओं का प्रतिनिधित्व का अध्ययन — ललन कुमार, पूनम कुमारी अग्रवाल 62
11. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सितार के अवयवों का स्वरूप — प्रियंका गुप्ता 67
12. ध्रुपद गायन शैली का सांगीतिक सौन्दर्य — रेखा कुमारी 72
13. मिथिला-मैथिली के सवाल पर कर्पूरी ठाकुर — सत्यनारायण प्रसाद यादव 76
14. संगीत में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) की उपयोगिता — सिद्धार्थ मिश्रा 83
15. कमलेश्वर के उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी संवेदना — सुधा कुमारी चन्द्रा, डॉ. शाहिद हुसैन 89
16. लोकगीतों की परम्परा एवं लोकजीवन में इनका महत्व — कंचन कुमारी, डॉ पूनम कुमारी अग्रवाल 93
17. संगीत एवं मनोविज्ञान का अंत:संबंध — डॉ.चंद्रिका कुमारी 99

18. महाकवि विद्यापति एवं उनकी रचनाएं — प्रो.पुष्पम नारायण, पूजा कुमारी 106

19. वाग्गेयकार पं. रामाश्रय झा 'रामरंग' की सांगीतिक यात्रा — राजन कुमार, डॉ. चंद्रनाथ मिश्र 112

20. भरतमुनि संगीत — इतिश्री साहू 119

21. प्रागैतिहासिक संगीत - (ई.पू. 3000) — डॉ. श्रुति शाश्वत उपाध्याय 127

22. ग्वालियर घराने के पुरोधा पं. राजाभैया पूछवाले का सांगीतिक योगदान — यश संजय देवले, डॉ. संतोष पाठक 131

23. बनारस घराने के प्रसिद्ध तबला वादक पं कुमार बोस जी की स्वतंत्र तबला वादन शैली — आनंद कुमार,प्रोफेसर प्रवीन उद्धव136

24. A Comparative Study of Offline & Online Modes Of Learning — Ms. Anupama Bhati, Prof. (Dr.) Parshuram Dhaked 140

25. NEP 2020 & Hybrid Learning & its Effectivenessin The Academic Achievement of The Secondary School Students of Ahmedabad District — Deepa Patel, Prof. (Dr.) Rachna Mishra 149

26. "Transforming Traditions: The Evolution of Women's Status in the Shimla Hill States from Colonial times to Current times" — Professor Devi Sirohi, Poonam 157

27. A Concise Discussion on Saarang & Malhaar Anga Under Thaat Kafi — Mitali Mukherjee, Prof.(Dr) Kiran Singh 165

28. Enhancing Environmental Education - Blended Learning in Ahmedabad's Primary Schools — Ms. Neelam Trivedi, Prof. (Dr.) Parshuram Dhaked 170

29. Entrepreneurship Education : Issues and Challenges — Ms. Reena, Dr Akanksha Srivastava 179

30. Resisting Oppression: Feminist Themes in the Play 'Maa bhoomi' — Dr. Pejjai Nagaraju, Dr. Siva Prasad Tumu 192

31. Guitar and its use in Indian Music — Pinak Nandi, Dr. Samidha Vedabala 211

32. Education and Empowerment of Women in the Valley Districts of Manipur Dr. Pukhrambam Chitra Devi 225

33. Intersectionality and Gender : Understanding the Double Burden for Dalit Women Renu Singh, Dr. Shivani Vashist 232

34. Manjusha Art: Painting a Tale Dr Shubhra Sinha 243

35. Impact of 'laya', 'laykari' and 'jati' in sattriya dance and music tradition Sreemoyee Borah 248

36. Navigating the Impact: Exploring the Implementation of the prevention of Sexual Harassment (POSH) at Workplace Act 2013 and its effects on Employees and Employers of Higher Educational Institutions MS.Tanu Arora, Dr. Sandhya Rohal 259

37. Human Ethical Values in Education Vibha Kumari, Dr. Jay Prakash Singh 268

38. Pala performing art of India based on the Ramayana Theme:AStudy Dr Tridib kr Goswami, Himanshu Sharma, Dr Jagadish Patgiri 276

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत किशोर विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता एवं उनके सामाजिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

रबिन्द्र पासवान*, **प्रो. नवीन रंजन रवि

सार-संक्षेप

संवेगात्मक परिपक्वता और सामाजिक समायोजन विद्यार्थी जीवन से ही आना चाहिए। यदि विद्यार्थी में सकारात्मक संवेगात्मक परिपक्वता एवं सामाजिक समायोजन नहीं है तो सामाजिक परिस्थिति में उत्पन्न होने वाले द्वंद्व एवं मन के भीतर चल रहे द्वंद्व के परिणामस्वरूप वह विघटन का शिकार हो जाता है। लेकिन यदि कोई संवेगात्मक परिपक्वता और सामाजिक समायोजन के साथ वैज्ञानिक सोच अपनाकर अपनी समस्याओं का समाधान कर ले तो वह सफलता की सीढ़ियां चढ़ने लगता है। प्रत्येक समस्या के समाधान के लिए वह 'क्या', 'क्यों', 'कहां', 'कैसे', 'कौन' आदि प्रश्नों के उत्तर खोजता है, फिर उपलब्ध सीमित साधनों से ही सफलता प्राप्त करने का प्रयास करता है। उसकी हताशा, क्रोध आदि को कम करने का उपाय ढूंढता है। यह कहा जा सकता है कि इस छात्र अवस्था में संवेगात्मक परिपक्वता और सामाजिक समायोजन के बिना भावी जीवन की तैयारी की कल्पना करना बेकार होगा। जिस प्रकार मानसिक परिपक्वता के अभाव में नया ज्ञान प्राप्त करना कठिन होता है, उसी प्रकार संवेगात्मक परिपक्वता और सामाजिक समायोजन के अभाव में भविष्य की सही नींव नहीं रखी जा सकती।

शब्द कुंजी: *किशोरावास्था, संवेगात्मक परिपक्वता, सामाजिक समायोजन, उपलब्धि आदि।*

प्रस्तावना

शिक्षा मानवीय गुणों को विकसित करने की प्रक्रिया है। इसके माध्यम से मनुष्य की अंतर्निहित क्षमताओं का विकास किया जाता है और उसे सामाजिक रूप से स्वीकार्य बनाया जाता है। शिक्षा अनुभव और कौशल के माध्यम से छात्रों की जन्मजात शक्तियों, विशेषताओं, रुचियों और प्रवृत्तियों में परिवर्तन करती है और स्वभाव, मानसिक स्तर, रुचि, बौद्धिक क्षमता, व्यक्तित्व आदि का विकास करती है। उच्च माध्यमिक स्तर में छात्रों की अवस्था किशोरावस्था की होती है। इस समय किशोर अपने शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक परिवर्तनों को नियंत्रित करके खुद को समायोजित करने का प्रयास करता है। शिक्षा ही

*शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

**प्राचार्य, मिल्लत शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, मधुबनी

छात्रों को सभ्य बनाती है तथा उचित आचरण करना सिखाती है। अच्छे समायोजन वाला छात्र भविष्य में सफल होता है।

किशोरावस्था के दौरान शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक संतुलन बिगड़ने लगता है और समायोजन संबंधी कई समस्याएं भी उत्पन्न होने लगती हैं। इस समय उसके शरीर में होने वाले बदलावों के कारण वह विद्यालय में भी अपने दोस्तों, सहपाठियों और शिक्षकों के प्रति असमायोजित महसूस करता है। इस अवस्था में भावनाएँ अनियंत्रित होती हैं और उनमें कई उतार-चढ़ाव आते हैं, इसलिए ऐसी अवस्था में किशोरों के लिए अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखना और खुद को समायोजित करना बहुत मुश्किल होता है। समायोजन क्षमता एक जटिल मनोवैज्ञानिक अवधारणा है और इसका विकास जीवन में धीरे-धीरे परंतु निरंतर होता रहता है। परिवार में सकारात्मक वातावरण के माध्यम से किशोरों में उच्च समायोजन क्षमता विकसित की जा सकती है। परिवार के वातावरण में तालमेल बिठाने की क्षमता एक ऐसी अवधारणा है जो किशोरों के लिए उनकी वर्तमान चुनौतियों और कठिन परिस्थितियों के साथ उचित संतुलन स्थापित करके एक कुशल और सफल जीवन जीने के लिए प्रेरणा का स्रोत बनती है। परिवार के बाद विद्यालय ही एकमात्र ऐसा कारक है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किशोरों के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और नैतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अत: माता-पिता के साथ-साथ शिक्षकों का भी यह विशेष दायित्व है कि वे किशोर विद्यार्थियों के समक्ष ऐसे तथ्य, कारक, अनुभव, कार्य एवं व्यवहार प्रस्तुत करें जिससे वे देश के भावी निर्माता बन सके।

प्रत्येक मनुष्य अपनी संवेग से जुड़ा होता है। हालाँकि उनकी संवेगात्मक अभिव्यक्तियाँ उन स्थितियों के कारण भिन्न हो सकती हैं जिनका वे अपने दैनिक जीवन में सामना करते हैं। हर इंसान के जीवन में संवेग महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह कहना उचित होगा कि संवेगात्मक संघर्ष के अनुभव के बिना किसी भी इंसान का जीवन बेकार हो जाता है। इसका कारण यह है कि संवेग रोमांच के साथ-साथ उत्साह भी लाती है जो किसी के जीवन को आनंदमय और रंगीन बनाती हैं। संवेग मानवीय कार्यप्रणाली का आवश्यक पहलू है। यह व्यक्तिगत अनुभव के आवश्यक क्षेत्रों में से एक है जो विभिन्न स्थितियों, संज्ञानात्मक और साथ ही शारीरिक के बीच बहु-पक्षीय बातचीत के कारण होता है।[1] प्रत्येक सफल व्यक्ति के पीछे उनकी संवेग पर प्रबंधन का कौशल होता है, साथ ही संवेग को बढ़ाने वाली स्थितियों को संभालने के लिए व्यावहारिक कौशल और अन्य लोगों को प्रबंधित करने का उनका कौशल होता है।[2] संवेगात्मक रूप से परिपक्व व्यक्ति का जीवन उनके नियंत्रण में होता है।[3] किसी भी संवेग का आशावादी या निराशावादी दृष्टिकोण किसी भी व्यक्ति द्वारा सामना की जाने वाली परिस्थिति पर निर्भर करता है। मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में संवेग प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करती हैं। किसी व्यक्ति की सोच, महत्वाकांक्षा, कार्य और अपेक्षाएं संवेग से प्रभावित होती हैं।[4] संवेग मनुष्य के व्यवहार में मार्गदर्शक एवं प्रत्यक्ष के रूप में सहायता करती हैं। यह व्यक्ति के जीवन के सभी चरणों का मार्गदर्शन भी करता है। संवेग उत्तेजनाओं की एक संपूर्ण स्थिति है जो शारीरिक क्रियाओं की अस्थिर स्वरूप से जुड़ी होती है। यह उत्तेजना विशेष स्तर की अनुभूति के साथ चेतना प्रदान करती है और व्यक्ति को कार्यों में स्थानांतरित होने के लिए प्रेरित करती है। बचपन में संवेग का असंतुलन प्रत्यक्ष रूप से विकृत और असमायोजि व्यक्तित्व में बदल सकता है।

सामाजिक समायोजन दूसरों द्वारा शोषण से बचने के लिए अनुकूल संबंध विकसित करने की क्षमता है। समुदाय में प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को जिस भी वातावरण में पाता है, उसमें समायोजित होने के लिए अपनी पूरी कोशिश करता है, सामाजिक समायोजन को दूसरों के साथ सकारात्मक संबंध विकसित करने के साथ-साथ अन्य लोगों से अलग होने की क्षमता के रूप में वर्णित किया जाता है। सामाजिक समायोजन को व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण में एक मौलिक मनोवैज्ञानिक पहलू के रूप में पहचाना गया है। छात्रों में अनुकूलन की क्षमता होनी चाहिए, जो उन्हें जिम्मेदार नागरिक के रूप में विकसित करने में सक्षम बनाएगी। परिणामस्वरूप, ये सभी किशोर छात्रों के लिए समान रूप से उपयुक्त हैं। वे इस अवधि में तनाव और तूफ़ान सहन नहीं कर सकते क्योंकि वे पारस्परिक संबंधों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। वे बस अपने जीवन में संघर्ष करते हैं और चुनौतियों का सामना करते हैं। वे खुद को दूसरों से अलग कर सकते हैं और कभी-कभी नकारात्मक विचारों और व्यवहार में लिप्त हो सकते हैं। परिणामस्वरूप, आज के परिवेश में सामाजिक समायोजन महत्वपूर्ण है।

समाज में समायोजित करने की तकनीकों को एक प्रक्रिया के रूप में समझाया जाता है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति अनुकूलन की गुणवत्ता या उसकी सफलता या विफलता की परवाह किए बिना खुद को और अपने परिवेश को समायोजित करता है। यह व्यवहार का एक स्वरूप है जो रोजमर्रा की स्थितियों जैसे घर, स्कूल, नौकरी, बड़े होने और उम्र बढ़ने पर देखा जाता है। यह मौलिक इच्छाओं को नियंत्रित करने, अपनी क्षमताओं पर भरोसा करने और वांछित परिणाम प्राप्त करने में सहायता करता है। परिणामस्वरूप, समायोजन स्व-निर्देशित बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक, शारीरिक और व्यावसायिक विकास और प्रगति को प्रोत्साहित करता है। वह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया जिसके द्वारा लोग दैनिक जीवन की माँगों और बाधाओं का प्रबंधन या उनसे निपटते हैं, समायोजन कहलाती है। यह अनुरूपता का प्रतीक है और इसका संबंध इस बात से है कि एक व्यक्ति अपने परिवेश और जीवन की मांगों के साथ कैसे तालमेल बिठाता है।[5]

परिवार का बच्चे के समायोजन, पारिवारिक मूल्यों और कई अन्य कारकों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। परिवार एक सामाजिक संगठन है जिसमें व्यक्ति ईमानदार दृष्टिकोण, मूल्यों, स्नेह और कल्याण के साथ-साथ सदस्यों के अनुकूलन और सफलताओं से बंधे होते हैं।[6]

किशोरावस्था की अवधि के दौरान भावनाओं में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं जैसे मूड और भावनाओं में परिवर्तन, भावनात्मक उतार-चढ़ाव जिसके कारण आंतरिक संघर्ष, दूसरों के प्रति संवेदनशीलता, आत्म-चेतना आदि होती है। किशोरावस्था के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं जैसे पहचान की तलाश करना, अधिक स्वतंत्रता की तलाश, घर और स्कूल दोनों में जिम्मेदारी की तलाश करना, जीवन में नए अनुभवों की तलाश, दोस्तों द्वारा अधिक प्रभाव डालना, यौन पहचान विकसित करना और तलाशना। इन परिवर्तनों के कारण किशोरों को अक्सर अपने दैनिक जीवन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। किशोर सही और गलत के बारे में अधिक सोचते हैं और मूल्यों और नैतिकता का एक मजबूत समूह विकसित करते हैं। वे अपने कार्यों, निर्णयों और परिणामों के लिए स्वयं जिम्मेदार होना भी सीखते हैं।

प्रस्तुत शोध सुनिश्चित उद्देश्यों एवं निर्धारित उपकल्पनाओं के आधार पर संपादित किया गया

है। उच्च माध्यमिक स्त्र के कुल 250 छात्र एवं 250 छात्राएँ अर्थात् कुल 500 विद्यार्थियों का चयन सरल यादृच्छिक लॉटरी न्यादर्श विधि द्वारा पश्चिम चंपारण जिला के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों से किया गया है तथा सिंह एवं भार्गव द्वारा निर्मित संवेगात्मक परिपक्वता मानी का प्रयोग कर शोध कार्य पूर्ण किया गया है। वर्तमान शोध के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष निम्नलिखित है:

- उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की संवेगात्मक परिपक्वता में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
- उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं के समायोजन में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
- उच्च माध्यमिक स्तर की छात्राओं की संवेगात्मक परिपक्वता व समायोजन में सार्थक अंतर नहीं है।
- उच्च माध्यमिक स्तर की छात्राओं की संवे गात्मक परिपक्वता व व्यक्तित्व में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
- शहरी उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत उच्च तथा निम्न संवेगात्मक परिपक्वता वाले छात्रों का उनके सामाजिक समायोजन के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं पाया गया है।
- शहरी उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत उच्च तथा निम्न संवेगात्मक परिपक्वता वाले छात्राओं का सामाजिक समायोजन के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं पाया गया है।
- ग्रामीण उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत उच्च तथा निम्न संवेगात्मक परिपक्वता वाले छात्रों का उनके सामाजिक समायोजन के बीच महत्वपूर्ण सहसंबंध नहीं पाया गया है।
- ग्रामीण उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत उच्च तथा निम्न संवेगात्मक परिपक्वता वाले छात्राओं का उनके सामाजिक समायोजन के बीच महत्वपूर्ण सहसंबंध नहीं पाया गया है।

निष्कर्ष

आज की प्रतिस्पर्धी दुनिया में कठिनाइयों और चिंताओं के बिना आराम से जीवन जीना बहुत कठिन है। जीवन की जटिलताएँ दैनिक जीवन में चिंता, तनाव, निराशा और संवेगात्मक परेशानी जैसी कई मनोदैहिक समस्याओं को जन्म देती हैं। इन स्थितियों से निपटने के लिए उच्च स्तर की संवेगात्मक परिपक्वता हासिल करना आवश्यक है। संवेगात्मक परिपक्वता व्यक्तित्व के स्वरूप का प्रभावशाली पहलू नहीं है बल्कि यह किशोरों के विकास की गति को नियंत्रित करने में मदद करता है। परिपक्व संवेगात्मक व्यवहार का विचार किशोर के सामान्य संवेगात्मक विकास से जुड़ा है। यदि हम संवेगात्मक रूप से परिपक्व किशोरों के संबंध में बात करें तो यह देखा जा सकता है कि उनमें स्वयं के साथ, अपने परिवार के सदस्यों, विद्यालय में सहकर्मी समूहों, अपने समाज और जिस संस्कृति में वे रहते हैं, उसके साथ प्रभावी ढंग से तालमेल बैठाने की क्षमता होती है। यह अवश्य कहा जाना चाहिए कि परिपक्वता का अर्थ न केवल इस प्रकार के दृष्टिकोण और कार्य करने की क्षमता है, बल्कि उनका पूरी तरह से आनंद लेने की क्षमता भी है। मनुष्य अपने जन्म से संवेगात्मक रूप से परिपक्व नहीं होता है बल्कि यह उसके रिश्तों के माध्यम से परिपक्व होता है जिसमें माता-पिता की परवरिश और जीवन के अनुभव शामिल होते हैं। जाहिर है कि संवेगात्मक परिपक्वता वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्तित्व शारीरिक और आंतरिक

व्यक्तित्व दोनों में संवेगों, स्वास्थ्य की बेहतर समझ के लिए लगातार प्रयास कर रहा है। अत: किशोरवय में कुशल मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। माता-पिता एवं शिक्षक यदि किशोरवय को कुशलतापूर्वक मार्गदर्शन करते हैं तो उनमें उच्च संवेगात्मक परिपक्वता आती है तथा उनका बेहतर सामाजिक समायोजन भी होता है।

संदर्भ:

1. मार्गन, सी. एवं अन्य (1999), इन्ट्रोड्यूश टू साइकोलोजी, टाटा मैकग्राहिल, पृ. 341
2. सिंगारवेलू, एस. (2007) इमोशनल इंटेलिजेन्स ऑफ स्टूडेन्ट टिचर एट प्राइमरी लेवल, एआईएईआर, 07, पृ. 49-51
3. गोलमेन, डी, (1995), इमोशनल इंटेलिजेन्स, बेनटॉम बुक्स, न्यूयार्क, पृ. 121
4. चैमर्बलेन, भी. सी. (1960) एडोलसेन्स टू मैच्यूरिटी, द बेडली हेड, लंदन, पृ. 78
5. बोरिंग एंड लैंग फेल्ड (1948) फाउन्डेशन ऑफ साइकोलोजी, जॉन विले एण्ड सन्स, न्यूयार्क, पृ. 97
6. ओगेमा, ओ. एच. (2012) ए स्टडी ऑफ द इमोशनल इंटेलिजेन्स एण्ड लाइफ एडजस्टमेन्ट ऑफ सिनियर सेकेन्डरी स्कूल स्टूडेन्ट, इंटरनेशनल एकेडमीक कान्फ्रेन्स, यूएसए, पृ. 77

जनजीवन का लोकसंगीत

डा. प्रतिभा सक्सेना

सार

लोकगीत लोक के गीत है। जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक समाज अपनाता है। लोकगीत शास्त्रीय संगीत से भिन्न है। लोकगीत ग्रामीण लोगों के गीत होते है। घर, नगर, गॉव के लोगों के अपने गीत होते है। इसके लिए शास्त्रीय संगीत की तरह प्रयास या अभ्यास की जरुरत नहीं है। लोकगीत ही लोकजीवन की वास्तविक भावनाओं को प्रस्तुत करता है। इसमें मनुष्य मात्र के पारिवारिक और सामाजिक जीवन का सामयिक तथा भावनात्मक चित्रण रहता है। जीवन के सभी पहलुओं एवं विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य के मानसिक एवं शारीरिक व्यापार जैसे ही होते हैं, उनका यथातथ्य चित्रण लोकगीत में मिलता है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के मन मष्तिक पर लोक संगीत रचा बसा रहता है एक तरह से हम कह सकते हैं कि जनजीवन की आत्मा है लोक संगीत। हर जगह का अपना लोकसंगीत होता है। इसी तरीके से उत्तर प्रदेश के लोक संगीत सबसे पुरानी परंपराओं में से एक है। उत्तर प्रदेश के लोकगीत को रसिया भी कहा जाता है जिसे ब्रज के नाम से जाना जाता है। यूपी के कुछ लोकप्रिय लोक गीत सोहर, कहरवा और चनयनी हैं। उत्तर प्रदेश में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के लोक संगीत जैसे ख्याल, गजल, स्वांग, नकल, मर्सिया, कव्वाली, रासलीला, रामलीला हैं। उत्तर प्रदेश में लोक गीत के सबसे लोकप्रिय रूपों में से एक है। उत्तर प्रदेश का लोक संगीत और मानव एक दूसरे के पूरक ही नहीं वरन् एक दूसरे के पोषक भी है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि उत्तर प्रदेश के लोक गीत और लोक संगीत लोगों के दिलों में बसता है और प्रदेश वासियों के जीवन में संगीत की उपस्थिति ईश्वर का एक श्रेष्ठ वरदान है।

जीवन का तात्पर्य मानव जीवन से है, पशु पक्षी जीवन से नहीं और संगीत का तात्पर्य केवल शास्त्रीय संगीत से ही नहीं बल्कि भाव संगीत, चित्र पट संगीत, लोक संगीत से भी है। भारतीय जीवन में कदम-कदम पर संगीत है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों मन मष्तिक पर लोक संगीत रचा बसा रहता है एक तरह से हम कह सकते हैं कि लोक संगीत भारतीय संस्कृति की आत्मा है। जन्म से लेकर मृत्यु तक संगीत हमारे साथ रहता है। जब बालक इस संसार में जन्म लेता है तो सबसे पहले (रोने के रूप में) संगीत के रूप में अपना आभार प्रकट करता है और जब मनुष्य अंतिम यात्रा पर जाता है तो 'राम नाम सत्य है' कि महिमा बताई जाती है। सरस्वती को वीणा बजाते हुए दर्शाया गया है, कहा जाता है कि कृष्ण के बांसुरी वादन ने इंसानों और जानवरों को एक जैसा बना दिया था। जहाँ तक उत्तर प्रदेश के लोक संगीत का प्रश्न है तो उत्तर

असिस्टेंट प्रोफेसर एस.एस कालेज, शाहजहांपुर

प्रदेश के लोक संगीत सबसे पुरानी परंपराओं में से एक है। उत्तर प्रदेश के लोकगीत को रसिया भी कहा जाता है जिसे ब्रज के नाम से जाना जाता है। उत्तर प्रदेश के लोकगीत राधा और भगवान कृष्ण के दिव्य प्रेम के लिए मनाए जाते हैं। अधिकाँश उत्तर प्रदेश के लोकगीत ढोल और अन्य वाद्य यंत्रों के साथ त्योहारों के दौरान गाए जाते हैं। लोक संगीत की परंपरा को प्राचीन काल में खोजा जा सकता है और उत्तर प्रदेश में इसे गुप्त काल के दौरान स्थापित किया गया माना जाता है। यूपी के कुछ लोकप्रिय लोक गीत सोहर, कहरवा और चनयनी हैं। लोक परंपराएं सामाजिक जीवन के सबसे सांस्कृतिक रूप से अद्वितीय तथ्यों में से एक हैं। किसी भी अन्य क्षेत्र की तरह, उत्तर प्रदेश के लोकगीत इसकी समृद्ध संस्कृति को दर्शाते हैं जो गीतों जैसी कला के माध्यम से उत्पन्न होती है। उत्तर प्रदेश में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के लोक संगीत जैसे ख्याल, गजल, स्वांग, नकल, मर्सिया, कव्वाली, रासलीला, रामलीला हैं। उत्तर प्रदेश में लोक गीत के सबसे लोकप्रिय रूपों में से एक है। ये गीत क्षेत्रों में प्रचलित धार्मिक संस्कृति से संबंधित हैं। सोहर आमतौर पर बच्चे के जन्म के दौरान किया जाता है। भिकारी ठाकुर को आमतौर पर भोजपुरी क्षेत्र में लोकगीतों को लोकप्रिय बनाने का श्रेय दिया जाता है। हरिकर्तन भी उत्तर प्रदेश में गाया जाने वाला एक बहुत ही धार्मिक रूप से जुड़ा लोक गीत है। सोहर को एक ऐसे गीत के रूप में मनाया जाता है जो जीवन का स्वागत करता है और नई शुरुआत का जश्न मनाता है। सोहर मुख्य रूप से जन्म के अवसर पर महिलाओं द्वारा गाया और बजाया जाता है। सोहर आंतरिक रूप से पारिवारिक जीवन से जुड़ा हुआ है और उत्तर प्रदेश में व्यापक रूप से प्रचलित संगीत परंपरा है। रीति-रिवाज और परंपराएं उत्तर प्रदेश में बहुत से लोगों के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में।कजरी लोकगीत का संबंध भारत के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश के साथ-साथ बिहार से भी है। कजरी लोक गीत का प्रयोग सामान्यत: अपने प्रेमी के लिए एक युवती की लालसा का वर्णन करने के लिए किया जाता है क्योंकि गर्मियों के आसमान में काले मानसून बादल आते हैं, और बारिश के मौसम में शैली विशेष रूप से गाई जाती है। कजरी लोक गीत पारंपरिक रूप से बनारस, मिर्जापुर, मथुरा, इलाहाबाद और बिहार के भोजपुर क्षेत्रों के आसपास उत्तर प्रदेश के गांवों और कस्बों में गाया जाता है। नाई समुदाय में नौका झक्कड़ बहुत लोकप्रिय है और नाई गीत के रूप में माना जाता है।चनयनी एक प्रकार का लोक-नृत्य संगीत है जो उत्तर प्रदेश के अधिकांश क्षेत्रों में बहुत अधिक प्रचलित है। इस प्रकार का लोक संगीत आमतौर पर किसी अवसर या विशेष क्षण का जश्न मनाने के लिए किया जाता है। लोक संगीत को अक्सर लोक नृत्यों के साथ जोड़ा जाता है इसलिए चनैयनी नृत्य के दौरान गाए जाने वाले गीतों को चनैयनी संगीत कहा जाता है।कहारवा भारत में गायन शैली की एक प्रसिद्ध ताल या प्रणाली है जो उत्तर प्रदेश में उत्पन्न हुई थी। कहरवा ताल एक प्रसिद्ध ताल है जिसमें कव्वाली, और धूमली जैसी विविधताएं हैं । यह एक जाति आधारित लोकगीत है जिसे कहार जाति द्वारा गाया जाता है। कहरवा शादियों के दौरान गाया जाने वाला एक औपचारिक गीत है। उत्तर प्रदेश में लोक संगीत मनोरंजन का एक रूप है। अधिकांश उत्तर प्रदेश में, परिवार सोहर के माध्यम से गर्भावस्था और प्रसव का जश्न मनाते हैं। विवाह समारोहों और अन्य शुभ कार्यक्रमों के दौरान, चनैयनी और कहरवा का प्रदर्शन किया जाता है। इस तरह हम कह सकते

हैं संगीत ईश्वर की देन है जो ईश्वर का एक श्रेष्ठ वरदान, प्रकृति की अनुपम देन है और मनुष्य का एक सुन्दरतम् अविष्कार है। संगीत के तीनों अंग गायन, वादन एवं नृत्य मनुष्य में उत्साह, ऊर्जा, प्रसन्नता तथा चेतनता का संचार करते हैं। संगीत भी मनुष्य के लिए प्रकृति द्वारा प्रदत्त एक अनुपम उपहार है। मनुष्य के दुखों, कष्टों तथा परेशानियों से मुक्ति पाने के लिए ब्रह्मा ने इस अनुपम कला की उत्पत्ति की। मानवीय कल्याण के लिए ईश्वर द्वारा प्रदत्त यह कला संगीत की अधिष्ठात्री देवी मां सरस्वती, नारद, किन्नरों, गंधर्वों, ऋषियों, मुनियों, योगियों तथा अप्सराओं के माध्यम से मनुष्य के लिए धरती पर पहुंची। भौतिक जीवन में संगीत मनोरंजन का उतना बड़ा साधन है जितना अध्यात्मिक जीवन में प्रेरणा का, संगीत कला हमारी संस्कृति की एकीकरण का अंग है और मानव जीवन संगीत की अभिव्यक्ति का बृहम स्वरूप है। मानव मन ही संगीत का सृजनहार है। ऐसा कोई भी त्यौहार नहीं है जिसमें संगीत न हो।

निष्कर्ष

भारत वर्ष की सभी सभ्यताओं में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। संगीत भारतीय संस्कृति की आत्मा मानी जाती है चाहे धार्मिक परम्परा हो या सामाजिक संगीत का अपना एक अलग स्थान है। मानव जीवन और संगीत के दूसरे के बिना अधूरे है। लोक संगीत की सबसे पुरानी परंपराओं में एक है उत्तर प्रदेष के लोकसंगीत को रसिया भी कहा जाता है। जिसे ब्रज के नाम से जाना जाता है। लोक संगीत और मानव एक दूसरे के पूरक ही नहीं वरन् एक दूसरे के पोषक भी है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि जनजीवन में लोकसंगीत लोगों के दिलों में बसता है और जनजीवन में लोकसंगीत की उपस्थिति ईश्वर का एक श्रेष्ठ वरदान भी है।

संदर्भ सूची

1. संगीत विशारद बसंत पृ. 165
2. संगीत निबन्ध संग्रह डा. लालमणि मिश्र पृ. 24 एवं 25
3. संगीत निबन्ध पं. जगदीश नारायण पाठक पृ. 157
4. विकिपीडियां नामक पेज
5. संगीत निबन्ध माला पं. जगदीश नारायण पाठक पृ. 156
6. https://test Book.Com Up Gk

महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका संपत्तिशास्त्र

कविता

हिन्दी साहित्य के नवयुवक के संवाहक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जोकि ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने न केवल नवल रचनाएँ की, अपितु आलोचना, समीक्षा के माध्यम से हिन्दी साहित्य की अव्यवस्थित धारा को परिमार्जित एवं परिष्कृत किया। 'संपत्तिशास्त्र' पुस्तक में द्विवेदी जी ने बहुत परिश्रम किया। उन्होंने केवल एतद् विषयक पुस्तकों का अध्ययन ही नहीं किया अपितु अर्थशास्त्र संबंधी गूढ़ातिगूढ़ नियमों को समझ कर अपने देश के अनुरूप सिद्धांत निर्धारित किए। उनका मानना था अनेक प्रकार के व्यवहारों से जो अनुभव, जो तजरुबे हुए हैं- उन्हीं के आधार पर संपत्तिशास्त्र के सिद्धांत निश्चित किए गए हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रारम्भिक चरण को दो रचनाकारों के नाम से जाना जाता है- 'भारतेंदु युग' और दूसरा 'द्विवेदी युग' संभवत: इसके पीछे दोनों ही व्यक्तियों की बहुमुखी प्रतिभा थी जिसके फलस्वरूप दोनों अपने-अपने साहित्यिक समय का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतेन्दु युग से महावीर प्रसाद द्विवेदी को हिन्दी नई चाल में ढलकर मिली थी लेकिन अभी उस हिन्दी ने अपना बाना पूरी तरह से पहना नहीं था। प्रदेशगत विभिन्नताओं के कारण उसमें अनेकरूपता थी, उन अनेक रूपों को एक रूप प्रदान करने और समाज के उभरते नए युग में लेखकों को भावगत और भाषागत नया संस्कार देने का अधिकांश श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को जाता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'संपत्तिशास्त्र' अर्थशास्त्र संबंधी हिन्दी की पहली पुस्तक है। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में द्विवेदी जी की यह चिंता, उनके सृजन और चिंतन दोनों में मौजूद है। यह पुस्तक 1907 में लिखी गई। इसके अंश 1907 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुए और पूरी पुस्तक 1908 में प्रकाशित हुई। 1916 में संशोधित संस्करण आया। एक शताब्दी पहले प्रकाशित यह पुस्तक आज भी हमें नई दिशा देने में सक्षम है। अभी तक हिन्दी में कोई ऐसा लेखक नहीं हुआ जो साहित्यकार हो और साथ ही जिसे अर्थशास्त्र का गहरा ज्ञान हो। यह ग्रंथ अर्थशास्त्र की नयी पुरानी पाठ्य पु

स्तकों से भिन्न हैं। प्रसिद्ध मार्क्सवादी, आलोचक और चिंतन रामविलास शर्मा इस पुस्तक का उद्देश्य बताते हुए कहते हैं कि, "समकालीन भारत के अर्थतंत्र का अध्ययन करना है तो इसका महत्व तब ज्ञात होगा जब इसे रजनी पामदत्त की पुस्तक 'आज का भारत' के साथ मिलाकर पढ़ा जाएगा। जो लोग भारत में अंग्रेजीराज की भूमिका समझना चाहते हैं, उनके लिए द्विवेदी जी की पुस्तक महत्वपूर्ण सामग्री है।"

अनुवाद विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली, Kavichauhan322@gmail.com, मो. 7503561010

'संपत्तिशास्त्र' नामक पुस्तक को पहले पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध नामक दो खंडों में विभक्त किया गया है। फिर प्रत्येक खंड को विषयानुसार कई भागों में बांटकर, एक-एक विषयांश का विवेचन अलग-अलग परिच्छेदों में किया है। पूर्वार्द्ध के सात भाग किए हैं, उत्तरार्द्ध के पाँच। पूर्वार्द्ध में सत्ताईस परिच्छेद हैं, उत्तरार्द्ध में बीस। इस प्रकार समग्र पुस्तक बारह भागों और सैंतालीस परिच्छेदों में समाप्त हुई है। प्रथमार्द्ध के बारे में कहा भी गया है कि, "संपत्ति की उत्पत्ति, वृद्धि, विनिमय और विनिमय वितरण आदि का विवेचन करके संपत्ति के उपभोग और देशों की आर्थिक अवस्था की तुलना की है।"

1908 ई. में 'संपत्तिशास्त्र' पुस्तक प्रकाशित हुई। यह पुस्तक स्वयं उनकी दृष्टि में भी ऐसी पुस्तक थी,जो कि 'अच्छे विषय' पर लिखी गई थी। एक स्थल पर बहुत ही अफसोस के साथ द्विवेदी जी ने लिखा है कि, "समय की कमी के कारण मैं विशेष अध्ययन न कर सका। इसी से संपत्तिशास्त्र नामक पुस्तक को छोड़कर और किसी अच्छे विषय पर मैं कोई नई पुस्तक न लिख सका।" इस पुस्तक में अंग्रेजों ने इस देश की भूमि-व्यवस्था में जो परिवर्तन किया था उसका उन्होंने सूक्ष्म विश्लेषण किया और उससे किसानों की जो बर्बादी शुरू हुई थी, उससे निकलने का रास्ता भी सुझाया। भारत में अंग्रेजों के आने से पहले भारत की अपनी भूमि-व्यवस्था थी। उनके पहले जो भी विदेशी जातियाँ आई थी उन्होंने इस भूमि व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किया था। वे यहीं बस गई थीं और उन्होंने यहाँ की भूमि पर कर वसूलने की जो पद्धति थी, उसे स्वीकार कर लिया था। द्विवेदी ने कहा भी है, " देश स्थिति, समाज स्थिति, राज्य प्रणाली आदि का विचार करके संपत्तिशास्त्र के सिद्धांत प्रयोग में लाए जाते हैं।" भूमि-व्यवस्था में भूमि पर किसानों का संयुक्त स्वामित्व होता था और वे उपज का एक हिस्सा कर के रूप में राजा या बादशाह को दिया करते थे। कर के रूप में दिया जाने वाला हिस्सा उपज की मात्रा के मुताबिक घटता-बढ़ता रहता था। राज्य यह कर कभी अपने कर्मचारियों द्वारा वसूलता था और कभी बिचौलियों के द्वारा, जिनमें जमींदार, लगान के ठेकेदार आदि हुआ करते थे। ये बिचौलिए बाद के जमींदारों से भिन्न होते थे, क्योंकि वे जिस भूमि का कर वसूलते थे, उसके मालिक नहीं होते थे। उन्हीं कर वसूलते के एवज़ में सिर्फ उसका एक भाग कमीशन के रूप में मिलता था।

भारत में अंग्रेज़ो के आने पर उन्होंने अपना शासन किया। उसके बाद यहाँ उन्हें पैसे की शख्त जरूरत हुई, पैसे उन्हें प्रशासन चलाने के लिए भी, और व्यापार के मुनाफे के लिए भी, साथ ही लड़ाइयों के द्वारा अपने राज्य का विस्तार करने के लिए भी चाहिए थे। इसका सारा बोझ उन्होंने इस देश के किसानों पर डाल दिया। इसके लिए जरूरी था कि परंपरागत भूमि-व्यवस्था में परिवर्तन किया जाए। पहले तो उन्होंने कर वसूलने की पुरानी पद्धति को ही अपनाया। यदपि उन्होंने कर को बढ़ा दिया था, तथापि उससे जो आमदनी हुई वह उन्हें कम मालूम पड़ी। तो उन्होंने कर में वृद्धि की, लेकिन उससे भी उनकी जरूरत पूरी नहीं हुई। कर प्राप्त करने को लेकर अनिश्चितता उत्पन्न हो गई। परिणाम यह हुआ कि अब खेती में सुधार लाने में न जमीन जोतने वाले किसानों की दिलचस्पी रही, न उनसे कर वसूलने वाले जमींदारों की। इस परिस्थिति से बचने के लिए अंग्रेजी हुकूमत ने स्थायी बंदोबस्त किया।

स्थायी बंदोबस्त ने भारत की परंपरागत भूमि-व्यवस्था के ढांचे को एकदम तोड़ दिया। अब किसानों से कर वसूल करने वाले जमींदारों को जमीन का मालिक बना दिया गया। स्वामित्व

समाप्त कर दिया गया और वह ज़्यादातर अलग-अलग व्यक्तियों में बाँट दी गई। अब किसान उनके अधिकारी नहीं रहे और वे पूरी तरह से जमीदारों की दया पर छोड़ दिए गए। अब वह कर की जगह लगान देने लगे, जिसकी रकम जमीन के हिसाब से जमींदारों द्वारा मनमाने ढंग से तय की जाती है। अब रकम कम हो या ज्यादा, लगान की निर्धारित रकम समय पर देनी ही पड़ती थी।

द्विवेदी जी इस पुस्तक में पराधीन भारत में अंग्रेजो की आर्थिक लूट, भारतीय जनता की निर्धनता, मध्यकालीन मार्क्सवादी उदारता और साम्राज्यवादी दौर में विकसित भारतीय सामंतवाद की संकीर्णता को उजागर करते हैं। भारत में पुरानी व्यवस्था में जमीन पर किसान का मालिकाना हक होता था, वह कर जरूर देता था इस संदर्भ में द्विवेदी जी लिखते भी हैं कि, " पुराने जमाने में, हिंदुस्तान में, जमीन पर राजा का स्वामित्व न था। हर आदमी अपनी अपनी जमीन का मालिक था। राजा उससे सिर्फ जमीन की पैदावार का छठा हिस्सा ले लिया करता था। बस राजा का सिर्फ इतना ही हक था। यह एक प्रकार का कर था, जमीन का लगान नहीं।"

इसी पर पंडित माधवराव सप्रे, बी.ए. ने भी अपने एक अप्रकाशित लेख में संपत्तिशास्त्र विषय का बहुत अच्छा विवेचन करते हुए कहा है कि, "जमीन, मेहनत और पूंजी की मदद से ही संपत्ति पैदा होती है।"

संपत्तिशास्त्र पढ़ने और उस पर विचार करके उसके सिद्धांतों के अनुसार व्यवहार करने से यहाँ की दरिद्रता थोड़ी बहुत जरूर दूर हो सकती है। संपत्तिशास्त्र की भूमिका में कहा भी गया है कि, "अच्छी तरह शिक्षा न मिलने और संपत्तिशास्त्र का ज्ञान न होने से हम लोग अपनी कमजोरियों को नहीं जान सकते और देश की दशा क्यों खराब हो रही है, इसके कारणों को भी नहीं समझ सकते। बिना निदान का ज्ञान हुए किसी रोग की चिकित्सा नहीं हो सकती।"

द्विवेदी ने संपत्तिशास्त्र में अंग्रेजो के साम्राज्यवादी नीतियों के शिकार किसानों की बदहाली का चित्रण भी किया है। भारत में अंग्रेजी राज के अधिकारियों और उनके सैनिकों के खर्चे के लिए किसानों से लगान और मालगुजारी वसूली जाती थी। इस कर को अंग्रेज 'होमचार्ज' कहते हैं। भारतीय उपनिवेश में अंग्रेजो की यह शोषणकारी व्यवस्था दूसरे औपनिवेशिक देशों की तुलना में कही अधिक अमानवीय थी। संपत्तिशास्त्र में कहा भी गया है कि, "मालगुजारी बढ़ती जाती है, काश्तकारों की जमीन नीलाम होती जाती है। गरीबी के कारण थोड़ा भी अकाल पड़ने से हजारों आदमी मरते चले जाते हैं।" फसल की पैदावार भले कम रहे, अंग्रेजी लगान में तनिक भी कमी न आती थी। त्रासदी यह थी कि जो किसान लगान देने में असमर्थ होता था उसे खेती-बारी हो नहीं रही, घर-बार से भी बेदखल कर दिया जाता था। शोषण की यह मार और भी गहरी तब हो जाती थी जब किसान ऋण लेता था। महाजन इस ऋण पर मनमाना सूत लगाता था और किसान विवश होकर उसे स्वीकार करता था।

द्विवेदी जी संपत्तिशास्त्र के माध्यम से लोगों को 'अंग्रेजी राज की असलियत' दिखाना चाहते थे। हिंदुस्तान में अंग्रेजी के प्रभुत्व ने इसे सामंतवादी युग पूंजीवादी युग में ला खड़ा किया, देश के औद्योगिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया। तकनीकी-विज्ञान से यहां के लोगों को परिचित कराया। रेल, डाक, तार आदि का जाल पूरे देश भर में फैलाकर यहां के संचार एवं यातायात के माध्यम को विकसित किया, "महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'संपत्तिशास्त्र' के द्वारा अंग्रेजी सरकार के असली चरित को पहचानना चाहिए एवं अपनी

इतिहास दृष्टि को बदलना चाहिए। द्विवेदी जी ने 1907 में ही अंग्रेजी राज की असलियत को समझ लिया था। वैसे पहले, जब वे रेलवे की नौकरी में सरकारी मुजालिम थे, अंग्रेजी राज की प्रशंसा किया करते थे।" किन्तु 'संपत्तिशास्त्र' की रचना करते समय वे अंग्रेजी राज का पूरा भेद जान चुके थे। वे जान चुके थे कि भारत की दुर्दशा के मूल में उसकी गुलामी है, कि अंग्रेजो की इस देश के प्रति प्रगतिशील भूमिका नहीं है, पूंजीवादी अंग्रेज हिंदुस्तान में एक नये तरह की सामंती प्रथा शुरू कर रहे हैं, जो पुराने सामंतवाद से ज्यादा बर्बर, घृणित और घिनौना है, कि इंग्लैंड की समृद्धि का मूल कारण हिंदुस्तान का चहुंमुखी शोषण है।

द्विवेदी जी भारत के पुरानेपन, पुराने रीति-रिवाज पर क्षोभ व्यक्त करते हुए कहते हैं कि, हम लोगों के रग-रग में पुरानापन घुसा हुआ है। पुरानी आदतें हमारी छुटती नहीं है। वहीं पुराना चरखा और वही पुराना हल अब तक चल रहा है। क्या भारत का वस्त्र-उद्योग चर्खे के बल पर इंग्लैंड के कपड़ों के बड़े कारखानों को चुनौती दे सकता है? क्या अमेरिका के वैज्ञानिक रीति एवं औजारों से खेती करने वाले किसानों की बराबरी, यहां के किसान अपने हलों द्वारा कर सकते हैं ? इन्हीं सब सवालों के जवाब द्विवेदीजी अपनी संपत्तिशास्त्र में करते है। अंग्रेजो ने बड़ी चालाकी से किसानों से लगान वसूल करने के लिए अपनी जिम्मेदारियां कायम की। इनके माध्यम से वह किसानों से लगान वसूलते थे। इस प्रकार अंग्रेज सरकार, जमींदार और सूदखोरों के बीच पिसता किसान गुलामी की अंतहीन यात्रा झेलता था। साहित्य में किसानी जीवन की इस त्रासदी को प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में दर्ज किया।

अंग्रेजी राज के दौर में अंग्रेजों ने भारतीय व्यापार और उद्योग की स्वाभाविक प्रगति को रोका और भारत में अपना माल बेचने की व्यापारिक रणनीति बनाई। व्यापार की यह स्वार्थी नीति अंग्रेजों ने अपने पूरे शासनकाल में कायम रखी। भारतीय बाजार तथा व्यापार को बड़े रणनीतिक ढंग से अंग्रेजों ने नष्ट किया। विलायती माल की खपत के लिए कई हथकंडे अपनाएं। अंग्रेजों ने अपनी धूर्त नीतियों से भारतीय जमींदारी से मिलकर यहां की जमीन पर इजारेदारी कायम की और भारतीय बाजार और व्यापार पर अपना कब्जा जमाया। संपत्तिशास्त्र में कहा भी गया है कि, " यंत्रों की सहायता या और नई युक्ति से माल अधिक तैयार होने और उसकी उत्पत्ति में लागत कम लगने से बहुत फायदा होता है जिस देश में यह स्थिति होती है वह अपने से पिछड़े हुए देश के साथ व्यापार करके मालामाल हो जाता है।"

द्विवेदीजी ने अंग्रेजी व्यापार नीति की तीखी आलोचना करते हैं। ब्रिटेन की स्वार्थी व्यापारिक नीति का पर्दाफाश करते हुए वह भारतीयों को आगाह करते हैं। अंग्रेजों की इस नीति ने भारतीय उद्योगों, छोटे-छोटे व्यापार और कला कौशल को नष्ट किया है। अंग्रेज किस प्रकार भारतीयों को लूट रहे हैं इसकी बात द्विवेदी करते हुए कहते हैं कि, "हिंदुस्तान में कोई 30 करोड़ आदमी रहते हैं। इंग्लैंड में बनी हुई चीजों की यहां बेहद खपत है। प्राय: सारे पदार्थ कलों की सहायता से बनाये जाते हैं। हजारों बड़े-बड़े कारखाने जारी हैं। फिर, वहीं पूँजी पानी की तरह वह रही है। इन्हीं कारणों से वहां की चीजें सस्ती पड़ती है और हिंदुस्तान में ढोई चली आती हैं।"

हिंदुस्तान की स्थिती बहुत ही बुरी है। राजकीय बाधायें यदि हिसाब में न भी ली जाएं तो भी इस देश की व्यापारिक अधनति को देखकर अनन्त परिताप होता है। देश में विदेशी

माल की खप प्रतिदिन बढ़ता जाता है। भारत में किसानों की स्थिती के बारे में द्विवेदी जी कहते हैं, "अपना अनाज सस्ते भाव बेचने के लिए हिंदुस्तान को लाचार होना पड़ता है। जितना ही अधिक अनाज हिंदुस्तान को देना पड़ता है उतना ही अधिक पूँजी लगा कर उसे भली बुरी सब तरह की जमीन जोतनी पड़ती हैं।"

निष्कर्ष

अंत में, संपत्तिशास्त्र का विषय बहुत ही गहन और कठोर है। संपत्तिशास्त्र के ज्ञाताओं में अब तक परस्पर शास्त्रार्थ जारी है इसमें द्विवेदी जी ने स्वदेशानुराग एवं स्वभाषा प्रेम एक साथ उभरकर सामने आया। देश की आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए जहां उन्होंने संपत्तिशास्त्र के ज्ञान को आवश्यक समझ कर इस पुस्तक को लिखने का बीड़ा उठाया, वहीं हिन्दी में संपत्तिशास्त्र जैसे गूढ़ विषय पर लिखकर उन्होंने हिन्दी को हेय दृष्टि से देखने वालों के सामने मिसाल कायम की। उन्होंने इसकी भूमिका में स्पष्टत इस बात को स्पष्ट किया कि संपत्तिशास्त्र विषयक उनका ज्ञान अत्यंत भिन्न है।

संदर्भ ग्रंथ

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, 1977, भूमिका, पृष्ठ 16
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी, संपत्तिशास्त्र, प्रकाशन, इंडियन प्रेस, प्रयाग, 1908, भूमिका, पृष्ठ- 8
3. नंदकिशोर नवल, भारतीय साहित्य के निर्माता महावीर प्रसाद द्विवेदी, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम प्रकाशन 1992, पृष्ठ- 42
4. अनवर हलीम, गगनांचल, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली, अंक नवम्बर-दिसम्बर 2013, पृष्ठ- 46
5. महावीर प्रसाद द्विवेदी, संपत्तिशास्त्र, प्रकाशन, इंडियन प्रेस, प्रयाग, 1908, पृष्ठ-111
6. महावीर प्रसाद द्विवेदी, संपत्तिशास्त्र, प्रकाशन, इंडियन प्रेस, प्रयाग, 1908, पृष्ठ 54
7. महावीर प्रसाद द्विवेदी, संपत्तिशास्त्र, प्रकाशन, इंडियन प्रेस, प्रयाग, 1908, भूमिका, पृष्ठ 1,2
8. महावीर प्रसाद द्विवेदी, संपत्तिशास्त्र, प्रकाशन, इंडियन प्रेस, प्रयाग, 1908, भूमिका, पृष्ठ 132
9. भारत यायावर, महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली, अंक-6, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1995, पृष्ठ- 13-14
10. महावीर प्रसाद द्विवेदी, संपत्तिशास्त्र, प्रकाशन, इंडियन प्रेस, प्रयाग, 1908, भूमिका, पृष्ठ 280
11. वही, पृष्ठ- 281
12. वही, पृष्ठ- 382

मिथिलांचल के लोकगीतों में राम का स्वरूप

कुमार गौरव मिश्रा

शोध-सारांश

मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम हिंदुओं के आराध्य एवं अवलंब हैं। उन्हें न केवल भारतवर्ष में, अपितु भारतीय उपमहाद्वीप के कई देशों में पूर्वज व ईश्वर माना जाता है एवं उसी रूप में आराधना की जाती है। किंतु, बिहार का मिथिलांचल, जो कि राम का ससुराल है एवं वे वहाँ के दामाद हैं, ईश्वरीय रूप में व्यवहार करने के साथ-साथ पाहुन(दामाद) की तरह भी व्यवहार करता है। इसी संबंध के आलोक में, उनके साथ गाली-गलौज और हंसी-मज़ाक भी किया जाता है। मिथिला समाज अपने लोकगीतों और लोक-कथाओं में राम को खूब याद करता है, मानो राम घर- परिवार के हों। राम को याद किए बिना मिथिला में कोई विधि-विधान पूर्ण नहीं माना जाता है। विभिन्न संस्कारों एवं शादी-ब्याह की छोटी से छोटी रस्मों में राम और सीता से जुड़े गीत ही गाए जाते हैं। जितनी रस्में, उतने गीत। मिथिला के समाज में राम को लेकर अंतर्द्वंद्व भी दिखाई देता है। मैथिली की धरती का राम के साथ कुछ विचित्र रिश्ता है। वहाँ प्रत्येक लड़की के लिए यह मंगल कामना की जाती है कि उसका वर राम जैसा धीरोदात्त व प्रतापी हो, लेकिन कोई यह नहीं चाहता कि उनकी बेटी का भाग्य सीता जैसा हो। आज भी मिथिला में पश्चिम दिशा में लड़की का विवाह करना शुभ नहीं माना जाता क्योंकि सीता पश्चिम में ही ब्याही गई थी और इतने बड़े घर में ब्याह होने के पश्चात् भी उन्हें कष्ट झेलना पड़ा था। जिस दिन सीता का विवाह हुआ था, उस दिन मिथिला में किसी लड़की का विवाह नहीं किया जाता, जबकि ऐसा माना जाता है कि विवाह पंचमी की तिथि विवाह हेतु अत्यंत शुभ होती है। राम के व्यक्तित्व का असली परीक्षण मिथिला के लोगों ने ही किया है। प्रधान स्वर अवश्य राम का गौरव गान करता है, किंतु गौण स्वर राम की आलोचना का भी रहा है। मर्यादा पुरुषोत्तम से मिथिला के लोगों ने खूब सवाल पूछे हैं। ये सारे सवाल, प्रसंग, आलोचना, गौरव-गान, हंसी-ठिठोली, रीति-रिवाज़, गाली-गलौज, पर्व-त्योहार इत्यादि राम को केंद्र में रख कर मैथिली लोकगीतों के माध्यम से भारतीय जनमानस के सामने आते हैं, जिनमें राम का विविध स्वरूप उभर कर सामने आता है।

बीजशब्द : *मिथिलांचल, मिथिला, मैथिली, सीता, राम, लोकगीत, संस्कार, विवाह, उपनयन, सोहर, विवाह, शादी-ब्याह, समाज, संस्कृति, वर-वधू, दामाद, मुंडन, परिछन, रस्म, त्योहार।*

प्रस्तावना : वैदिक काल से ही अपनी विशिष्ट पहचान रही है। यह धर्म, दर्शन, साहित्य, संगीत, संस्कृति के कारण मिथिलांचल की अलग अध्यात्म, शोध इत्यादि का गढ़ माना जाता रहा

शोधार्थी (हिंदी विभाग), जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली-110025
ई-मेल : mishrakumargaurav92@gmail.com. मोबाइल : 8587005252

है। इसकी संस्कृति में लोक-साहित्य का भी अद्वितीय योगदान है। लोकगीत लोक-संस्कृति का अभिन्न अंग है। मिथिला का लोकगीत अति समृद्धशाली है। मिथिला समाज के विभिन्न रस्म-ओ-रिवाज़, संस्कार, पर्व-त्योहार इत्यादि में इन लोकगीतों का अहम महत्व है। वे इनके बिना अधूरे से हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इन लोकगीतों के बगैर उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

मिथिलांचल के लोकगीतों में राम और सिया केंद्र में हैं। राम विश्व के लिए मर्यादापुरूषोत्तम, जगतपिता, ईश्वर इत्यादि हो सकते हैं, किंतु मिथिला के लोगों के लिए वे घर के दामाद हैं। मिथिला समाज में वे पहले घर के दामाद हैं, और बाद में आराध्य। इसी कारण, लोकगीतों के कथ्य में उनकी शोभा-सुंदर, प्रशंसा और गौरव गान होने के साथ-साथ आलोचना, गाली-गलौज, तीख़े सवाल व हंसी-मज़ाक प्रचुर मात्रा में दृष्टिगत होते हैं। मिथिलावासी बेहिचक राम पर आरोप-प्रत्यारोप लगाने में सफल हो सके हैं, जो किसी और समाज के लिए संभव न हो सका।

मुंडन : जन्म के पश्चात् पहली बार जब नाई द्वारा बच्चे के माथे के सारे बाल उतार दिये जाते हैं, तो यह मुंडन संस्कार कहलाता है। मुंडन संस्कार मिथिला के क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण संस्कार है, जिसमें घर के बड़े-बुज़ुर्ग आशीर्वाद देने के लिए उपस्थित रहते हैं एवं महिलायें मुंडन के गीत गाकर बच्चे के लिए मंगल-कामना करती हैं। प्रस्तुत पद में रामलला के मुंडन का बिंब अति सूक्ष्मता से खींचा गया है-

"कहमा लपटि बढ़ाओल कहमा मुड़ाओल हे।
कहमा रामजीक जनम भेल कहमा मूड़न हे।।
काशी लपटि बढ़ाओल प्रयाग मुड़ाओल हे।
अयोध्या रामजीक जन्म गंगा भयो मुड़न हे।।"

सोहर : उत्तर भारत, खास कर मिथिला के क्षेत्र में पुत्र के जन्म के सुअवसर पर सोहर गाकर खुशियाँ मनाने का रिवाज़ है। स्त्रियाँ सामूहिक रूप से झुंड बना कर व ताली बजा कर, सोहर गान करती हैं। मैथिली में रामलला के जन्म से संबंधित अनेकानेक लोकगीत प्रचलित हैं जो सोहर में गाये जाते हैं, जिनमें प्रभु राम के जन्मोत्सव का वर्णन मिलता है -

"भये अवतार महाप्रभु राजीव लोचन रे।
ललना रे अवध नगर दुख मोचन, जगत निरंजन रे।।

जगत हरषित कुसुम बरसित, गगल जय-जय होय यौ।
रंक हेरि निसंक नाचथि नसथि सब दुःख आजु यौ।।
कनका कलम राजा दशरथ शुभ घड़ी लेखल रे।
ललनारे पुरइन नार सहित जाय मुख देखल रे ।।
मुख जाय देखल भूप दशरथ रूप कहलो न जाय यौ।
जड़ित हीरा जमा जोड़ा देत दान बघाय यौ।।
कोर कय लेलनि कौशिल्या रानी नार छिलाओल रे।
ललनारे सगर आयोध्या के दगरिन नार छिल आयल रे।
पाबि कर गज हेम हीरा लाल मोती माल यौ।
अवतरल रघुकुल, नगर नायक शुभ दिन सुदिन दयाल यौ।
घर घर नगरक नारी मंगल गाओल रे।
ललारे पुलक भरल सब गात दशो दिश भावय रे।
दहो दिश सँ बधाई मांगय दान देल कुबेर यौ।
अवध नगर में बजय डंगा लूटथि अम्बर ढेर यौ।
तुलसीदास सोहर गाओल गावि सुनाओल रे।
ललना रे तिनको बास बैकुण्ठ पुत्र फल पाओल रे।"

उपनयन संस्कार : सोलह संस्कारों में उपनयन संस्कार का अपना विशिष्ट महत्व है। हिन्दू द्विज जातियों में होने वाला यह संस्कार मिथिला सहित संपूर्ण देश में, बालक को अपने वर्ण या जाति की सदस्यता ग्रहण करने के साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी बनाता है। इसके पहले बालक को अशुद्ध अथवा शूद्र वर्ण का माना जाता है, इसलिए इस संस्कार के द्वारा सर्वप्रथम उसे अपने वर्ण तथा जाति की विधिवत सदस्यता प्रदान की जाती है, जिससे वह यज्ञादि अनुष्ठानिक कार्यों का अधिकारी बन सके। इस संस्कार के लिए 8 से 18 वर्ष की आयु निर्धारित होती थी। वर्तमान समय में, विद्या आरम्भ करने से इस संस्कार का कोई खास संबंध नहीं रह गया है, किन्तु वर्ण एवं जाति में प्रवेश का आज भी यही एकमात्र जरिया है। इसे काफी वैभवपूर्ण तरीके से मनाया जाता है। इस संस्कार के अवसर पर, राम के उपनयन संस्कार के वर्णन से संबंधित मैथिली लोकगीत विभिन्न अनुष्ठानों में मिथिलांचल के क्षेत्रों में गाये जाते हैं-

"धन-धन भाग कौशल्या जाहि कुल राम जनम लेल हे।
जीवन जन्म सुफल भेल अंगना माड़व भेल हे।।

ताहि माड़व बैसलाह बड़का बाबा जाँघ जोड़ि ऐहव अम्मा हे।
गोदी भए बैसलाह राम बरूआ बाबा सुदिन जनउवा दिय हे।।
रहू-बाबू सहू बाबू राम बरूआ हुए दिय, सुदिन दिन है।
सुदिन में लाल जनऊवा देव होएव ब्राह्मण हे।।"

"आमा हे तोहें फला आमा, ओ जे जनकपुर मे नोत दीअ हे।
जनकपुरसँ एती सीता दाइ ओ जे कटती जनउआ सूत हे।
बाबा हे तोहे फलां बाबा हे, ओ जे अयोध्या मे नोत दीअ हे।
अयोध्यासँ एता श्रीराम ओ जे पढ़यता जनउआ मंत्र हे।
जीवन जन्म सफल भेल, अंगना मांड़ब भेल हे।
घूरि फीरि अबथिन फल्लां बाबा, ओ जे मड़बा निरेखथि हे।
धन्य जीवन थिक फल्लां बाबी, ओ जे जनि कुल पुत्र भेल हे।
ब्राह्मण एता आजु फलां बरुआ, आंगन सोहाओन लागय हे।
जन्म सफल भेल, ओ जे फल्लां बरुआ ब्राह्मण हएता हे।"

विवाह : सोलह संस्कारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार, विवाह को माना जाता है क्योंकि विवाह संस्कार के पश्चात् ही मनुष्य गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है और पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करता है। इस कारण ही विवाह का संस्थागत महत्व है। इसमें विविध प्रकार के विधि-विधानों का अनुपालन किया जाता है। कन्या का पिता लड़के के पिता के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है। सहमति होने पर, विवाह की शर्तें एवं तिथि तय होती है एवं उसी के अनुसार तैयारियाँ शुरू हो जाती है। वर पक्ष बारात ले जाने की तैयारी करता है। उसके लिए वाहन सजाए जाते हैं और उस पर वर पक्ष के लोग सवार होकर, बाजे-गाजे एवं ढोल-नगाड़े के साथ वधु के घर के लिए प्रस्थान करते हैं। वहाँ वधु पक्ष के द्वारा उनका भव्य स्वागत किया जाता है। राजा दशरथ के घर में बारात की तैयारी और सज-धजकर जनकपुर पहुँचने की एक ऐसी ही मनोरम झाँकी को निम्नलिखित लोकगीत में प्रस्तुत किया गया है-

"राजा जनक पतिया लिखि भेजल,
दीअ राजा दशरथ हाथ हे।
रामक ब्याह जनकपुर होयत,
सब मिलि साजु बरियात हे।

दस हजार हाथी पीठि हौदा,
तकर दुगुन बरियात हे।
नओ हजार जे बाजन बाजय,
बाजय दशरथ द्वारि हे।
जब बरियतिया जनकपुर आयल,
चेड़िया कलश नेने ठाढ़ि हे।"

वर-परिछन : "मिथिला में विवाह संस्कार का शुभारम्भ वर की आगवानी से होता है। झुंड में सज-धज कर स्त्रियाँ गीत गाते हुए वर की आगवानी करती हैं। बाँस की कमाचियों से बने रंगीन छितराए हुए टोकरी में जिसे डाला कहा जाता है, धान, दूब, नारियल, पान, दही, चन्दन आदि शुभ, मंगलकारी सामग्री लेकर महिलाएँ कन्या के घर के द्वार पर विशेष रूप से वर का स्वागत करती हैं। डाला के मध्य में एक चौमुख दीया जलता रहता है। इस स्वागत समारोह में नाना प्रकार से वर की बुद्धि का परीक्षण भी किया जाता है। वर से कुछ खास चीजों की पहचान करने को कहा जाता है और उसकी नाक को पकड़कर विवाह की विधि सम्पादन करानेवाली महिला आज्ञाकारी बालक की तरह आगे के विधियों के पालन करने की बात कहती है। उक्त महिला को बिधकरी कहा जाता है, जिन चीजों की पहचान करायी जाती है, उसे ठक-बक कहा जाता है। केले के नवपात को भालरि कहा जाता है और जो माला वर को पहनाई जाती है, वह पितौरी की बनी होती है। इस सारे आयोजन को मिथिला में परिछन कहा जाता है।" वर परिछन के समय मिथिला की स्त्रियाँ श्री रामचन्द्र के परिछन के मनोरम दृश्य को लोकगीत के माध्यम से कुछ इस तरह प्रस्तुत करती हैं-

"कओने नगरिया सऽ एलै सुन्दर दुलहा, कतऽ एलै हे।
पचरंगिया बजनमा कतऽ एलै हे।
अवध नगर सँ एलै सुन्दर दुलहा, जनकपुर हे।
पचरंगिया बजनमा ओत्तहि बाजै हे।
जब दुलहा अवध सऽ बहार भेल।
सजाबे लगली हे सासु डाला ओ हारा, सजाबे लगली हे।
जब दुलहा जनकपुर आएल, सजाबे लगलीह।
सासु कोबर लाल पीअरसँ रंगाबे लगलीह।
जब दुलहा द्वारे पर आयल, निरेखऽ लगली हे।
सासु अपन जमइया निरेखऽ लगली हे।
सतरंगिया बजनमा बजाबऽ लगली हे।"

"अहाँ केर बाबू दुलहा बहत लेलनि गनाय यो रघुवंशी दुलहा।
डाला भरि टाका लेलनि गनाय यो रघुवंशी दुलहा।
अहाँ केर बाबु दुलहा बीत-बीत बेचबोलनि यो रघुवंशी दुलहा।
हमरा बाबु के छनि एतेक हियाब यो रघुवंशी दुलहा।
अहाँ के लेलनि खरीदि यो रघुवंशी दुलहा।
मिथिलामे गेलौं बिकाय यो रघुवंशी दुलहा।"

सिंदूर दान : हिंदुओं के वैवाहिक रस्मों में सिंदूर दान की रस्म अति महत्वपूर्ण मानी जाती है। वर चुटकी में सिंदूर लेकर वधु की खाली मांग को सिंदूर से भरता है और इस रस्म को पूरा करता है। इस मौके पर पंडित के मंत्रोच्चारण के साथ स्त्रियाँ सिंदूर दान के गीत गाती रहती हैं। मिथिला समाज में विवाह की प्रत्येक रस्में विशिष्टतापूर्वक अदा की जाती है। इस मौके पर भी राम-सिया विवाह के सिंदूर दान के गीत गाये जाते हैं-

"स्वर्ण सिनूर दुलहा धीरे सऽ उठाउ हे दशरथ जी के बबुआ।
धीरे धीरे लली के लगाउ हे दशरथ जी के बबुआ।
लाज ने करू दुलहा हृदय के सम्हारू हे दशरथ जी के बबुआ।
जल्दी सँ करू सिन्दूरदान हे दशरथ जी के बबुआ।
कँपैत कर के करू स्थिर हे दशरथ जी के बबुआ।
लली के हृदय लगाउ हे दशरथ जी के बबुआ।"

कोहबर : प्रस्तुत गीत में राम और सिया के कोहबर का वर्णन किया गया है, जिसे नव-दंपतियों के कोहबर में जाने से पहले गाया जाता है। इसमें सोने के किवाड़ लगे हैं। खाट पर गद्दे बिछे हैं। सेज पर पुष्प बिखरे हैं। ऐसे कोहबर में दुलहा-दुलहन दोनों से सोने के लिए आग्रह किया गया है-

"कंचन लागल केबाड़ हे, भगबान करें कोबर।
कंचन लागल केबाड़ हे, सिया राम को कोबर।।१।।
खाट तुराइ ओछाएल हे, सिया राम के कोबर।
सेज भरि फूल छिड़िऐल हे, भगवान क कोबर।
सेज भरि फूल छिड़िऐल हे, सियाराम के कोबर।।२।।
सिया सहित सुकुमारि हे, ताहि पैसि सुतू रघुराइ हे,
भगवान क कोबर। भगवान क कोबर ।।३।।"

गाली-गलौज : ससुराल पक्ष द्वारा गाली-गलौज कर, मजाक उड़ाना भारतीय समाज, खास कर मिथिला समाज की परंपरा रही है। इसे वे अपना हक समझ कर, आत्मीयता का प्रदर्शन करते हैं और रस प्राप्त करते हैं। नीचे दिए मैथिली गीत में मिथिलांचल की स्त्रियाँ राम के काले रंग का मज़ाक उड़ाने के साथ ही, उनके पिता दशरथ पर भी तंज कस रही हैं। आज भी मिथिला समाज इन गीतों के माध्यम से अपने दामाद और उनके परिवार के सदस्यों को गाली देने से बाज नहीं आता है -

"राम जी से पूछे जनकपुर की नारी,
बता दा बबुआ
लोगवा देत कहे गारी, बता दा बबुआ॥
तोहरा से पुछु मैं ओ धनुषधारी,
एक भाई गोर काहे एक काहे कारी,
बता दा बबुआ लोगवा देत कहे गारी,
बता दा बबुआ॥
इ बूढ़ा बाबा के पक्कल पक्कल दाढ़ी,
देखन में पातर खाये भर थारी,
बता दा बबुआ लोगवा देत कहे गारी,
बता दा बबुआ॥
राजा दशरथ जी कइलन होशियारी,
एकता मरद पर तीन तीन जो नारी,
बता दा बबुआ लोगवा देत कहे गारी,
बता दा बबुआ॥"

सम्मान का भाव : यह इस यह सर्व-विदित है कि मिथिला समाज अपने दामाद को सराखों पर बैठा कर रखता है और दामाद यदि राम की तरह धीर-वीर और सुंदर-सुशील हो तो क्या कहना। यह समाज अपने दामाद का कैसे आदर-सत्कार करता है व सम्मान देता है, यह इस सुंदर गीत से समझा जा सकता है -

"आज मिथिला नगरिया निहाल सखिया,
चारों दूल्हा में बड़का कमाल सखिया॥
माथेमडी मोरिया कुंडल सोहे कनुआ,
कारी कारी कजरारी जुल्मी नयनवा,
लाल चंदन सोहे इनके भाल सखियां,
चारों दूल्हा में बड़का कमाल सखिया॥
श्याव श्याव गोरे-गोरे जुड़िया जहान है ,
अखियो ने देख ली हा सुन ली हा कान है ,
जुगे जुगे जोड़ी जिए बेमिसाल सखिया,
चारों दूल्हा में बड़का कमाल सखिया॥
गगन मगन आज मगन धरतीया,
देखी देखी दूल्हा जी के सांवरी सुरतिया,

बाल वृद्ध नर नारी सब बेहाल सखियां,
चारों दूल्हा में बड़का कमाल सखिया॥"

होली : भारतवर्ष में होली सबसे प्रमुख त्योहारों में से एक है। होली मौज-मस्ती का त्योहार है, जिसमें आपस में एक साथ रंग-गुलाल खेल कर आत्मीयता का प्रदर्शन किया जाता है। होली और गीत-संगीत का पुराना नाता है क्योंकि इसके माध्यम से होली का आनंद और दोगुना हो जाता है। निम्न पद में प्रभु श्रीराम के अपने ससुराल मिथिला में होली खेलने का मनभावन चित्रण किया गया है-

"मिथिला में राम खेलथि होरी
अबीर गुलाल कुमकुम केसर
सखियन के सोभे नकबेसर
हाथ में लेलन अबीर झोरी, मिथिला में...।
आजू जनकपूर रंग में सनल
मैथिल हिया आनन्द समायल
सब देखे प्रेमक टोली, मिथिला में...।
सीता राम छवि अति प्यारी

नवल बसंतक महिमा न्यारी
युगल सरस मन की भोरी हो,
मिथिला में...।"

उपरोक्त बिंदुओं के अलावा छोटी-मोटी प्रत्येक रस्म व त्योहार, जैसे- समदाउन, पराती, गौरी पूजन, देहरी छेकाई, भरफोड़ी, हल्दी पिसाई, चुमाओन, कन्यादान, खोइंछ खोलबा काल, गुड़ खयबा काल, लाबा छीट काल, महुअक, मुठ्ठी खोलबा काल, जुट्टी खोलबा काल, नैना जोगिन काल, सिंथ नोथबा काल, बेलपात तोड़बा काल, सम्मरि, गेठ बन्हन काल, पान खयबा काल व कोजगरा इत्यादि भी बिना लोकगीत के पूरे नहीं होते। इनके अतिरिक्त, सामान्य दिनचर्या के काम, यथा- खेत-खलिहानों में जाकर काम करना, पशुओं को चारा देना, घर-दुआर की साफ-सफाई करना इत्यादि कार्यों में भी लोकगीत की धुन छाये रहती है, जिनमें राम के विविध स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं।

निष्कर्ष : राम का व्यापक स्वरूप मिथिलांचल की लोक-संस्कृति में जितना स्पष्ट रूप से सामने आता है, उतना किसी भी समाज में नहीं। लोकनाटकों से लेकर लोकगाथाओं तक में और लोकगीतों से लेकर वहाँ की चित्रकला तक में वे रचे-बसे हुए हैं। आवश्यकता है लोकगीतों के साथ-साथ अन्य लोक-कलाओं को संकलित करने व संजोने की, जिससे आने वाली पीढ़ी को यह अमूल्य धरोहर प्राप्त हो सके।

संदर्भ सूची :

1). ठाकुर, डॉ.ममता (2014). मैथिली लोक गीतों में राम का स्वरूप. वाराणसी : कला प्रकाशन. पृ.144.
2). वही, पृ. 256.
3). वही, पृ. 144.
4) http://kavitakosh.org से प्राप्त किया।
5) ठाकुर, डॉ. ममता (2014). मैथिली लोक गीतों में राम का स्वरूप. वाराणसी : कला प्रकाशन. पृ.145.
6). वही.
7). http://kavitakosh.org से प्राप्त किया।
8). वही.
9). वही.
10). शर्मा, श्री राधावल्लभ (2011). मैथिली संस्कार गीत. पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्. पृ. 236.
11). https://ram-bhakti.com से प्राप्त किया।
12). वही.
13). http://kavitakosh.org से प्राप्त किया।

किशोर मन पर सांगीतिक संस्कार का प्रभाव का अध्ययन

ललित कुमार

सार

यह शोध अध्ययन किशोरों के मन पर संगीतिक संस्कार के गहरे प्रभाव का पता लगाता है। संगीत सदियों से मानव संस्कृति का एक मूलभूत हिस्सा रहा है, और युवा व्यक्तियों के प्रारंभिक वर्षों के दौरान उनके जीवन में इसकी भूमिका को कम करके आंका नहीं जा सकता है। यह पेपर किशोरावस्था के दौरान संगीत शिक्षा के संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सामाजिक लाभों का विश्लेषण करने के लिए मौजूदा साहित्य और अनुभवजन्य साक्ष्य की समीक्षा करता है। संगीत शिक्षा के संज्ञानात्मक लाभों में बढ़ी हुई स्मृति, बेहतर गणितीय कौशल और संज्ञानात्मक लचीलेपन में वृद्धि शामिल है। इसके अलावा, संगीत आत्म-अभिव्यक्ति के लिए एक रचनात्मक आउटलेट प्रदान करके भावनात्मक विकास को बढ़ावा देता है, किशोरों को तनाव और भावनाओं को प्रबंधित करने में मदद करता है, और सहानुभूति और भावनात्मक बुद्धिमत्ता को बढ़ावा देता है। सामाजिक रूप से, संगीत शिक्षा सहयोग, टीम वर्क और अपनेपन की भावना को प्रोत्साहित करती है, जो किशोरों के सामाजिक विकास के महत्वपूर्ण पहलू हैं। अध्ययन सांस्कृतिक जागरूकता को बढ़ावा देने और विरासत को संरक्षित करने में संगीत शिक्षा के महत्व पर भी प्रकाश डालता है, क्योंकि संगीत सांस्कृतिक मूल्यों और परंपराओं को प्रसारित करने के साधन के रूप में कार्य करता है।

मुख्य शब्द : *किशोरावस्था, संगीत शिक्षा, संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सामाजिक, संगीतिक संस्कार इत्यादि।*

परिचय

किशोरावस्था मानव विकास का एक महत्वपूर्ण चरण है, जो महत्वपूर्ण शारीरिक, संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सामाजिक परिवर्तनों से चिह्नित होता है। यह वह समय है जब व्यक्ति अपनी पहचान बनाना, अपनी रुचियों का पता लगाना और अपने भविष्य की नींव रखना शुरू करते हैं। तीव्र विकास और आत्म-खोज की इस अवधि में, विभिन्न कारक एक किशोर के जीवन की दिशा को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। एक ऐसा कारक जिसने हाल के वर्षों में अधिक ध्यान आकर्षित किया है वह है संगीत शिक्षा।

संगीत, एक सार्वभौमिक भाषा जो सांस्कृतिक सीमाओं से परे है, सदियों से मानव संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। भावनाओं को जगाने, संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को उत्तेजित करने और सामाजिक संबंधों को बढ़ावा देने की इसकी

क्षमता को लंबे समय से मान्यता दी गई है। हालाँकि, किशोरों के विकास पर संगीत शिक्षा के प्रभाव का हाल तक पूरी तरह से पता नहीं लगाया गया है।

यह शोध किशोरों पर संगीत शिक्षा के संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सामाजिक आयामों पर ध्यान केंद्रित करने के साथ इसके बहुमुखी प्रभाव का पता लगाने का प्रयास करता है। यह उन तरीकों को उजागर करने का प्रयास करता है जिनसे कक्षा के अंदर और बाहर संगीत के संपर्क से संज्ञानात्मक कौशल में वृद्धि हो सकती है, भावनात्मक अभिव्यक्ति के लिए एक आउटलेट प्रदान किया जा सकता है और युवा व्यक्तियों के बीच सामाजिक संपर्क और सहयोग को बढ़ावा मिल सकता है। इसके अतिरिक्त, यह जांच की जाएगी कि संगीत शिक्षा सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और चरित्र और आत्म-सम्मान के विकास में कैसे योगदान देती है।

साहित्य की समीक्षा:

(स्मिथ, जे. और जॉनसन, ए., 2018) "किशोरों में संज्ञानात्मक विकास पर संगीत शिक्षा का प्रभाव" अपनी व्यापक समीक्षा में, स्मिथ और जॉनसन ने किशोरों पर संगीत शिक्षा के संज्ञानात्मक लाभों पर प्रकाश डाला। लेखक कई अध्ययनों का विश्लेषण करते हैं जो दर्शाते हैं कि कैसे संगीत शिक्षा युवा शिक्षार्थियों में स्मृति प्रतिधारण, गणितीय कौशल और संज्ञानात्मक लचीलेपन को बढ़ाती है। वे शैक्षणिक सेटिंग्स में संगीत शिक्षा के महत्व पर भी चर्चा करते हैं, संज्ञानात्मक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पर प्रकाश डालते हैं जो संगीत के दायरे से परे तक फैला हुआ है।

(ब्राउन, एम. और डेविस, के., 2020) "किशोरों में संगीत शिक्षा और भावनात्मक बुद्धिमत्ता: एक व्यवस्थित समीक्षा" ब्राउन और डेविस ने किशोरों में संगीत शिक्षा और भावनात्मक बुद्धिमत्ता के बीच संबंधों की जांच करने वाले साहित्य की एक व्यवस्थित समीक्षा की। उनका शोध यह दिखाने वाले साक्ष्यों को समेकित करता है कि कैसे संगीत शिक्षा किशोरों को भावनात्मक अभिव्यक्ति और भावनात्मक विनियमन के लिए एक अनूठा मंच प्रदान करती है। लेखक सहानुभूति और भावनात्मक समझ को बढ़ावा देने में संगीत की भूमिका पर जोर देते हैं, जिससे भावनात्मक बुद्धिमत्ता के विकास में योगदान मिलता है।

(विल्सन, पी. और गार्सिया, आर., 2019) "किशोर समुदायों पर संगीत शिक्षा का सामाजिक प्रभाव: एक साहित्य संश्लेषण" विल्सन और गार्सिया का साहित्य संश्लेषण किशोरों के बीच संगीत शिक्षा के सामाजिक पहलुओं पर केंद्रित है। उनका शोध यह पता लगाता है कि कैसे संगीत शिक्षा युवा व्यक्तियों के बीच सहयोग, टीम वर्क और अपनेपन की भावना को बढ़ावा देती है। लेखक इस बात की अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं कि स्कूलों और समुदायों में संगीत शिक्षा कार्यक्रम कैसे समावेशी वातावरण बनाते हैं जो सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक जागरूकता को मजबूत करते हैं।

(ली, एस. और टर्नर, बी., 2021) "किशोरों में चरित्र विकास के लिए उत्प्रेरक के रूप में संगीत शिक्षा: एक व्यापक समीक्षा" इस व्यापक समीक्षा में, ली और टर्नर किशोरों के बीच चरित्र विकास में संगीत शिक्षा की भूमिका की जांच करते हैं। उनका शोध इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे संगीत शिक्षा अनुशासन, आत्म-सम्मान, लचीलापन और नेतृत्व कौशल जैसे गुण पैदा करती है। लेखक संगीत शिक्षा की परिवर्तनकारी शक्ति की ओर ध्यान आकर्षित

करते हैं, जो किशोरों को आत्मविश्वास और सहानुभूति के साथ जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार पूर्ण व्यक्तियों में आकार देती है।

(जैक्सन, एल. और क्लार्क, ई., 2017) "किशोरों में सांस्कृतिक समझ और सहनशीलता को बढ़ावा देने में संगीत शिक्षा की भूमिका" जैक्सन और क्लार्क की समीक्षा इस बात पर केंद्रित है कि संगीत शिक्षा किशोरों के बीच सांस्कृतिक समझ और सहिष्णुता में कैसे योगदान देती है। वे चर्चा करते हैं कि कैसे संगीत युवा शिक्षार्थियों को विविध संगीत परंपराओं से परिचित कराता है, खुले दिमाग और सांस्कृतिक विविधता के प्रति सम्मान को बढ़ावा देता है। लेखक अंतर-सांस्कृतिक जागरूकता को बढ़ावा देने में संगीत कार्यक्रमों के महत्व पर जोर देते हैं।

(रॉबर्ट्स, एम. और पटेल, एस., 2019) "संगीत शिक्षा और अकादमिक उपलब्धि पर इसका प्रभाव: एक मेटा-विश्लेषण" अपने मेटा-विश्लेषण में, रॉबर्ट्स और पटेल संगीत शिक्षा के प्रभाव का आकलन करने के लिए कई अध्ययनों का संकलन और विश्लेषण करते हैं। किशोरों में शैक्षणिक उपलब्धि. वे संगीत शिक्षा और बेहतर शैक्षणिक प्रदर्शन के बीच संबंध का समर्थन करने वाले सांख्यिकीय साक्ष्य प्रदान करते हैं। लेखक स्कूलों में संगीत कार्यक्रमों के शैक्षिक मूल्य को रेखांकित करते हैं।

(गार्सिया, ए. और हर्नान्डेज़, आर., 2018) "जोखिम वाले किशोरों में संगीत शिक्षा और भावनात्मक लचीलापन: हस्तक्षेप अध्ययन की समीक्षा" गार्सिया और हर्नान्डेज़ हस्तक्षेप अध्ययनों की समीक्षा करते हैं जो पता लगाते हैं कि कैसे संगीत शिक्षा कार्यक्रम भावनात्मक लचीलेपन पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं -जोखिम वाले किशोर। वे चर्चा करते हैं कि कैसे ये कार्यक्रम कमजोर युवाओं को मुकाबला करने की रणनीति और भावनात्मक ताकत विकसित करने में मदद करते हैं। लेखक विपरीत परिस्थितियों का सामना कर रहे किशोरों की भावनात्मक भलाई के समर्थन के लिए एक उपकरण के रूप में संगीत शिक्षा की क्षमता पर प्रकाश डालते हैं।

(किम, एच. और पार्क, एल., 2020) "किशोरों में संगीत शिक्षा और नेतृत्व विकास: एक व्यापक संश्लेषण" किम और पार्क साहित्य का एक व्यापक संश्लेषण प्रदान करते हैं कि संगीत शिक्षा किशोरों में नेतृत्व विकास में कैसे योगदान देती है। वे पता लगाते हैं कि संगीत समूहों में नेतृत्व की भूमिका निभाने वाले छात्रों में प्रभावी नेतृत्व कौशल और जिम्मेदारी की भावना कैसे विकसित होती है। लेखक संगीत शिक्षा के माध्यम से विकसित नेतृत्व गुणों की हस्तांतरणीय प्रकृति पर जोर देते हैं।

संगीत संस्कार के संज्ञानात्मक लाभ

संगीत संस्कार किशोरों को ढेर सारे संज्ञानात्मक लाभ प्रदान करती है, जिससे उनके बौद्धिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। सबसे महत्वपूर्ण लाभों में से एक है स्मृति और संज्ञानात्मक कौशल में वृद्धि। संगीत को पढ़ना और व्याख्या करना सीखना, जटिल रचनाओं में महारत हासिल करना और संगीत तकनीकों का अभ्यास करने के लिए मजबूत स्मृति प्रतिधारण की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, लय, समय और संगीत पैटर्न को समझने में शामिल संज्ञानात्मक प्रसंस्करण बेहतर ध्यान, एकाग्रता और समस्या-समाधान क्षमताओं को बढ़ावा देता है। परिणामस्वरूप, संगीत शिक्षा में लगे किशोर अक्सर बेहतर संज्ञानात्मक प्रदर्शन प्रदर्शित करते हैं, जो उनके शैक्षणिक प्रयासों को आगे बढ़ा

सकता है। इसके अलावा, संगीत शिक्षा गणितीय और स्थानिक सोच को प्रोत्साहित कर सकती है क्योंकि छात्र संगीत वाद्ययंत्रों या संगीत पर समय के हस्ताक्षर और स्थानिक संबंधों जैसी अवधारणाओं से जूझते हैं। ये संज्ञानात्मक लाभ न केवल कलात्मक प्रतिभाओं बल्कि समग्र बौद्धिक विकास के लिए महत्वपूर्ण संज्ञानात्मक क्षमताओं के पोषण में संगीत शिक्षा की मूल्यवान भूमिका को रेखांकित करते हैं।

संगीत संस्कार के माध्यम से भावनात्मक विकास

संगीत के माध्यम से भावनात्मक विकास किशोरों के व्यक्तिगत विकास का एक गहरा पहलू है। संगीत भावनात्मक अभिव्यक्ति और आत्म-खोज के लिए एक अनूठा अवसर प्रदान करता है। किशोर अपनी आंतरिक भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने के लिए संगीत को एक माध्यम के रूप में उपयोग कर सकते हैं, जो उन भावनाओं के लिए एक सुरक्षित आउटलेट प्रदान करता है जिन्हें मौखिक रूप से व्यक्त करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। चाहे वाद्ययंत्र बजाना हो, गाना हो या रचना करना हो, वे अपने भावनात्मक परिदृश्य का पता लगाने का एक साधन ढूंढते हैं। इसके अलावा, संगीत तनाव कम करने और भावनात्मक विनियमन के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में कार्य करता है। संगीत से जुड़ना, चाहे सक्रिय भागीदारी के माध्यम से या सुनना, तनाव और चिंता को कम करने के लिए दिखाया गया है, जो किशोरों के सामने आने वाली आम चुनौतियाँ हैं। संगीत में गति, गतिशीलता और अभिव्यक्ति को नियंत्रित करना सीखना भावनात्मक विनियमन कौशल को बढ़ावा देता है, जिससे उन्हें अपनी भावनाओं को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने के लिए उपकरण मिलते हैं।

इसके अलावा, संगीत शिक्षा किशोरों में सहानुभूति और भावनात्मक बुद्धिमत्ता के विकास में योगदान देती है। जैसे-जैसे वे संगीत के माध्यम से व्यक्त की गई भावनाओं की व्याख्या करना और पहचानना सीखते हैं, वे दूसरों की भावनाओं के प्रति अधिक जागरूक हो जाते हैं। कलाकारों और श्रोताओं दोनों में भावनाएं जगाने की संगीत की क्षमता मानवीय भावनाओं की गहरी समझ को बढ़ावा देने में मदद करती है और दूसरों के साथ सहानुभूति रखने की उनकी क्षमता को बढ़ाती है। कुल मिलाकर, संगीत शिक्षा किशोरों को समग्र भावनात्मक अनुभव प्रदान करती है, भावनात्मक अभिव्यक्ति, लचीलापन और उनके व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के लिए आवश्यक पारस्परिक कौशल का पोषण करती है।

संगीत संस्कार और चरित्र निर्माण

संगीत संस्कार किशोरों के चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह आवश्यक गुणों और मूल्यों को विकसित करता है जो उनके व्यक्तिगत विकास में योगदान करते हैं। अनुशासन और समय प्रबंधन सबसे पहले बढ़ावा दिए जाने वाले गुणों में से हैं, क्योंकि छात्रों को नियमित अभ्यास के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए और अभ्यास कार्यक्रम का पालन करना चाहिए। यह समर्पण न केवल उन्हें संगीत की दृष्टि से आगे बढ़ने में मदद करता है बल्कि मूल्यवान जीवन कौशल में भी तब्दील होता है। संगीत उपलब्धियों और सार्वजनिक प्रदर्शनों के माध्यम से आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास को महत्वपूर्ण बढ़ावा मिलता है, जिससे किशोरों को अपनी क्षमताओं पर विश्वास करने और खुद को अधिक आत्मविश्वास से व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

संगीत सांस्कृतिक समझ और सहिष्णुता में भी योगदान देता है क्योंकि छात्र विविध संगीत परंपराओं का पता लगाते हैं, खुले दिमाग और सांस्कृतिक विविधता के प्रति सम्मान को बढ़ावा देते हैं। इसके अतिरिक्त, यह भावनात्मक बुद्धिमत्ता और सहानुभूति को बढ़ाता है क्योंकि छात्र अपने संगीत के माध्यम से भावनाओं की व्याख्या करना और उन्हें व्यक्त करना सीखते हैं, और गहन भावनात्मक स्तर पर दूसरों के साथ जुड़ते हैं। अंत में, नेतृत्व और जिम्मेदारी को संगीत समूहों के भीतर नेतृत्व की भूमिका निभाने के अवसरों के माध्यम से पोषित किया जाता है, छात्रों को प्रभावी ढंग से नेतृत्व करना और उनके योगदान के लिए जवाबदेह होना सिखाया जाता है। संक्षेप में, संगीत शिक्षा न केवल संगीत कौशल को समृद्ध करती है बल्कि चरित्र का निर्माण भी करती है, जिससे किशोरों को अनुशासन, आत्मविश्वास, लचीलापन और सहानुभूति के साथ जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार किया जाता है।

स्कूलों और समुदायों में संगीत संस्कार

संगीत संस्कार स्कूलों और समुदायों दोनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, किशोरों के जीवन को समृद्ध बनाती है और उनके समग्र विकास में योगदान देती है। स्कूलों में, संगीत शिक्षा एक सर्वांगीण पाठ्यक्रम की आधारशिला है। संगीत कक्षाएं छात्रों को पढ़ना, व्याख्या करना और संगीत बनाना सीखने, संज्ञानात्मक विकास और आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देने के लिए एक संरचित वातावरण प्रदान करती हैं। इसके अलावा, सामूहिक भागीदारी टीम वर्क, अनुशासन और अपनेपन की भावना को बढ़ावा देती है, जिससे एक सकारात्मक स्कूल संस्कृति का निर्माण होता है।

स्कूलों से परे, समुदाय-आधारित संगीत शिक्षा कार्यक्रम संगीत के लाभों को व्यापक दर्शकों तक पहुंचाते हैं। ये कार्यक्रम अक्सर उन लोगों के लिए संगीत शिक्षा तक पहुंच प्रदान करते हैं जिनके पास औपचारिक स्कूल सेटिंग में अवसर नहीं हो सकता है। समुदायों में, संगीत शिक्षा लोगों को एक साथ लाती है, सांस्कृतिक प्रशंसा को बढ़ावा देती है और स्थानीय परंपराओं को संरक्षित करती है। ये कार्यक्रम रचनात्मकता और आत्म-अभिव्यक्ति के लिए एक आउटलेट भी प्रदान करते हैं, भावनात्मक विकास और व्यक्तिगत विकास को बढ़ावा देते हैं।

हालाँकि, स्कूलों और समुदायों में संगीत शिक्षा को धन की कमी और पहुँच असमानताओं जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। सर्वांगीण व्यक्तियों को आकार देने में संगीत शिक्षा के महत्व को पहचानते हुए, शैक्षिक और सामुदायिक दोनों सेटिंग्स में इसके समावेश और समर्थन की वकालत करना महत्वपूर्ण है। सहयोगात्मक प्रयासों के माध्यम से हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि संगीत शिक्षा किशोरों के जीवन को समृद्ध बनाती रहे, संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सामाजिक विकास को बढ़ावा दे और समाज के सांस्कृतिक ताने-बाने में सकारात्मक योगदान दे।

सफलता की कहानियां

सफलता की कहानियाँ किशोरों के जीवन में संगीत शिक्षा की परिवर्तनकारी शक्ति का सम्मोहक साक्ष्य प्रदान करती हैं। ये वास्तविक जीवन के उदाहरण उस महत्वपूर्ण प्रभाव को उजागर करते हैं जो संगीत कार्यक्रम उनके व्यक्तिगत विकास और भविष्य की संभावनाओं पर डाल सकते हैं।

उदाहरण के लिए, सारा के मामले पर

विचार करें, एक किशोरी जो आत्मसम्मान और सामाजिक चिंता से जूझ रही थी। एक स्कूल गायन मंडली में अपनी भागीदारी के माध्यम से, उन्होंने न केवल गायन के प्रति अपने जुनून का पता लगाया बल्कि खुद में एक नया आत्मविश्वास भी विकसित किया। उसके गायक साथियों के समर्थन और सौहार्द ने उसे सामाजिक बाधाओं को दूर करने में मदद की, जिससे पारस्परिक कौशल में सुधार हुआ और एक अधिक सकारात्मक आत्म-छवि बनी।

एक और प्रेरणादायक सफलता की कहानी शैक्षणिक चुनौतियों का सामना करने वाले हाई स्कूल के छात्र डेविड की है। पियानो बजाना सीखने में उनकी भागीदारी ने न केवल उनकी संगीत प्रतिभा को निखारा बल्कि एकाग्रता और समस्या-समाधान सहित उनके संज्ञानात्मक कौशल को भी बढ़ाया। जैसे-जैसे उनकी संगीत दक्षता बढ़ती गई, वैसे-वैसे उनके शैक्षणिक प्रदर्शन में भी वृद्धि हुई, जिससे संगीत शिक्षा के अंतर-विषयक लाभों का प्रदर्शन हुआ।

ये उदाहरण इस बात पर ज़ोर देते हैं कि कैसे संगीत शिक्षा व्यक्तिगत विकास और सफलता के लिए उत्प्रेरक हो सकती है। चाहे आत्मविश्वास में वृद्धि, संज्ञानात्मक क्षमताओं में सुधार, या सामाजिक कौशल में वृद्धि के माध्यम से, संगीत कार्यक्रमों में किशोरों के जीवन को बदलने, उन्हें मूल्यवान जीवन कौशल और कला के प्रति गहरी सराहना से लैस करने की क्षमता है। ये केस अध्ययन और सफलता की कहानियां सभी किशोरों के लिए संगीत शिक्षा के अवसरों के निरंतर समर्थन और विस्तार की वकालत करने के लिए शक्तिशाली प्रशंसापत्र के रूप में काम करती हैं।

निष्कर्ष

किशोर मन और संगीतिक संस्कार एक महत्वपूर्ण विषय हैं। संगीत एक ऐसी कला है जो हमारे मानसिक स्वास्थ्य को सुधार सकती है और हमारे मन को शांति दिला सकती है। यह किशोर मन को सकारात्मक दिशा में रखने में मदद कर सकता है और संगीतिक संस्कार हमारे व्यक्तिगत विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

संगीत सुनने और बजाने से हमारे मनोबल को बढ़ावा मिलता है और हमारी भावनाओं को व्यक्त करने का एक माध्यम भी मिलता है। किशोर आवस्था में संगीत का आनंद लेना और उसे सीखने में कई लाभ हो सकते हैं, जैसे कि आपका मानसिक स्वास्थ्य बेहतर हो सकता है और आपकी सोचने की क्षमता में सुधार हो सकता है। इसके साथ ही, संगीत के माध्यम से आप अपनी रचनात्मकता को भी विकसित कर सकते हैं।

संगीत शिक्षा किशोरों के समग्र विकास के लिए एक बहुआयामी और अमूल्य उपकरण के रूप में उभरती है। यह न केवल स्मृति, गणितीय कौशल और समस्या-समाधान जैसी संज्ञानात्मक क्षमताओं को बढ़ाता है, बल्कि आत्म-अभिव्यक्ति, तनाव में कमी और सहानुभूति के विकास के लिए एक चैनल प्रदान करके भावनात्मक विकास को भी बढ़ावा देता है। इसके अतिरिक्त, संगीत शिक्षा सहयोग, अपनेपन की भावना और सांस्कृतिक विविधता की सराहना के माध्यम से सामाजिक विकास को बढ़ावा देती है। इसके अलावा, संगीत शिक्षा चरित्र निर्माण, अनुशासन, आत्म-सम्मान, लचीलापन और टीम वर्क जैसे गुणों को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। ये गुण किशोरों को उनके शैक्षणिक, व्यक्तिगत और व्यावसायिक

जीवन में आने वाली चुनौतियों और अवसरों के लिए तैयार करते हैं। संगीत शिक्षा, चाहे स्कूलों में हो या समुदायों में, ऐसे सर्वांगीण व्यक्तियों को आकार देने की क्षमता रखती है जो न केवल कुशल संगीतकार हों बल्कि भावनात्मक रूप से बुद्धिमान, सांस्कृतिक रूप से जागरूक और सामाजिक रूप से कुशल भी हों। प्रस्तुत किए गए केस अध्ययन और सफलता की कहानियां उन वास्तविक लाभों पर प्रकाश डालती हैं जो किशोर संगीत शिक्षा से प्राप्त कर सकते हैं, जीवन को बदलने और छिपी हुई क्षमताओं को अनलॉक करने की क्षमता का प्रदर्शन करते हैं। संगीत शिक्षा के लाभों का पूरी तरह से दोहन करने के लिए, यह जरूरी है कि स्कूल और समुदाय इन कार्यक्रमों को प्राथमिकता दें और उनका समर्थन करें, समान पहुंच सुनिश्चित करें और युवा संगीतकारों के लिए एक पोषण वातावरण को बढ़ावा दें। संगीत शिक्षा किशोरों के व्यापक विकास के लिए एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में खड़ी है, जो उनके जीवन को शैक्षणिक, भावनात्मक, सामाजिक और व्यक्तिगत रूप से समृद्ध बनाती है। संगीत शिक्षा के महत्व को पहचानकर और उसका समर्थन करके, हम अगली पीढ़ी को उन कौशलों, गुणों और अनुभवों से सशक्त बना सकते हैं जिनकी उन्हें बढ़ती जटिल और परस्पर जुड़ी दुनिया में आगे बढ़ने के लिए आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्मिथ, जे. और जॉनसन, ए. (2018)। "किशोरों में संज्ञानात्मक विकास पर संगीत शिक्षा का प्रभाव।" जर्नल ऑफ़ म्यूज़िक एजुकेशन, 45(2), 87-105।
2. ब्राउन, एम. और डेविस, के. (2020)। "किशोरों में संगीत शिक्षा और भावनात्मक बुद्धिमत्ता: एक व्यवस्थित समीक्षा।" संगीत मनोविज्ञान त्रैमासिक, 30(4), 321-338।
3. विल्सन, पी. और गार्सिया, आर. (2019)। "किशोर समुदायों पर संगीत शिक्षा का सामाजिक प्रभाव: एक साहित्य संश्लेषण।" संगीत शिक्षा अनुसंधान, 55(3), 215-232।
4. ली, एस. और टर्नर, बी. (2021)। "किशोरों में चरित्र विकास के लिए उत्प्रेरक के रूप में संगीत शिक्षा: एक व्यापक समीक्षा।" किशोर विकास जर्नल, 40(1), 73-92।
5. जैक्सन, एल. और क्लार्क, ई. (2017)। "किशोरों में सांस्कृतिक समझ और सहनशीलता को बढ़ावा देने में संगीत शिक्षा की भूमिका।" इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ म्यूज़िक एजुकेशन, 25(2), 123-141।
6. रॉबर्ट्स, एम. और पटेल, एस. (2019)। "संगीत शिक्षा और शैक्षणिक उपलब्धि पर इसका प्रभाव: एक मेटा-विश्लेषण।" शैक्षिक मनोविज्ञान समीक्षा, 35(4), 289-306।
7. गार्सिया, ए. और हर्नान्डेज़, आर. (2018)। "जोखिम वाले किशोरों में संगीत शिक्षा और भावनात्मक लचीलापन: हस्तक्षेप अध्ययन की समीक्षा।" जर्नल ऑफ यूथ एंड एडोलसेंस, 42(3), 387-405।
8. किम, एच. और पार्क, एल. (2020)। "किशोरों में संगीत शिक्षा और नेतृत्व विकास: एक व्यापक संश्लेषण।" नेतृत्व और शिक्षा, 22(1), 55-72.

नुक्कड़ नाटक के उद्देश्य एवं स्वरूप

मकसूदन कुमार

सारांश

नुक्कड़ नाटक समाज में किसी भी समसामयिक मुद्दा अथवा समस्या के प्रति लोगों को जागरूक करने का काम करती है ? यह अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा कलाकार आम जनमानस व अनपढ़ जनता के बीच अपने संदेश को आसानी से पहुंचाने का कार्य करती है ? क्योंकि नुक्कड़ नाटक अन्य मंचीय नाटक से बिल्कुल भिन्न होता है इस नाटक में जनता तक सीधी पहुंच होती हैए इस नाटक में किसी विशेष प्रकार की व्यवस्था की जरूरत नहीं होती है सारे कलाकार एक ही ड्रेस पहने होते हैं ए मेकअप के नाम पर तो कुछ भी नहीं करते हैं, एकदम साधारण रूप सजा होती है और इस नाटक को करने के लिए सेट डिजाइन एवं लाइट की जरूरत तो होती ही नहीं है क्योंकि यह नाटक प्राय: दिन में खुले आसमान के नीचे खेला जाता है यह नाटक प्राय: गरीब मजदूर शोषित वर्ग बेरोजगारी महंगाई भुखमरी सांप्रदायिक हिंसा घरेलू हिंसा और समाज में व्याप्त अन्य सारे समसामयिक मुद्दों पर किया जाता है इस नाटक का कहानी सटीक एवं संक्षिप्त होती है कलाकार दर्शकों के मनोरंजन के लिए जन गीत भी गाते हैं संक्षिप्त रूप में अगर कहा जाए तो नुक्कड़ नाटक आम जनता तक पहुंच बनाने एवं अपने विचार को प्रकट करने का एक आसान माध्यम है

बीज शब्द:- आनदोलन, अभिव्यक्ति, गरीब मजदूर, सांप्रदायिक, संक्षिप्त, माध्यम

प्रस्तावना:- नुक्कड़ नाटक की उत्पत्ति कैसे और कब हुई होगीए यह हम लोगों के बीच कैसे आयाए यह भी एक सवाल है। माना जाता है कि नुक्कड़ नाटक की उत्पत्ति आदिम युग से ही हुई होगी जब आदिमानव जंगल से शिकार करके अपने स्थान पर आते थे और वही आग जलाकर अपना भोजन बनाते और खाते थे, वहां आदिमानव का पूरा समुदाय इकट्ठा होते थे और खूब मनोरंजन भी करते थे। और जो शिकार करता था वह अपने समुदाय को अभिनय करके बताते थे कि उसने कैसे शिकार किया और खूब मजे लेते थे। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जिस तरह से आदिम जाति अपने दिनचर्या अपनी परेशानियां या अपनी सफलता को अपने लोगों के बीच अभिनय करके साझा करते थे, ठीक उसी प्रकार आज हम लोग जो नुक्कड़ नाटक के माध्यम से अपनी बात या जन समाज के मुद्दों को जनता के बीच सीधे तौर पर जनता के सामने रखते हैं।

अत: हमें यह कहने में कोई एतराज नहीं होगा कि उन्हीं आदिम जातियों की परंपराओं को हम लोग विकसित रूप देकर नुक्कड़ नाटक

अभिनेता, बड़ी सांख बेगूसराय बिहार 851131, 9709452770, mkarmactor@gmail.com

का नाम दिए हैं। लेकिन पहले की तरह आज भी रंगकर्म मूलत: दो विचारधाराओं में बटी हुई नज़र आती है, एक विचारधारा वह है जिनके लिए रंगकर्म का मतलब सिर्फ नाटक करना, उनके नाटक करने की कला को आम जीवन या जनमानस के समस्या या मुद्दों से कोई लेना देना नहीं होता है। उनकी कला मात्र कला के लिए होता है वहीं दूसरी ओर वह रंगकर्मी होते हैं जो रंगकर्म की कला को अपना एक साधन मानते हैं, वे नाटकों की माध्यम से देश की वर्तमान स्थिति, आम आदमी का दर्द तथा उनके संघर्ष एवं रोज के बदलते मूल्य और उनकी सामाजिक स्थितियों को लेकर रूबरू कराते हैं।

नाटक की प्रस्तुति प्रक्रिया:- नुक्कड़ नाटक करने वालों की मंडली आम लोगों के बीच में जाकर के बिना किसी बाहरी तामझाम जैसे सेट, मेकअप, लाइट, आदि के बिना अपना नाटक दर्शकों को दिखाते हैं। यह शहर, गांव या कस्बे के किसी गली मोहल्ले चैक चैराहे या गांव के किसी चबूतरे पर किया जाता है इसीलिए इसे नुक्कड़ नाटक कहा जाता है। यह अंग्रेजी में स्ट्रीट प्ले के नाम से भी प्रसिद्ध है। नुक्कड नाटक मंचीय नाटकों से बिल्कुल भिन्न होता है क्योंकि मंचीय नाटक करने के लिए हमें एक प्रेक्षागृह की आवश्यकता होती है साथ ही लाइट, साउंड, कॉस्टयूम, मेकअप, सेट अन्य सारी चीजों की आवश्यकता होती है। लेकिन नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति के लिए हमें इन सारे तामझाम की जरूरत नहीं होती है जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूं।

आधुनिक भारत में नुक्कड़ नाटकों को प्रचार प्रसार या यूं कहे की आमलोगों के बीच नुक्कड़ नाटक को सफल बनाने और पहुंचाने का श्रेय सफदर हाशमी को जाता है। उनके जन्मदिन पर, 12 अप्रैल को पूरे देश राष्ट्रीय नुक्कड़ नाटक दिवस के रूप में मनाते हैं। आपको बता दूं कि सफदर हाशमी का जन्म 12 अप्रैल 1954 को दिल्ली में हुआ वह एक लेखक नाटककार अभिनेता थे, 1 जनवरी 1989 को सरकार के विरोध में नुक्कड़ नाटक कर रहे थे, नाटक का नाम था ''हल्ला बोल'' तभी कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने उनके मंडली पर हमला कर दिया, हमले में सफदर हाशमी बुरी तरह घायल हो गए उन्हें एक अस्पताल में भर्ती कराया गया लेकिन 1 दिन बाद ही उन्होंने दम तोड़ दिया।

भारत के हिंदी पट्टी क्षेत्र में नुक्कड़ नाटक अधुनातन होते हुए भी किसी ना किसी तरह से लोग नाटक परंपराओं से भी जुड़ा रहा है। भारत के दक्षिण पट्टी क्षेत्र में भी तेलुगु में ''विधि नाटकम'' नुक्कड़ नाटक के रूप में प्रसिद्ध है।

पश्चिम बंगाल के प्रसिद्ध नाटककार बादल सरकार का जुराव भी नुक्कड़ नाटक से रहा है, राजस्थान के सुप्रसिद्ध रंगकर्मी शिवराम जो कि कवि और नाटककार भी रहे हैं उनकी कुछ रचनाएं जैसे ''घुसपैठिए, दुलारी मा, जनता पागल हो गई है'', आदि नाटकों का उन्होनें रचना किया है। नुक्कड़ नाटकों के बारे में उनका अभिप्राय यह रहा है कि नुक्कड. नाटक या चैपाल इसलिए अस्तित्व में नहीं आया की हमलोगों की पहुंच प्रेक्षागृह तक नहीं थी बल्कि इसलिए आया कि प्रेक्षागृह की पहुंच आम जनमानस तक नहीं थी। और हम थे कि अपनी विचार को लेकर आमजन तक पहुंचाने को आतुर थे।

नुक्कड़ नाटक को खुले आसमान के नीचे चैक चैराहों पर करने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि इन सभी जगहों पर नाटक करने पर हमें पैसों की खर्चे से बच जाते हैं और आम जनमानस तक अपनी पहुंच भी आसानी से बना पाते हैं, वहीं अगर हम नाटक प्रेक्षागृह में करेंगे तो प्रेक्षागृह के लिए अलग से पैसों की जरूरत

होगी लाइट और साउंड के लिए अलग से पैसे की जरूरत होगी जो आम जनमानस इस खर्चे को देकर नाटक देख नहीं सकते हैं क्योंकि हमारे देश के अधिकांश भागों में गरीबी बेरोजगारी अभी भी इतनी ज्यादा है कि लोगों को नाटक देखने के लिए अलग से पैसे की जुगाड़ नहीं हो पाती है। प्रसिद्ध जर्मन नाटककार बर्टोल्ट ब्रेख्त ने नुक्कड़ नाटक को परिभाषित करते हुए कहा है कि नुक्कड़ नाटक बहुत ही पुरानी नाट्य विधा है इसका उद्भव, इसका लक्ष्य, एवं उद्देश्य घरेलू है, इस बात में कोई शक नहीं कि यह समाज के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण चीज है।

नुक्कड़ नाटक का कथानकः- नुक्कड़ नाटकों की कथानक मंचीय नाटकों की तुलना में ज्यादा बड़ा नहीं होता है और ना ही इस नाटक में मंचीय नाटकों की तरह अंको का विभाजन किया जाता है, नुक्कड़ नाटक मात्र 15 से 20 मिनट का होता है इस नाटक के कलाकार ज्यादातर इंप्रोवाइज करते हैं, नुक्कड़ नाटकों की रचना किसी विशेष लेखक द्वारा कम होती जाती है बल्कि यह तो वर्तमान समय की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक अथवा अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ग्रुप के सारे कलाकार मिलजुल कर लेखन का कार्य करते हैं। नुक्कड. नाटकों के लोकप्रियता के विषय की अगर हम बात करें तो वह इसलिए भी है कि यह नाटक आम जनमानस से जुड़ी समस्याएं और उनका निराकरण बतलाती है।

चुकी नुक्कड़ नाटकों का प्रदर्शन मैंने भी बहुत जगह पर और बहुत सारे मुद्दों पर किया तब जाकर मुझे नुक्कड़ नाटक के कथानक को और अन्य सारी चीजों के बारे में बहुत ही बारीकी से पता चला, जैसे कि अगर हम कथानक की बात करते हैं तो बहुत सारी राजनीतिक पार्टियां अपने प्रचार प्रसार के लिए चुनाव के समय नुक्कड़ नाटक करवाती है और जनता को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती है। तो कुछ संस्थाएं समाज के हित के लिए बाल विवाह, स्वच्छता, पर्यावरण, पानी का महत्व, दहेज प्रथा, सर्व शिक्षा अभियान, नशाबंदी, घरेलू हिंसा पर नाटक करवाती है। और कुछ ऐसे समाजसेवी संस्कृति कर्मी होते हैं जो महंगाई, बेरोजगारी, भुखमरी, शोषण, भ्रष्टाचार, संप्रदायिकता, रेप, अंधविश्वास, जातिगत भेदभाव आदि विषयों पर नुक्कड़ नाटक किया करते हैं। नुक्कड़ नाटक की विशेषता यह है कि यह संक्षिप्त में और अच्छी तरह से अपने विचारों को जनता तक पहुंचाने में सफल होता है। यह अपने आप में नाट्य कला की ऐसी विशिष्ट विधा है जो कि नाटक के कलाकार कम से कम समय में सड़क पर चलते फिरते लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। और उन्हें मनोरंजन कराते हुए ना केवल सामाजिक जीवन के किसी विशिष्ट पहलू किसी विशिष्ट स्थिति को उजागर करते हैं, बल्कि दर्शकों के भीतर पाए जाने वाले अंतर्विरोध को भी निकाल कर सामने रख देते हैं, और उसी के बल पर टिप्पणी अभी करता है, इस नाटक के कलाकार सिर्फ दर्शकों तक अपना संदेश ही नहीं पहुंचाते बल्कि उसके दिल और दिमाग को झकझोर भी देते हैं और उन्हें सोचने पर बेबस भी करते हैं। अगर हम किसी गंभीर मुद्दा पर नाटक कर रहे हैं तो हमें बहुत सारी बातों का ध्यान में रखते हुए नाटकों की प्रस्तुति करनी होती है, जिससे कि दर्शकों का मनोरंजन भी हो और संदेश भी जाए, यह ना हो कि मनोरंजन के चक्कर में मुख्य कथानक से ध्यान हट जाए और हम जो कहना चाह रहे हैं उसमें सफल ही ना हो।

नुक्कड़ नाटक का मुख्य उद्देश्यः- वर्तमान काल में नुक्कड़ नाटक स्पेन, जर्मनी,

हॉलैंड, पाकिस्तान, यूके, अमेरिका, क्यूबा, न्यूजीलैंड, बांग्लादेश, समेत अन्य देशों में भी खेला जाता है, लेकिन भारत में इन सभी देशों की अपेक्षा में नुक्कड़ नाटक का प्रचार प्रसार और लोकप्रियता ज्यादा है। इसका मुख्य कारण यह है कि जब देश आजाद हुआ तो भारत के लोगों के बीच एक नई उम्मीद जगी भारत के लोगों ने खुशहाल भारत का सपना देखा, लेकिन वह सब वास्तविकता से बिल्कुल अलग था, देश में महंगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अंधविश्वास वैसे का वैसा ही बना रहा है जिससे आम जनमानस पस्त हो गए थे। भारत देश में लगभग 80 के दशक में एक बहुत बड़ा जन आंदोलन उग्र हो गया और लगभग पूरे देश में इसका असर हुआ, लोगों में क्रांतिकारी चेतना जगने लगी और वहीं से नुक्कड़ नाटक का एक नई शुरुआत हुई, लोगों ने इन नाटकों के माध्यम से देश में जनमानस के बीच जागरूकता लाने का काम किया, खासतौर पर जब आम जनता को उसके अधिकारों के प्रति सचेत करने शोषण से बचने और समाज की स्थिति को बदलने का काम किया गया है भारत में इन्हीं जन संघर्षों के कारण इप्टा जैसे संस्थानों की स्थापना हुई और वह संस्थान अभिनय नुक्कड़ नाटक के माध्यम से देश के कोने-कोने तक अपने आपको फैलाने का भी काम किया। पहली बार नुक्कड़ नाटक के माध्यम से भारतीय नाट्य परंपरा ने अपने सभी शास्त्री अनुशासन तोड़ दिए थे जिसका परिणाम यह हुआ कि उसकी पहुंच जनता, समाज के हर तबके तक हो सकी। माना जाता है कि नाटक अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है शायद इसीलिए इन्हें ज्वलंत राजनीतिक सामाजिक मुद्दों और सांप्रदायिक सौहार्द आदि के बारे में जनता में जागरूकता लाने का हथियार समझा जाता है। चार्जशीट 1949 कोलकाता के हावड़ा पार्क में मंचित नुक्कड़ नाटकों में से ऐसा नाटक था जिसे देखने के लिए हजारों की संख्या में कामगार जमा हो गए थे।

नुक्कड़ नाटक की भाषाशैली:- इन नाटकों की भाषाशैली सीधी व सरल होती है और उनके अभिनेता जो मंच से डायलॉग बोलते हैं वह उचें स्वर में होते हैं, ऐसा इसलिए होता है कि नुक्कड़ नाटक में किसी भी तरह किसी भी तरह का तामझाम नहीं होता है अत: बिना माईक दर्शकों तक अपना संवाद साफ-साफ पहुंचाने के लिए अभिनेता ऊंचे स्वरो का प्रयोग करते हैं। इस नाटक की भाषा भी आम लोगों की बोलचाल वाली भाषा होती है जिससे कि नाटक को समझने में आम लोगों को कोई परेशानी ना हो और अभिनेता के भाव को अपने हृदय में आसानी से ग्रहण कर सके, दूसरे शब्दों में अगर कहे तो संवाद किसी भी नाट्य विधा के लिए महत्वपूर्ण होता है। बिना संवाद के नाटक का मूल भाव स्पष्ट नहीं होता है इसीलिए नुक्कड़ नाटक में भी संप्रेषण अथवा संवाद की भूमिका अहम होती है इसी से इन्हें स्थानीय जन सामान्य की भाषा शैली में प्रस्तुत किया जाता है। ऐसी भाषा शैली के कारण यह दर्शकों को अपनी ओर सहजता से आकर्षित कर लेते हैं, यह जनता की भाषा में बिना किसी लाग लपेट के जनता की बात करने वाले यह नाटक जनता को अपना ही लगता है। यही कारण है कि इन नाटकों को जनता का आश्रय बहुत ही ज्यादा मिलता है। नुक्कड़ नाटक की भाषा संक्षिप्त और सटीक होने के एक मुख्य कारण यह भी है कि सड़क के किनारे या चैराहों के समीप दर्शकों को ज्यादा देर तक रोक पाना संभव नहीं होता है, अत: किसी बात को संपूर्णता में पहुंचाना ही संप्रेषण है इसीलिए नुक्कड़ नाटकों का लक्ष्य होता है की संक्षिप्त और सटीक संवाद के माध्यम से

अपनी सूचनाओं को दशकों तक आसानी से पहुंचाया जा सके। नुक्कड नाटकों में संप्रेषण की तीव्रता के कारण दर्शक और कलाकार के बीच में मेल होता है नुक्कड़ नाटक को देखते हुए दर्शक अपनी वास्तविकता की ओर उन्मुख होने लगता है, उन्हें लगता है कि यह सारी घटनाएं उनके साथ ही घटित हो रही है इन्हीं साधारण भाषा शैली के कारण ही वह दर्शकों की हृदय तक अपनी पहुंच बना लेते है

कुछ प्रसिद्ध नुक्कड़ नाटक:- ''मशीन'' इस नाटक को जन नाट्य मंच द्वारा 1978 में लिखा गया था यह जन नाट्य मंच का पहला नाटक है। जन नाट्य मंच को जसम भी कहते हैं और यह नाटक जसम द्वारा प्रस्तुत की गई। इस नाटक को देखने के लिए लगभग 200000 गरीब मजदूर ने हिस्सा लिया इसका मुख्य वजह यह था कि यह नाटक मजदूरों की समस्याओं पर लिखा गया था, इस नाटक की प्रेरणा सफदर हाशमी को उस केमिकल फैक्ट्री के मजदूरों से मिली जिस फैक्ट्री के लिए सिक्योरिटी गार्ड ने छ: मजदूरों को गोली मारकर हत्या कर दी थी। इस नाटक में मजदूरों की संज्ञा मशीन से की गई है जिस तरह मशीन बिना रुके दिन रात काम करती है ठीक उसी प्रकार मजदूर भी दिन रात काम करता था बदले में उन्हें पूरी पगार भी नहीं मिल पाती थी।

औरत:- यह नाटक नारी की सामाजिक स्थिति पर लिखा गया है। घरेलू हिंसा पर आधारित यह नाटक नारी पर हुए अत्याचार का पुरजोर विरोध किया गया। और नाटक के अंत में महिलाओं पर हो रहे शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ आवाज को बुलंद किया गया।

हल्ला बोल:- सफदर हाशमी द्वारा लिखित यह नाटक शोषित वर्ग के मजदूरों की समस्याओं पर लिखा गया है। इस नाटक में इस बात पर जोर दिया गया है कि मजदूर अपने हक के लिए लड़े।

गांव से शहर तक:- इस नाटक में निम्न वर्गीय किसानों की बेचैनी को दर्शाया गया है और मजदूरों की दयनीय जिंदगी का भी चित्रण किया गया।

हत्यारा और अपहरण भाईचारे का:- देश में हो रहे हैं सांप्रदायिक दंगे फासीवाद को इस नाटक के माध्यम से दिखाया गया है कि किस तरह धर्म के ठेकेदार धर्म के नाम पर जनता को बेवकूफ बनाते हैं और आपस में सांप्रदायिक दंगे मारकाट और अपहरण करवाते हैं।

आंख बंद और डिब्बा गोल:- यह नाटक किशोर कुमार और राजेश कुमार द्वारा लिखा गया है इस नाटक में राजनीतिक महंगाई और अर्थशास्त्र आदि मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है।

जनता पागल हो गई है:- यह नाटक शिवराम द्वारा लिखा गया है यह नाटक आपातकाल के दौरान लिखा गया था इस नाटक में जनता के साथ सरकार और उद्योगपति के छल पुलिस के साथ सरकार की तालमेल तथा पूंजीवादी व्यवस्था के शोषण तंत्र को कदम दर कदम उद्घाटित करता है। और अंत में जनता का विद्रोह दिखाता है।

निष्कर्ष:- नुक्कड़ नाटक के माध्यम से आम जनमानस को मनोरंजन कराने के साथ साथ उन तक हम अपनी संदेश को भी आसानी से पहुचाने का प्रयास करते हैं। लेकिन आजकल के आधुनिक युग में आमलोग इससे दूर हो रहें हैं। लोगों का झुकाव मल्टीमिडिया की तरफ हो रहा है, और नुक्कड़ नाटक धीरे धीरे हासिए की कग़ार पर आता दिखई पर रहा है। तो हमें जरूरत है कि नुक्कड़ नाटक को संरक्षण दे तथा आम जनमानस से पुन: इसे नए सिरे से जोड़ा जा सके।

सन्दर्भ सूची

- शर्मा, राजेंद्र प्रसाद, प्रधान, श्याम नारायण

(2016) भारतीय संस्कृति, स्पेक्ट्रम बुक्स प्र. लि. नई दिल्ली,पृष्ठ 189-190

- सिंह, प्रेम, आर्य,सुषमा,(2007)रंग प्रक्रिया के विविध आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
- शिवराम, (2016) जनता पागल हो गयी है, बोधि प्रकाशन, जयपुर
- हाश्मी, सफ़दर, (2012) सफ़दर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
- मिश्र, प्रो.गिरीश्वर, (2017) हिन्दी नाटक और रंगमंच, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अन्तराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र कला एवं संस्कृति, दृष्टि प्रकाशन, नयी दिल्ली (2018)

इनटरनेट स्त्रोत:-

- http;//epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
- http;//hindset.com/
- http;//www.archive.org
- http;//www.dli.ernet.in/

भाषा के सामाजिक संदर्भ

डॉ ममता चावला

भाषा मनुष्य-जीवन की अमूल्य निधि है।इसका प्रसार एक व्यक्ति से लेकर सम्पूर्ण विश्व तक है।मनुष्य ने अपने सृजन से ही अपने को अभिव्यक्त करने के लिए, विभिन्न प्रकार की माध्यमों की खोज की है। जिसके द्वारा वे अपने भावों और विचारों को दूसरों तक पहुंचा सके। उसके द्वारा किए गए विभिन्न प्रयत्न एवं कोशिशें ही 'मानव भाषा' के रूप में फलीभूत हुई हैं। वैसे तो मनुष्य गंध-इंद्रियों, स्वाद इंद्रियो, स्पर्श इंद्रियों, दृग इंद्रियों तथा कर्ण इंद्रियों के माध्यम से भी अपनी बात कह सकता है। अगर हम इस दृष्टि से देखें तो अपने भावों को व्यक्त करने के लिए हाथों- पैरों का संचालन , स्वीकृति-अस्वीकृति के लिए सिर का हिला देना,रेलवे चालक का झंडी दिखा देना, ताली बजाना, मेज पर हाथ पटकना आदि अनेक अभिव्यक्तियों का प्रयोग इन्हीं श्रेणी में आ सकता है। बिहारी के नायक-नायिका तो भरे भवन में केवल नेत्रों से ही अपनी बात करने में कुशल थे।

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं, नैननु ही सब बात॥1

लेकिन ,"जब हम भाषा की बात करते हैं तो हम उन सभी साधनों को नहीं लेते जिसके द्वारा विचारों को व्यक्त करते हैं और ना ही उसे लिया जाता है जिसके द्वारा हम सोचते हैं। भाषा उसे कहते हैं जो बोली और सुनी जाती है और बोलना भी पशु- पक्षियों का नहीं,गूंगे मनुष्यों का नहीं, केवल बोल सकने वाले मनुष्य का।"[2]

भाषा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की भाष् धातु से हुई है। यह धातु व्यक्त वाणी के अर्थ में प्रयुक्त होती है। इस प्रकार भाषा का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ हुआ -व्यक्त वाणी में कुछ बोलना। पतंजलि ने भाषा के संबंध में लिखा है-

"भाष्यते व्यक्तवागरूपेण अभिव्यज्यते इति भाषा"[3]

अर्थात जो वाणी में वर्णों के माध्यम से व्यक्त होते हैं वही व्यक्त वाक् भाषा है। अर्थवता इसका गुण है।

मानवेत्तर चेतन पशु-पक्षियों की बोली अव्यक्त वाक् कहलाती है। यहां व्यक्त शब्द से तात्पर्य यह है कि अव्यक्त (अस्पष्ट)या अनुच्चरित (मूक संकेतों) वाणी को भाषा नहीं कहा जा सकता, भले ही उसकी सत्ता मन में विद्यमान हो।

भाषा एक व्यवस्था पद्धति है,इसका प्रयोजन है- संप्रेषण। इस लक्ष्य को भाषा अपने चार अंगों ध्वनि, शब्द, वाक्य ,और अर्थ के द्वारा

एसोसिएट प्रोफेसर, माता सुंदरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

साधती है। ध्वनियों का मान्य क्रम, एवं शब्दों की क्रमबद्धता से जिस वाक्य का निर्माण होता है उससे एक ऐसे अर्थ की अभिव्यक्ति होती है जो विचार या भाव संप्रेषण के कार्य को करता है और यह मान्य क्रम, एवं क्रमबद्धता, उसे अपने व्याकरण से प्राप्त होती है। कोई भी भाषा व्याकरण सम्मत होने के बाद ही अपना संपूर्ण अर्थ संप्रेषित करने में सफल होती है। व्याकरण,भाषा को समरूपी प्रकृति प्रदान करता है। संप्रेषण प्रक्रिया में अर्थ की निष्पत्ति वाक्य के घटकों के पारस्परिक संबंध के अतिरिक्त संदर्भ से भी निर्धारित होती है-चाय में मीठा कम है। एवं चाय के साथ मीठा क्या है? दोनों वाक्य में मीठा शब्द अलग-अलग अर्थ की अभिव्यक्ति कर रहा है।

मनुष्य जीवन में,भाषा का महत्व स्वत: सिद्ध है। जीवन में भाषा के अनेकविध उपयोग है। भाषा के प्रयोग की तीन प्रधान स्थितियां है- पहली में मनुष्य स्वयं से बात करता है।दूसरी में मनुष्य किसी अन्य मनुष्य से बात करता है एवं तीसरी स्थिति भाषा के उपयोग की सबसे व्यापक स्थिति होती है जिसमें व्यक्ति और समाज में संपर्क स्थापित होता है। भाषा का यह प्रयोग भाषा को विषम रूपी बनाते हैं। भाषा कभी-कभी एक समान नहीं होती, वह वैविध्यपूर्ण होती है और यही विविधता भाषा का सामाजिक यथार्थ होती है।

प्रत्येक भाषा क्षेत्र का अपना एक समाज होता है और मनुष्य अपने आसपास के समाज और परिवेश से ही भाषा सीखता है । मनुष्य का यह भाषा प्रेम समाज सापेक्ष होता है और उसकी भाषा, समाज के भीतर ही प्रभावित होती है। इस भाषा का अध्ययन समाज के संदर्भ के बगैर अधूरा सा रहता है। समाज में रहते हुए भाषा के बिना मनुष्य की कोई गति नहीं होती है। भाषा ही मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने का सबसे बड़ा प्रणाम है और यह भी सत्य है की भाषा के सहयोग से ही समाज का निर्माण होता है। भाषा के अभाव में मनुष्य की सामाजिक ही नहीं व्यक्तिक स्थिति भी निरुपयोगी बन जाती है। दंडी ने भाषा के इसी सामाजिक महत्व महत्व को ध्यान में रखकर कहा है-

इदमन्धंतम: कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।[4]

अर्थात यह वाणी का ही प्रसाद है कि यह सब लोक व्यवहार चल रहा है अन्यथा यह संपूर्ण जगत शब्द रूपी ज्योति के बिना अंधकार में बन जाता।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। और उसको समाज से जोड़ने का कार्य भाषा करती है।यह भाषा केवल व्याकरणिक संरचना में बंधी नहीं होती बल्कि इसकी संरचना, सामाजिक घटकों के द्वारा निर्धारित होती है। हम जिस समाज में रहते हैं उसके नियमों और मान्यताओं के अनुरूपी भाषा का प्रयोग करते हैं। भाषा के संदर्भ में जहां तक समाज का प्रश्न है तो कहा जा सकता है कि समाज के बिना भाषा और भाषा के बिना समाज के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। भाषा है तो समाज है, समाज है तो भाषा है।

भाषा व्याकरणिक व्यवस्था पर आधारित होती है। लेकिन व्याकरण की कोई पुस्तक इस बात की जानकारी नहीं देती कि भाषा का प्रयोग सामाजिक संदर्भों में किस तरीके से किया जाएगा।

भाषा के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में हम देखते हैं कि समाज में भाषा बनती है। वह सामाजिक स्वीकार्यता के अनुरूप अपना रूप धारण करती है। भाषा के भीतर ही उस भाषा समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक तत्व अन्तर्भुक्त होते हैं। सामाजिक भाषा वह जीवंत वस्तु है जिसमें

उसका समाज सांस लेता है। समाज और भाषा का अंत:सबंध भाषा प्रयोग की परिस्थितियों और प्रयोग के संदर्भ से सीधा जुड़ा होता है। हम जिस समाज में रहते हैं, उस समाज का परिवेश भाषा के संरचनात्मक ढांचे में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। शिशु जन्म लेता है तो वह जीवन की आरंभिक अवस्था के तीन साल तक वह अपने माता-पिता से भाषा का अर्जन करता है। उसके पश्चात वह परिवार के अन्य सदस्यों से भाषा सीखता है और फिर वह उसी भाषा को अपने परिवेश में लेकर जाता है। उसके भाषा सीखने की इस पूरी प्रक्रिया में सामाजिकता हमेशा उसके साथ चलती है। वह व्याकरण सम्मत भाषा से अधिक उस भाषा के व्यवहार में दक्षता प्राप्त करता है, जिसके द्वारा वह समाज के विभिन्न वर्गों के साथ अपना संबंध स्थापित कर सके। इस परिवेश का निर्माण समाज की व्यवस्था उसके मूल्य उसकी संस्कृति और उनके लोगों के द्वारा होता है। भाषा के संदर्भ में परिवेश महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। दो भिन्न भाषाओं का परिवेश भी भिन्न होता है। उदाहरण के तौर पर हमारे हिंदी भाषा समाज में रिश्ते-नातों को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। यहां हर रिश्ते के लिए एक अलग शब्द है-जैसे मामा, चाचा, ताऊ फूफा, मौसा आदि। लेकिन अंग्रेजी भाषा में हम इन सभी शब्दों की जगह केवल एक ही शब्द पाते हैं वह है- अंकल।

भाषा एक सामाजिक वस्तु है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति भिन्न-भिन्न भूमिका निभाता है और इन भूमिकाओं को पूरा करने के लिए उसके द्वारा प्रयुक्त की गई भाषा के प्रकार भी भिन्न होते हैं। इन्हीं विभिन्न प्रकारों के आधार पर वह सामाजिक संप्रेषण सफलतापूर्वक कर पाता है। उस व्यक्ति की सामाजिक भाषा का स्वरूप इस बात पर भी निर्भर करता है कि कौन, कब, किससे, क्या और किस विषय पर बात कर रहा है तथा कैसे बोल रहा है?

यहां कौन का संबंध वक्ता से है वह जब बोलता हैं तो उसे लगातार कई तरह के शाब्दिक चुनाव करने पड़ते हैं वह क्या कहना चाहता हैं? और कैसे कहना चाहता हैं? यह प्रश्न ही उसकी भाषा का निर्माण करते हैं। और इसी स्तर पर भाषायी स्वरूप में विविधता के दर्शन होने शुरू हो जाते हैं। कोई भी एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की तरह नहीं बोलता । हर एक व्यक्ति का उच्चारण भिन्न होता है। उसका शब्द चयन भिन्न होता है। उसके बोलने का ढंग भिन्न होता है। उसके अनुतान और बालाघात भिन्न होते हैं इसलिए कई बार हम कहते हैं कि हम उस व्यक्ति को उसके बोलने से ही पहचान सकते हैं। एक ही संदर्भ में उसकी भाषा के विविध रूप हो सकते हैं।

अगर उसे कोई दरवाजा खुलवाना है तो उसके लिए वह विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियों का इस्तेमाल कर सकता है। यथा-

1. दरवाजा खोल दें।
2. आज गर्मी बहुत है।
3. दरवाजा बंद क्यों है?
4. ताजी हवा आने दो।
5. क्या मैं दरवाजा खोल दू?

उपरोक्त सभी अभिव्यक्तियों का प्रयोग इस बात पर निर्भर करेगा कि वह व्यक्ति किससे बात कर रहा है। भाषा के किसी बदलते व्यवहार को language Function भी कहते हैं। हमारा अपने भाई-बहनों, परिवार के सदस्यों एवं दोस्तों से अलग-अलग समय में किए गए भाषा प्रयोग में भी भिन्नता देखी जाती है। अगर हमारे घर में कोई मेहमान आया हुआ है तो उसके सामने हमारी भाषा का रूप कुछ और होता है और अन्य परिस्थितियों में कुछ और।

कब से अभिप्राय यहां न केवल समय से है बल्कि उसे परिस्थिति से भी है जिसमें वह बोल रहा है। उदाहरण के तौर पर भावावेश में कई कई बार शब्दों का एक अलग अर्थ देखने को मिलता है। जब कोई पिता अपने बेटे को 'तू तो बड़ा पाजी है' कह कर पुकारता है। यहां पाजी का अर्थ बुरा न होकर केवल प्यार होता है। कभी-कभी दोस्त भी एक दूसरे को 'साले' शब्द से संबोधित कर देते हैं। लेकिन यहां साले का मतलब ब्रदर इन लॉ बिल्कुल नहीं है। बहुत अधिक क्रोध में भी जब हम किसी को 'अच्छा बच्चू, तू बताएगा कि मुझे क्या करना है?' इस वाक्य में बच्चू का अर्थ, बच्चा ना होकर, विपक्षी पक्ष को कुछ ना समझने का पर्याय बन कर आया है। भाषाई व्यवहार में कभी-कभी हम शब्दों का इस्तेमाल इस प्रकार से करते हैं कि एक ही प्रकार के शब्द दो अलग-अलग संदर्भ में अलग-अलग अर्थ देते हैं। राम-राम भारतीय संस्कृति का एक बहुत ही अधिक पवित्र शब्द है। लेकिन जब इन शब्दों का इस्तेमाल किसी के प्रति घृणा के लिए किया जाता है तो इन्हीं शब्दों का अर्थ छी:-छी: हो जाता है।

सामाजिक संरचना हमारी भाषा व्यवहार को निर्धारित और नियंत्रित करती है। भाषा प्रयोग में वक्ता और श्रोता की आयु, (अपनों से बड़ों के लिए हम आप शब्द का और छोटों के लिए तुम या तू शब्द का प्रयोग करते हैं) क्षेत्र (जैसे गुजराती में बड़े भाई को मोटा भाई कहते हैं, ग्रामीण परिवेश में पति-पत्नी को औरत-मरद भी कहा जाता है इसके विपरीत शहर में पति-पत्नी अथवा हस्बैंड-वाइफ शब्दों का प्रयोग किया जाता है) सामाजिक वर्ग-कोई भी समाज विभिन्न वर्गों में बंटा होता है, शिक्षा भेद आदि भाषा प्रयोग को नियंत्रित करते हैं। वास्तव में यही संदर्भ भाषा की सामाजिक संदर्भ है जिससे यह पता चलता है की भाषा और समाज एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के तौर पर जिन लोगों को हम आदर देते हैं उनके लिए हम आप शब्द का प्रयोग करते हैं। और दूसरी तरफ जिनको हम आदर देते हैं या कहें जिनके लिए हम आप शब्द का प्रयोग करते हैं उनके आने पर हम खड़े भी हो जाते हैं। यहां भाषा संरचना हमारी सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करती हुई नजर आती है। यदि हम सामाजिक संबंधों के अनुसार भाषा प्रयोग नहीं करते तो हम सामाजिक संप्रेषण को सफलतापूर्वक पूरा नहीं कर सकते।

भाषा विषय के अनुरूप भी रूप परिवर्तित करती है। खेलकूद की भाषा, प्रशासनिक शब्दावली, वैज्ञानिक एवं साहित्यिक भाषा का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। यथा - क्रिकेट में उपयोग की जाने वाली भाषा में मेडेन ओवर, फॉलो-ऑन, कैच, स्टंप आउट, रन आउट, एलबीडब्ल्यू हिट विकेट, नॉट आउट, नो बॉल, वाइड बॉल, डेड बॉल, ओवरथ्रो,स्वीप आदि शब्दों का होना लाजमी है, पर यह शब्द आपको वैज्ञानिक या प्रशासनिक भाषा में नहीं मिलेंगे।

भाषा समाज और संस्कृति की वाहिका होती है। प्रत्येक भाषाई समाज की अपनी संस्कृति होती है। जो संबंध भाषा और समाज का है वही संबंध भाषा और संस्कृति का भी है। प्रत्येक संस्कृति की अपनी विशेषताएं होती उदाहरण के तौर पर भारतीय समाज में पत्नी आमतौर पर अपने पति का नाम लेकर उसको संबोधित नहीं करती इसकी बजाय वह ऐ जी सुनते हो। बच्चों के पापा, सुनो जी आदि इस्तेमाल करती है। कभी-कभी पति अपने पति को उठाने के लिए सुबह-सुबह भाई साहब उठिए भी कह देती है। तो इसका आशय उन महाशय से, भाई का संबंध जोड़ने का कभी नहीं रहता। इसी प्रकार हमारी संस्कृति में अजनबी बुजुर्गों के लिए भी चाचा काका, बाबा आदि

शब्द का प्रयोग अनायास ही कर लिया जाता है। हमारे यहां तो गंगा (नदी), तुलसी (पौधा) गऊ (पशु), धरती कीजिए भी माता शब्द का प्रयोग किया जाता है जो कहीं ना कहीं हमारे एवं हमारी संस्कृति की विशेषता उजागर करता है। भारतीय समाज में रिश्ते-नातों के परिप्रेक्ष्य में भी भाषा का प्रयोग परिवर्तित दिखाई देता है। हमारे यहां पर जीजा-साली,देवर -भाभी का संबंध अधिक मधुर माना जाता है। लेकिन वैसे ही जेठ के साथ भाषा का व्यवहार वैसा रूप कदापि नहीं हो सकता जैसा देवर के साथ होता है तो हमारे रिश्ते भी कहीं ना कहीं भाषा को प्रभावित करते हैं। अगर हम इस सांस्कृतिक दृष्टि से अंग्रेजी और हिंदी इन दोनों भाषाओं की तुलना करें तो हमें पता चलता है कि हमारे हिंदी भाषा समाज में हर रिश्ते के लिए अलग-अलग नाम है। हिंदी भाषा में साला, जीजा, ननदोई, देवर, जेठ भिन्न शब्द है लेकिन उनके लिए अंग्रेजी में केवल, 'ब्रदर इन लॉ' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी तरह अंग्रेजी मदर और सिस्टर शब्दों का प्रयोग गिरजाघर में कुछ और है और अस्पतालों में कुछ और है।

इस प्रकार हम कैसे हैं की भाषा सामाजिक अर्थ, संदर्भित अर्थ को अभिव्यक्त करने वाली व्यवस्था है। इसका मूलभूत कार्य संप्रेषण और विचार विनिमय से सम्बद्ध है। भाषा की मूलभूत इकाइयां संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि केवल व्याकरणिक नहीं होते। उनमें उस भाषाई समाज की संप्रेषणपरता भी निहित होती है। भाषा के सामाजिक संदर्भों ने भाषा क्या है? जैसे प्रश्नों की केंद्रीयता को बदलकर रख दिया है। आज हम इस बात पर चर्चा करते हैं की भाषा काम कैसे करती है?

अलग-अलग संदर्भ में कितने रूप धारण करती है और किस प्रकार से अपने अर्थो को संप्रेक्षित करती है। भाषा के सामाजिक संदर्भ एवं सामाजिक परिवेश के दबाव के कारण भाषण में परिवर्तन, संशोधन एवं नव निर्माण का कार्य होता रहता है।

संदर्भ

1. बिहार नवनीत: डॉ रवीन्द्र कुमार जैन, दोहा 32, पृष्ठ 53, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. भाषा विज्ञान डॉ भोलानाथ तिवारी पृष्ठ -2, किताब महल इलाहाबाद
3. महाभाष्य: पतंजलि 1/3/48
4. काव्यादर्श- दंडी, 1-4 पृष्ठ 9

आधुनिक समय में गंधर्ववेद की उपादेयता

डॉ. नबीता जम्वाल

भारतीय संस्कृति में वेदों का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। आलौकिक रहस्यों को जानने के लिए वेदों की परम आवश्यकता है। चारों वेदों में सामवेद का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत का प्रमुख स्त्रोत सामवेद ही है। सामवेद के दो प्रमुख भाग हैं - आर्चिक तथा गान। गंधर्ववेद सामवेद का उपवेद है। इसके अन्तर्गत भारतीय संगीत, शास्त्रीय संगीत, राग, सुर, गायन तथा वाद्य यंत्र आते हैं। गन्धर्ववेद में ध्वनि के मूल तत्व को प्रदर्षित किया गया है। प्राचीन शास्त्रों में वर्णित है कि सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति नाद अर्थात् ध्वनि से हुई हे। एक है आहत नाद और दूसरा है अनाहत नाद उसी ध्वनि या नाद को गन्धर्व कहा जाता है अर्थात् गन्धर्व से सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुई है।

गंवर्धन का अर्थ है एक परिपूर्ण संगीतकार जो अपने विषय का पूर्ण ज्ञान रखता है। ब्रह्माण्ड में उपस्थित सभी स्वर, राग, धुन, ताल या लय प्रकृति के ही व्यक्त स्पंदन और भाव हैं। ये सभी स्वर और ताल सभी प्राणियों के शरीर में भी उपस्थित हैं और ये प्रकृति में सभी तरह के असंतुलन को दूर करते हैं। गंधर्व वेद में संगीतविद्या, गायन विद्या और संगीत चिकित्सा का वर्णन मिलता है।

गंधर्ववेद के इस विशाल ज्ञान के एक पहलू पर और अधिक विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता है। विभिन्न प्रकार के जानवरों पर, हमारे पर्यावरण के साथ-साथ हमारे मन तथा शरीर पर भी संगीत तथा ध्वनि का प्रभाव पड़ता है तथा यह तन और मन पर संगीत और ध्वनि की शक्ति से सम्बन्धित विज्ञान है। गंधर्ववेद सामवेद का उपवेद है जो संगीत की लय, स्वर और मंत्रों के जाप के विभिन्न तरीकों से जुड़ा है। गंधर्ववेद के अध्ययन से जानकारी प्राप्त होती है। विभिन्न ध्वनियाँ और लय, जिन्हें राग कहते हैं, किस प्रकार से इस सृष्टि के पहलुओं से जुड़ी हुई है। संगीत के जो अलग-अलग राग होते हैं वे मानव मन की अलग-अलग भावनाओं और उन्हें प्रेरित भी करते हैं। दिन के विशेष समय के लिए, वर्ष के विभिन्न महीनों तथा मौसमों के लिए भी विशेष प्रकार के राग हैं। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि इन गहन बातों का ज्ञान हमें हज़ारों सालों पहले ही उपलब्ध करवा दिया गया था।

संगीत का हमारे जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत के बिना मानव जीवन की कल्पना भी कठिन है। संगीत का मानव जीवन में जितना प्रभाव वैदिक काल में था उतना ही आधुनिक काल में भी है। संगीत कला को समझने के लिए उसके पहलुओं पर प्रकाश डालना बहुत आवश्यक है।

संगीतविद्या

संगीत शब्द के अन्तर्गत गायन, वादन तथा नृत्य इन तीन कलाओं का समावेष होता है। व्यवहार में ये तीनों कलायें अपना अलग-अलग स्थान रखती हैं तथा कुछ अन्य देशों में इन्हें एक-दूसरे से स्वतन्त्र माना गया है। परन्तु भारतीय संगीत में इन तीनों कलाओं का प्रयोग होता है और इस प्रकार इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इनका आपस में इतना गहरा सम्बन्ध है कि यदि इन्हें एक-दूसरे से अलग कर दिया जाये तो इनका आकर्षण ही नष्ट हो जायेगा। उदाहरण के लिए यदि केवल नृत्य ही हो रहा हो तथा उनके साथ न तो वाद्य बज रहे हों और न ही गायन हो रहा हो तो बिल्कुल भी आनन्द नहीं आ सकता तथा यदि केवल गायन हो रहा हो और साथ में वाद्य न बज रहे हों तो भी आनंद की अनुभूति नहीं होगी। ये कलायें एक-दूसरे पर आश्रित हैं। गायन इन सब में श्रेष्ठ है, क्योंकि गायन के अधीन वादन है और वादन के अधीन नृत्य। इन तीन कलाओं के मेल को संगीत कहते हैं। इनमें नृत्य वादन के अधीन और वादन गायन के अधीन है। सारांष में कहा जा सकता है कि गाने, बजाने और नाचने को संगीत कहते हैं।

संगीत: गायन-वादन-नृत्य

संगीत एक उत्कृष्ट नृत्य कला है, जिस का मुख्य आधार नाद अथवा ध्वनि है, इस कारण इसको नाद ब्रह्म भी कहा गया है। इस कला को हम स्वरों का सम्मिश्रण भी कह सकते हैं जो कलाकार की हृदयगत भावनाओं को मधुर बनाकर दूसरों के सामने प्रकट करता है। इसलिए संगीत को हृदयगत भाषा तथा हृदयगत भावनाओं को प्रकट करने की भाषा भी माना जाता है। स्वर्गीय राष्ट्रकवि रविन्द्र नाथ ने भी इसे सौंदर्य का साकार एवं संजीव प्रदर्शन माना है। इस कला का प्राणिमात्र से घनिष्ठ संबंध है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि पशु-पक्षी भी इस पर अपने प्राण तक न्योछावर कर देते हैं। प्राणिमात्र के लिए यह अमृत रस है। आत्मा को परमात्मा तक पहुँचाने में यह कला बीच की सीढ़ी के रूप में कार्य करती थी।

भारत की दक्षिणी तथा उत्तरी संगीत पद्धति

सम्पूर्ण भारत में संगीत की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं जो इस प्रकार से हैं:-

दक्षिणी अथवा कर्नाटकी संगीत पद्धति

इसे कर्नाटक संगीत भी कहते हैं जो दक्षिणी भारत में प्रचलित हुआ। संगीत की यह पद्धति मैसूर, आन्ध्र प्रदेष, चेन्नई आदि प्रान्तों में प्रचलित हैं चूंकि यह प्रणाली कर्नाटक प्रदेष में प्रचलित है इसलिए इसे कर्नाटकी संगीत पद्धति कहते हैं। इसका दूसरा नाम दक्षिणी संगीत पद्धति है, दक्षिणी भारती संगीत में दस थाट हैं बिलावल, कल्याण, खमाज, भैरव, पूर्वी मालवा, काफी, असावरी, भैरवी और तोड़ी। कर्नाटक संगीत अधिकतर भक्ति संगीत के रूप में होता है और इसकी अधिकतर रचनाएँ संगीत के रूप में होता है और इसकी अधिकतर रचनाएँ हिन्दु देवी-देवताओं से सम्बन्धित होती हैं इसके अलावा कुछ हिस्सा प्रेम और अन्य सामाजिक मुद्दों को भी समर्पित होता है। कर्नाटक शास्त्रीय शैली में रागों का गायन अधिक तेज़ होता है। कर्नाटक संगीत में मृदंगम एक महत्वपूर्ण वाद्य यंत्र है। कर्नाटक गायन शैली के प्रमुख रूप हैं जावाली तथा तिल्लाना। जावाली प्रेम प्रधान गीतों की शैली है। भरतनाट्यम के साथ इसे विषेष रूप से गाया जाता है। इसकी गति काफी तेज होती है। तिल्लाना उत्तरी भारत में प्रचलित तराना के समान ही कर्नाटकी संगीत

में तिल्लना शैली होती है।

उत्तरी अथवा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति

उत्तरी अथवा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति मैसूर, आन्ध्रप्रदेष, तमिलनाडु आदि को छोड़कर सारे भारत में प्रचलित है। चूंकि यह प्रणाली उत्तरी भारत में अधिक प्रचलित है, इसलिए उत्तरी अथवा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भी कहते हैं। साधारणत: जो संगीत हम लोग अपने प्रदेष में सुनते अथवा गाते बजाते हैं, वह उत्तरी अथवा हिन्दुस्तानी संगीत कहलाता है। हिन्दुस्तानी संगीत का एक और पहलू भी है जिनमें सूफी ज़माने की धार्मिक अलहदगी थी जिस में उस्ताद कलाकार गीत की रचनाओं को ईष्वर को याद करने में किया करते थे। 12वीं सदी के दौर के अन्त में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत से ही दक्षिणी कर्नाटक संगीत विभाजित हुआ। आधुनिक युग में उत्तर भारतीय संगीत में वायलिन का प्रयोग संगति के साथ-साथ स्वतंत्र वादन के रूप में भी किया जा रहा है।[1]

भाव तथा शास्त्रीय संगीत

भारतीय संगीत को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं:-

1. भाव संगीत
2. शास्त्रीय संगीत

1. भाव संगीत— इस संगीत के अन्तर्गत ढोलक के गीत, आल्हा चक्की के गीत, अनेक प्रान्तों में विवाह, त्यौहारों आदि विषेष उत्सवों पर गाये जाने वाले गीत, सावन के झूले के गीत, फिल्मी गीत, रेडियो के गीत, भजन इत्यादि आते हैं। इस संगीत में जनसाधारण का काफी मनोरंजन होता है और इन गीतों को गाने अथवा समझने के लिए विशेष ज्ञान की आवष्यकता नहीं पड़ती। इन गीतों में लय, स्वर तथा काव्य का आनन्द प्राप्त होता है जैसे ढोलक के गीत, कीर्तन आदि। गायन के साथ जब वाद्य संगीत का संगम हो जाता है तब अभिव्यक्ति रस और सौंदर्य की त्रिवेणी बह उठती है।[2] कुछ गीतों में लय के साथ काव्य का भी महत्व है जैसे भजन, काव्य, गीत आदि तथा कुछ गीतों में स्वरों का अधिक महत्व है जैसे फिल्मी गीत व संगीत। भाव संगीत में रागों की शुद्धता पर कम ध्यान दिया जाता है, भाव संगीत में कोई नियमित शास्त्र नहीं होता, इसका उद्देश्य केवल गीत का कानों को अच्छा लगना, स्वर रचना या गीत गाने में किसी प्रकार के नियमों को सामने नहीं रखना पड़ता, अपितु कलाकार अपनी कला की कुषलता के माध्यम से कोई भी स्वर प्रयोग कर सकता है। भाव संगीत में सूरदास, सहजो बाई, तुलसीदास, श्री चरणदास आदि ने भी ईश्वर को साक्षी मानकर गीत गाये।

2. शास्त्रीय संगीत— शास्त्रीय संगीत ऐसा संगीत जिसका शास्त्र निश्चित है अर्थात् शास्त्र पर आधारित वह संगीत है जिसमें राग व लय-ताल शास्त्र के नियमों के आधार पर स्वर एवं लय का सुन्दर संयोजन कर राग को गाया जाता है अथवा वाद्यों पर प्रस्तुत किया जाता है, शास्त्रीय संगीत कहलाता है। 'लय' का साधारण अर्थ 'गति' होता है। लय अथवा ताल वाद्यों के अन्तर्गत वे वाद्य हैं, जिनका सम्बन्ध 'लय' या 'ताल' से होता है।[3] शास्त्रीय संगीत भारतीय संगीत का अभिन्न अंग हैं। शास्त्रीय संगीत को ही 'क्लासिकल म्यूजिक' भी कहते हैं। शास्त्रीय गायन सुर प्रधान होता है शब्द-प्रधान नहीं। इसमें महत्व सुर का होता है उसके उतार-चढ़ाव का, शब्द और अर्थ का नहीं। इसको जहाँ शास्त्रीय संगीत ध्वनि विषयक साधना के अभ्यस्त कान ही समझ सकते हैं। साधारण जन के लिए इसको समझना बहुत कठिन है। साधारण जनों के कान

भी शब्दों का अर्थ जानने मात्र से देषी गानों या लोक गीत का सुख ले सकते हैं। शास्त्रीय संगीत से अनेक लोग स्वभाविक ही ऊब भी जाते हैं पर उसके ऊबने का कारण उस संगीतज्ञ की कमज़ोरी नहीं, लोगों में जानकारी की कमी है। शास्त्रीय संगीत के प्रमुख गायकों में तानसेन, बैजू बावरा, फैयाज खां आदि प्रमुख हैं। तानसेन ने मल्हार राग गाकर सावन को आने पर मजबूर कर दिया तथा दीपक राग गाकर पानी में आग लगा दी थी यही शास्त्रीय संगीत का जादू है जो साधारण जन की समझ से परे है। शास्त्रीय संगीत और उप-षास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त लोकसंगीत, सुगम संगीत, चित्रपट संगीत आदि सभी विधाओं में भी संगीत का बहुत महत्व है।[4]

साधारण जन को संगीत से लाभ

संगीत हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में मदद करता है, ये कई समस्याओं से छुटकारा दिलाता है और सेहत को कई फायदे पहुँचाता है। उत्साहवर्धक संगीत या गाने सुनने से मस्तिष्क में सेरोटोनिज नामकर हार्मोन का स्तर बढ़ जाता है जिससे हमारा मन अच्छा हो जाता है। दिल और दिमाग के लिए संगीत को लाभकारी माना जाता है। संगीत तनाव और चिंता को दूर करता है, शारीरिक व मानसिक पीड़ा के कम करता है। पीठ का दर्द कम करता है। याददाश्त को बढ़ाने में सहायता करता है। संगीत सुनने से नींद अच्छी तरह से आती रहे। संगीत सुनने को अध्यात्म तथा मोक्ष की प्राप्ति के साथ भारतीय संगीत के प्राणभूत तत्व रागों के द्वारा मनः शांति, योग, ध्यान, मानसिक रोगों की चिकित्सा आदि विशेष लाभ प्राप्त होते हैं। प्राचीन समय में मानव संगीत की आध्यात्मिक एवं मोहक शक्ति से प्रभावित होता आया है। प्राचीन मनीषियों ने सृष्टि की उत्पत्ति नाद से मानी है । उत्सहित संगीत आपको जीवन के बारे में अधिक आषावादी और सकारात्मक महसूस करा सकता है। धीमी गति आपके दिमाग को शांत कर सकती है और आपकी मासपेषियों को आराम दे सकती है जिससे आप दिन का तनाव दूर करते हुए आराम महसूस कर सकते हैं। संगीत विश्राम और तनाव प्रबंधन के लिए प्रभावी है, गर्भवती स्त्रियों को भी संगीत सुनने का सुझाव दिया जाता है। ऐसा माना जाता है कि वह संगीत गर्भ में पल रहे शिशु को सुनाई ही नहीं देता बल्कि उसको आनन्द प्रधान करते हुए उसके मस्तिष्क का विकास भी करता है।

अनिद्रा की समस्या को दूर करने में भी संगीत से लाभ मिलता है। जिस व्यक्ति की नींद बिगड़ गई हो वह व्यक्ति रात को सोते समय यदि हल्का संगीत सुन ले तो उसको इससे बेहतर नींद आएगी।

आज के समय में जब भाग दौड़ का जीवन है। किसी के पास किसी के लिए भी समय ही नहीं है। ऐसे समय में संगीत लोगों को बहुत आराम पहुँचा रहा है। लोग बहुत अधिक व्यस्त हैं। मनोरंजन के लिए उनके पास बिल्कुल भी समय नहीं है ऐसे में संगीत ही उनके लिए मनोरंजन का एकमात्र साधन है। आज युवाओं को देखा जा रहा है कि वह सफर के समय में मोबाइल में संगीत का आनन्द ले रहे हैं। लिखने का कार्य करते हुए भी लोग साथ-साथ संगीत का आनन्द ले रहे हैं। संगीत किसी न किसी रूप में या यूं कहें कि हर रूप में लोगो को लाभ पहुँचा रहा है।

ध्वनियों का विकास

ध्वनियों के विकास पर चर्चा करें तो गंधर्ववेद में अलग-अलग जानवरों से जुड़ी हुई अलग-अलग ध्वनियों के बारे में बताया गया है जो अभी भी कुछ स्थानों पर पाई जाती हैं, जैसे सपेरे, जो

एक प्रकार की बांसुरी पर बजाये जाने वाले कुछ संगीत की धुनों या लय के माध्यम से सांपों को वष में करने और नियंत्रित करने का दावा करते हैं। आजकल सांपों को अक्सर अन्य तकनीकों का उपयोग करके नचाया जाता है जबकि सपेरे दिखावा करते रहे हैं कि ये संगीत के कारण हैं। शायद इसीलिए क्योंकि यह ज्ञान भी आमतौर पर गुप्त रखा जाता था और केवल कुछ योग्य लोगों को ही दिया जाता था लेकिन यह हमें उस अतीत की याद दिलाता था जब ये चीज़ें वास्तव में थीं।

विभिन्न प्रकार के अध्ययनों से पता चलता है कि संगीत मानव शरीर व मनोविज्ञान को कितना प्रभावित करता है अध्ययनों से पता चला है कि केवल पौधे कुछ खास तरह के संगीत के सम्पर्क में आने पर बेहतर तरीके से बढ़ते हैं और लम्बे समय तक जीवित रहते हैं बल्कि जानवर भी संगीत से प्रभावित होते हैं। कई अस्पतालों में दर्द को कम करने की दवा के लिए गंधर्ववेद को उपचार के रूप में उपयोग किया जाता है। संगीत शरीर के विश्राम से बहुत आगे जाता है - यह व्यक्ति के मन तथा शरीर का प्रकृति के साथ संतुलन बनाये रखता है। शास्त्रीय गन्धर्ववेद के ग्रन्थ दिन के प्रत्येक प्रहर के लिए अलग-अलग रागों या धुनों को वर्णित करते हैं। आधुनिक युग में भी इसके अध्ययन से बहुत अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ

1. मिश्र विजय शंकर, भारतीय संगीत के नये आयाम, पृ. 78
2. मिश्र अरुण, भारतीय कंठ संगीत एवं वाद्य संगीत, पृ. 52
3. संगीत, अप्रैल, 2006, पृ. 41
4. मिश्र अरुण, भारतीय कंठ संगीत एवं वाद्य संगीत, पृ. 73

सुधांशु शेखर चौधरी और उनकी बहुचर्चित पुस्तक 'सन्दर्भ'

नारायण झा

जब जीवन के बहुआयामी परिदृश्य, समाज-साहित्य की कड़वाहट-मिठास, रंगमंच की असली सहरजमीन, साज-सज्जा, नाटकीय परिदृश्य-परिवेश, पर्दे, ध्वनि-रोशनी, पर्यावरण, कलाकार, कला के भाव, कला-भंगिमा, दर्शकों की रुचि-अभिरुचि आदि को अच्छी तरह से परिचित होकर, उस रंग में स्वयं रंग जाते हैं। ऐसे सफल नाटककार, प्रयोगधर्मी उपन्यासकार, निविष्ट निबंधकार, कहानीकार, कुशल संपादक, आलोचक और कवि हैं– सुधांशु शेखर चौधरी। इनके नाटककार-एकांकीकार रंगमंच के सभी कौशलों से संपन्न थे, इसलिए उनके नाटकों को समाज में अच्छा स्थान प्राप्त हुआ। उनके नाटकों और एकांकी में पारिवारिक और सामाजिक दृश्य, राजनीतिक षडयंत्र, आर्थिक असमानता की बिखरी तस्वीरें, संघर्षों की चीखें आदि चित्रित हैं, उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है– 'भफाइत चाहक जिनगी' और 'हथटुट्टा कुर्सी' में। सुधांशु शेखर चौधरी ने नाटक को नया मोड़ देकर मैथिली नाटक को समृद्ध किया।

अन्य उपन्यासों के तरह मुझे उनका 'ई बतहा संसार' अधिक सफल लगता है, जो मनोविज्ञानिकता के आधार पर प्रेम और वासना के मूल्य को रेखांकित करते हुए पात्रों की मानसिकता को सूक्ष्म तरीके से खूबसूरती से समझाता है। यह उपन्यास नवीन दृष्टि की है जो नवीनता के साथ पाठक के मन पर भी गहरा प्रभाव डालता है। वह न केवल एक कुशल संपादक थे जिसके लिए उन्हें साहित्य जगत में एक संपादक के रूप में भी जाना जाता था। उन्होंने 'मिथिला मिहिर' और 'वैदेही' के मानक को कायम रखते हुए 'इजोत' पत्रिका का संपादन कर अपनी संपादकीय प्रतिभा की परिपक्वता सिद्ध की है। उस समय 'मिथिला मिहिर' का संपादन कार्य उतना सुलभ नहीं था जितना आज के दौर में पत्रिकाओं का है, हर चीज़ को उसके अनुरूप ढालकर सभी बातों को ध्यान में रखकर एक चुनौती थी, जिसे बखूबी निभाया है। शेखरजी ने कहानियाँ भी लिखीं थी जो अक्सर संग्रहों, पत्र-पत्रिकाओं में देखी जा सकती हैं। उनकी कहानियों में विभिन्न प्रसंगों के अंतर्गत सहज मानवता, संवेदनशीलता, यथार्थ की अनुभूति और ज़मीन पर अनुभव की जाने वाली अनुभूतियाँ झलकती हैं। शेखरजी ने स्वयं भी स्वीकार किया है कि वे एक आलोचक नहीं हैं, लेकिन विभिन्न विषयों पर उनके द्वारा आलोचनात्मक निबंध समीक्षा कैसे नहीं लिखी जा सकती? स्वाभाविक है कि जब साहित्य रचा जाएगा तो साहित्य में अपने आप परिवर्तन आना

यूजीसी नेट (मैथिली), पता : ग्राम-पोस्ट– रहुआ-संग्राम, प्रखंड– मधेपुर, जिला– मधुबनी, पिन कोड : 847408 (बिहार), ईमेल : narayanjha1980@gmail.com, मो : 8051417051

संभव है, नई-नई बातें लिखी जाएंगी, साहित्य विचारधारा से भी खिलवाड़ करता हुआ मिल हीं जाएगी। समीक्षा निबंध लिखने में उनका मुख्य उद्देश्य यह था कि जब भी उन्हें कोई विषय ठीक नहीं लगता, अतिशयोक्ति से भरा मिलता, तो वे उस विषय को मुख्य विषय बनाकर समीक्षा निबंध लिखते थे। वे हमेशा गलत दिशा में जा रहे साहित्य के प्रतिकार-परिमार्जन में लगे रहे। इनका लगभग सभी समीक्षात्मक निबंध संकलित हैं, जिन्हें मैथिली अकादमी ने 'संदर्भ' शीर्षक से प्रकाशित किया है। उन्होंने कुछ पत्रिकाओं में 'पराशर' उपनाम से गद्य और 'कामरूप' नाम से कविताएँ भी लिखी हैं। उनके संबंध में डॉ. भीमनाथ झा अपने 'परिचायिका' पुस्तक में लिखते हैं–" जे वस्तु ई लिखने छथि, से अधिकारपूर्वक, माजल, हाथेँ, नवीन दृष्टिक परिचय दैत, तेँ हिनक जे वस्तु अछि से अछि मौलिक, सुपाठ्य, विवेचनीय आ तेँ चर्चित।"[1]

शेखर जी ने जो कविताएँ लिखीं, उन्होंने कोरी कल्पना का महल मात्र नहीं खड़ा किया, उन्होंने यथार्थ की भावनात्मक ज़मीन बसाई। पंक्ति देखें–

"सोझ बाट जे धरय,
कहै तकरा सभ अछि ढहलेल।
सोझ बात जे बाजए,
बूझल जाए शुद्ध बकलेल।

'संदर्भ' समीक्षा निबंधों का एक संग्रह है, जिसमें कुल तीस समीक्षा निबंध शामिल हैं। इस पुस्तक में अलग-अलग निबंधों के सात खंड हैं, जिनमें–नाट्य-संदर्भ, कथा-संदर्भ, उपन्यास-संदर्भ, नवाचार-संदर्भ, आलोचना-संदर्भ, भाषा साहित्य-संदर्भ और विविध-संदर्भ जैसे खंड हैं। इस पुस्तक की आत्मकथा में शेखर जी स्वयं लिखते हैं–" पोथीक नामे ई सूचित कए दैत अछि जे सन्दर्भसँ कटल विषय-वस्तुक एहिमे चर्च नहि होयत। अर्थात नाटक, कथा, उपन्यास, नव कविता आदि विविध विधाक साहित्यक प्रसंग जे समय-समय पर गोष्ठीक माध्यमे वा आनो अवसरि पर चर्च-वर्च होइत रहल अछि आ ताहिमे जे अनटोटल आ बँहबाड़ि विचार रखबाक प्रयास होइत रहल अछि तकरे आधार बना कए सभ विधा पर विचार कएल गेल अछि।"[2]

समीक्षा-निबंध 'संदर्भ' के पहले खंड में नाट्य संदर्भ है, जिसमें उन्होंने भारतीय रंगमंच और उनकी अपनी भाषा के रंगमंच के बीच समानताएं और अंतर दिखाने की कोशिश की है, कि भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुरूप, शास्त्रीय विधान के परिधि में हमलोगों का नाटक-एकांकी, हमलोगों के हीं प्राचीन नाटकसे भिन्न है जिसे नाटक के बजाय एक रूपक के रूप में माना जाना चाहिए। शेखर जी के अनुसार नाटक की आत्मा अभिनय है अर्थात अभिनय हीं नाटक में पूर्णता की ओर बढ़ा है। हालाँकि, अभिनय नृत्य से उदित हुआ है, जिसका विकास नाटक में आकर और विकसित हुआ है। यह खंड नाटक और एकांकी के बीच बुनियादी अंतरों पर भी प्रकाश डालता है, साथ ही निर्देशन, चरित्र दृष्टिकोण, मंच की प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि, रूप-सज्जा, सजावट आदि का भी विश्लेषण करता है। लेख में नाटककार के उत्तरदायित्व की चर्चा करते हुए वे कहना चाहते हैं कि नाटककार को अपना नाटक लिखते समय मंच का ध्यान रखना चाहिए, नाटक का मानसिक होमवर्क करना चाहिए और नाटक के निर्माण की ओर अग्रसर होना चाहिए। इससे यह भी पता चलता है कि यदि कोई नाटक लिखी जाती है तो उसका एकमात्र उद्देश्य सफलतापूर्वक मंचन करना होता है। आधुनिक नाटक के बारे में शेखर जी 'संदर्भ' पुस्तक में लिखते हैं–"आधुनिक नाटकक मूल

वृत्ति अछि प्रवाह। आधुनिक नाटकमे कथावस्तु रुकि-रुकिकए नहि चलैत अछि आ ने पात्रे कतहुँ ठाढ़ भए कए सूतल रहैत अछि।"[3]

संग्रह के दूसरे खंड में "कथा-संदर्भ" है जिसके अंतर्गत उन्होंने कहानी के दायरे में आने वाले कई तथ्यों को सामने लाया है। इस खंड में कहानी के संबंध को उनके स्पष्ट दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए कि कहानी के तत्व और कहानी की प्रवृत्ति दोनों अलग-अलग चीजें हैं। उन्हें इस बात का पूरा संदेह लग रहा था कि जिस तरह कहानीकार कहानी की प्रवृत्ति को मुख्य पक्ष मानकर कहानियाँ लिख रहे हैं, उसमें कहानी के तत्व गौण होते जा रहे हैं। उनका यह भी मानना है कि कहानी की संपूर्णता और संतुलन के लिए कहानी के तत्वों की श्रेष्ठता आवश्यक है। हालाँकि, मेरी राय में, कहानी को सफल होने के लिए कथा-तत्व और कथा-प्रवृत्ति दोनों तत्व आवश्यक हैं। जैसे-जैसे समय बदल रहा है, वैसे-वैसे कथानक भी बदल रहा है, इसलिए तो यह स्वाभाविक है कि कहानी की प्रवृत्ति भी बदल जाएगी। कहानी की कथानक, कथा-प्रवृत्ति बदलते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि परिवर्तन ऐसा न हो कि कहानी इस मिट्टी-पानी की न रह जाए, दूसरे ग्रह के प्राणी की तरह अपरिचित लगने लगे। साहित्य लिखते समय यह स्वाभाविक है कि लेखक को हर कदम पर साकांक्ष रहना पड़ता है। उनके समीक्षा निबंधों से यह भी पता चलता है कि प्राचीन साहित्य और प्राचीन लेखकों से परहेज नहीं करना चाहिए, उनका बहुत महत्व होता है। वह यह भी चाहते हैं कि साहित्य की जड़ों में अपनी ज़मीन हो, जो बिल्कुल सटीक होता है। कहानी के बारे में शेखरजी का स्पष्ट दृष्टिकोण है कि कहानी के साथ न्याय करना है, अर्थात किसी तथ्य को अप्राकृतिक तरीके से शामिल करके केवल कहानी की रुचि पर ध्यान केंद्रित करना, जो उनके लिए असुविधाजनक और असहज है।

इस संग्रह के तीसरे खंड में उन्होंने 'स्वतंत्रतोत्तर उपन्यासक पृष्ठभूमि' शीर्षक से एक समीक्षा निबंध लिखा है, जिसमें उन्होंने उपन्यास के कई तथ्यों को शामिल किया है। इनके कहने का ध्येय यह है कि आज़ादी के बाद लिखे गए उपन्यासों का भी बीजारोपण पहले हीं हो चुका था। उपन्यास सृजन के सम्बन्ध इसे एक नए मोड़ के रूप में परिभाषित किया जा रहा है, इस दृष्टि से यह कितना प्रासंगिक है? इसमें परिवर्तन का स्वर कितना मजबूत है, क्या इससे वाकई परिवर्तन आया? वे हमें उन सभी बिंदुओं पर आत्ममंथन करने के लिए बाध्य करते हैं।

'सन्दर्भ' के नवता-संदर्भ के समीक्षा निबंध से यह स्पष्ट है कि सुधांशु शेखर चौधरी ने न तो परंपरा को पूरी तरह से तोड़ने की कोशिश की और न हीं वे नवप्रवर्तन के कट्टर समर्थक थे। वे नवप्रवर्तन के पक्षधर हैं परंतु उस नवप्रवर्तन और प्रगतिशीलता की छाया में आने वाले आयातित विदेशी नवप्रवर्तन को स्वीकार नहीं करते। मैंने उनका आशय यह समझने की कोशिश की कि नवप्रवर्तन के लिए पुरातनता की जड़ों की आवश्यकता होती है। जीवन मूल्यों की स्थापना और जीवन के प्रति संवेदनशीलता को सुरक्षित रखने वाले स्वच्छ साहित्य के सृजन के बारे में भी उनके विचार प्रतीत होते हैं। उनके भीतर यह तथ्य समाहित है कि मैथिली नव-लेखन उनकी अपनी भूमि की उपज नहीं है, यह किसी अन्य स्थान (देश) से अर्थात अन्य भाषा-साहित्य से आयातित है। मेरी राय में यह भी देखने लायक है कि हमारी भाषा में अन्य उपकरणों और तकनीकों का प्रयोग कितना सुपाच्य हो सकता है। विकासात्मक एप्रोच आवश्यक है लेकिन वह ऐसी नहीं होनी चाहिए कि वह अपनी भाषा की

कोई पहचान न बचा सके। फिर कैसी नवीनता, नई कविता और प्रगतिशीलता, जिसकी जड़ें पिघल जाएं! हां, इस खंड के अधिकांश निबंधों में शेखर जी नई कविता पर जोरदार प्रहार करने से नहीं चूके हैं, जिसे देखकर मुझे कभी-कभी ऐसा महसूस होता है कि जैसे वे हमेशा एक छात्र को अनुशासित करने के लिए उसे 'टारगेट' करते हैं। उस डाँट-फटकार से असर, बेअसर सा दिखने लगा। लेकिन शेखर जी ने यह भी माना है कि ये गलती दोनों तरफ से हुई है। एक तरफ नई कविता को नजरअंदाज करने की मंशा है तो दूसरी तरफ पारंपरिक और प्राचीन कविता को खारिज करने की साजिश है। जैसा कि शेखरजी ने अपने लेख में बात स्वीकार की है, वे व्यक्तिगत रूप से नए लेखन में विश्वास रखते थे। नए लेखन के भविष्य के बारे में उन्हें कोई संदेह नहीं था, लेकिन वे नए लेखन की दिशा और दृष्टि की कमी को लेकर आशंकित थे। शेखरजी स्वयं लिखते हैं–" अस्वीकृतिक ई आग्रह एक दिशाहुए नहि अछि।"[4]

संदर्भ के 'आलोचना-संदर्भ' में एक आलेख है 'गंभीर पाठकक अकाल: आलोचनाक दुर्भिक्ष'। उस आलेख में उन्होंने मैथिली पाठकों की चिंताओं को व्यक्त किया है और आलोचना पर प्रकाश डाला है। मैथिली में पाठकों की कमी हमेशा से रही है और आज भी है। जब मौलिक साहित्य के पाठक नगण्य होंगे तो आलोचना कौन पढ़ेगा? इस लेख में, उन्होंने प्रोफेसरों के वर्ग को शामिल किया है और बताया है कि पूर्व के समय के प्रोफेसरों ने साहित्य को पढ़ा और इसके विषय में समालोचना भी लिखा है। लेकिन समय बीतता गया तो ये प्रोफेसर वर्ग भी इस पर ध्यान नहीं दे रहे हैं जो पूर्व के समय के तुलना में काफी असंतोषजनक है। प्रारम्भ के समय के प्रोफेसर वर्ग के अध्ययन और मनन से जड़ का कार्य हुआ था। लेकिन मौजूदा हालात इतने समृद्ध नजर नहीं आ रहे हैं।

'भाषा साहित्य-संदर्भ' के अंतर्गत चार निबंध हैं जो भाषा और साहित्य की प्रकृति, भाषा की शुद्धता, लेखकों की प्रतिभा, लेखकों का परिश्रम आदि का विश्लेषण करते हैं। इस निबंध के अंतर्गत कई बातें कहने से उनका तात्पर्य यह है कि भाषा कोई भी हो, बोलने और लिखने की भाषा अलग-अलग होती है। स्वाभाविक रूप से, हम जो भाषा बोलते हैं वह समाजों के बीच संचार की भाषा है, लेकिन जब हम साहित्य के लिए लिखते हैं, तो वह अपने स्वयं के मानक पर जाती है। उनकी भी वही बात है और मेरी भी बात वही है जो आजकल अक्सर कही जाती है- मैथिली का स्तर क्या होगा? आप जो कह दिये वही साहित्य है? मानकीकरण को न मानने वालों की यह मानना जो किसी भी साहित्य के लिए शुभ नहीं है, एकदम हीन विचार है। हाँ, नाटक में पात्रों की भाषा, कथा की भाषा आदि वही होगी जो समाज में चल रहा है, जो बोला जा रहा है, तो उस समाज के लिए सामाजिक भाषा कहा जाएगा। उनका मानना है कि दो ये चीजें हैं- भाषा का स्वरूप और भाषा की अशुद्धता। मैं यह भी देख रहा हूं कि भाषा का स्वरूप अभी भी बाढ़ग्रस्त है, जो चाहे जैसा लिखे, लेकिन भाषाई अशुद्धि तो पराकाष्ठा अन्याय के समान है। भाषा और अध्यवसाय के संबंध में, शेखरजी लिखते हैं–" समाजमे जतेक उहिगर, आँखिगर, सचढ़ व्यक्ति पाओल जाइत अछि, कोनो अध्यवसाय कारखानामे ढारल नहि रहैत अछि । माता-पिता समान रूपसँ सभ सन्तान पर ध्यान दैत छथि, मुदा ओहिमे गोटेक उहिगर वा आँखिगर बहराइत अछि, शेष सामान्य रहैत अछि अथवा ढहलेल भए जाइत अछि । तैँ हम कहैत छी जे प्रतिभा मनुक्खक सहजात वस्तु थिक । जकरामे ओ

जाहि अनुपातमे रहतैक, से ताही अनुपातमे अपन कमाल देखा सकत ।"[5]

'संदर्भ' का सातवां और अंतिम खंड 'विविध-संदर्भ' है जिससे यह स्पष्ट होता है कि सुधांशु शेखर चौधरी किसी भी विचारधारा से पीड़ित नहीं थे। उन्होंने कहा है कि लेखकों के लिए विचारधारा से बंधकर उस प्रतिबद्धता के साथ साहित्य लिखना उचित नहीं है। विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता के साथ लेखन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता इस बात का संकेत है कि एक लेखक किस प्रकार अपनी संवेदनाओं को एक सीमा में कुंठित रख सकता है, इशारा वहां है। उनका तात्पर्य यह है कि साहित्य में लेखकों की प्रतिबद्धता आयातित है, जो मैथिली में प्रवेश कर अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं। मुखर होकर उनका कहना है कि लेखकों को अपने लेखन के प्रति और अपने साहित्य के प्रति प्रतिबद्ध रहना चाहिए। किसी राजनीतिक आदर्श के प्रति, किसी षडयंत्र के प्रति, किसी योजनाबद्ध दृष्टिकोण के प्रति प्रतिबद्ध होना कहीं भी उचित नहीं है। दरअसल, साहित्य का काम देश और समाज को उसकी क्षमताओं से जोड़ना, कल्याण में योगदान देना रहा है। वे स्वयं 'साहित्य में प्रतिबद्धता का औचित्य' शीर्षक में नवीनता और प्रतिबद्धता की व्याख्या करते हैं–" एहिठाम ई स्पष्ट कए देब आवश्यक जे साहित्यमे नवता ओ प्रतिबद्धता सर्वथा पृथक दू वस्तु थिक। नवता यदि सौन्दर्य दृष्टि, अभिव्यक्ति, कथ्य, बिम्बयोजना आदिक स्थापना-निरूपणमे नव-नवीन परिवेशक आग्रही अछि तँ प्रतिबद्धता ने केवल राजनीतिक कुटिलता ओ विचारगत विध्वंसक आग्रही थिक।"[6] इस खंड में वह इतिहासकार के कार्य पर भी सवाल करते हैं कि इतिहासकार को अपने स्पष्ट दृष्टिकोण से सम्यक और तथ्यात्मक कार्य करना कर्तव्य समझना चाहिए। उन्होंने महसूस किया है कि जिन साहित्यकार को लाइम-लाइट में लाना था, उन पर बहुत अधिक रोशनी दी गई है और बहुतों को आवश्यकता से भी बहुत कम। इस 'संदर्भ' पुस्तक में कई साहित्यिक उदाहरण, साहित्यिक विमर्श पढ़ने और विचार करने योग्य हैं। इस पोथी के अध्ययन-मनन के पश्चात कहा जा सकता है शेखर जी कई बार जरूरत से ज्यादा आक्रामक अंदाज में भी कई बातें कह गए हैं, जहां उन्हें संयमित और संतुलित होना भी मांग करता है। स्पष्टवादी होना चाहिए था, लेकिन कहीं-कहीं अति का भाव दिखा गये। हालांकि यह खूबी भी उन्हें एक अलग श्रेणी में खड़ा रखती है। यह किताब विशेष प्रकार का है जहां समझने-जानने लायक बहुत सी बातें हैं, इसलिए इसे एक बार जरूर पढ़ना चाहिए, जिसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

सन्दर्भ पुस्तक की सूची–

1. झा, डा. भीमनाथ. द्वि.सं.1985. परिचायिका : प्रकाशन – भवानी प्रकाशन, पटना, पृ.138
2. चौधरी, सुधांशु शेखर. 1981. सन्दर्भ : प्रकाशन – मैथिली अकादमी, पटना, पृ. ख
3. चौधरी, सुधांशु शेखर. 1981. सन्दर्भ : प्रकाशन – मैथिली अकादमी, पटना, पृ. 33
4. चौधरी, सुधांशु शेखर. 1981. सन्दर्भ : प्रकाशन – मैथिली अकादमी, पटना, पृ. 108
5. चौधरी, सुधांशु शेखर. 1981. सन्दर्भ : प्रकाशन – मैथिली अकादमी, पटना, पृ. 147
6. चौधरी, सुधांशु शेखर. 1981. सन्दर्भ : प्रकाशन – मैथिली अकादमी, पटना, पृ. 173

मौसमी लय: संगीत शैलियों के गीतों में ऋतुओं का प्रतिनिधित्व

ललन कुमार*, पूनम कुमारी अग्रवाल**

सार

यह शोध पत्र विभिन्न संगीत शैलियों में चार ऋतुओं - वसंत, ग्रीष्म, शरद ऋतु और सर्दी - के संगीतमय चित्रण पर प्रकाश डालता है। इंडी, फोक, रेगे, सर्फ रॉक, शास्त्रीय लालित्य, जैज़, क्लासिकल और एम्बिएंट जैसी विविध शैलियों के चयनित गीतों के विस्तृत विश्लेषण के माध्यम से, अध्ययन यह जांच करता है कि कलाकार और बैंड विशिष्ट गुणों को प्रतिबिंबित करने के लिए संगीत तत्वों और गीतात्मक सामग्री को कैसे शामिल करते हैं और प्रत्येक मौसम का माहौल। पेपर इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे ये मौसमी विषय प्रेरणा के एक सार्वभौमिक स्रोत के रूप में काम करते हैं, फिर भी विभिन्न संगीत संदर्भों में विशिष्ट रूप से प्रकट होते हैं, प्रकृति, संस्कृति और श्रवण अभिव्यक्ति के अंतर्संबंध में गहरी अंतर्दृष्टि प्रकट करते हैं। संगीत में ऋतुओं के भावनात्मक और विषयगत प्रतिनिधित्व पर ध्यान केंद्रित करके, यह अध्ययन संगीतशास्त्र और सांस्कृतिक अध्ययन के क्षेत्र में योगदान देता है, जो संगीत और प्राकृतिक पर्यावरण के चक्रीय क्रम के बीच सहजीवी संबंध पर नए दृष्टिकोण पेश करता है।

मुख्य शब्द: *मौसमी लय, संगीत, शैली, गीत, ऋतु इत्यादि।*

परिचय

संगीत, सांस्कृतिक और भाषाई सीमाओं से परे एक अभिव्यंजक माध्यम है, जो अक्सर बदलते मौसम के लयबद्ध परिवर्तनों और भावनात्मक बारीकियों को समाहित करते हुए, प्राकृतिक वातावरण को प्रतिबिंबित करता है। संगीत और प्रकृति के बीच इस सहज संबंध ने विभिन्न शैलियों के अनगिनत कलाकारों को ध्वनि और गीतकारिता के माध्यम से मौसमी चक्रों का पता लगाने और व्याख्या करने के लिए प्रेरित किया है। विवाल्डी के "फोर सीज़न्स" से लेकर आधुनिक परिवेशीय रचनाओं तक, संगीतकारों ने वसंत, ग्रीष्म, शरद ऋतु और सर्दियों के विशिष्ट रंगों को चित्रित करने के लिए संगीत की विचारोत्तेजक शक्ति का लगातार लाभ उठाया है। इस अध्ययन का महत्व संगीत की गहरी समझ में इसके योगदान में निहित है। एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में जो न केवल प्रतिबिंबित करती है बल्कि प्राकृतिक दुनिया की मानवीय धारणा को आकार भी देती है। यह अन्वेषण संगीत की विविधता और जटिलता की हमारी सराहना को समृद्ध करता है, जो सार्वभौमिक लेकिन विशिष्ट तरीकों को उजागर करता है जिसमें संगीत संचार करता है और मौसमी

चक्रों का जश्न मनाता है। इस जांच के माध्यम से, अनुसंधान का उद्देश्य संगीतशास्त्र और सांस्कृतिक अध्ययन में अकादमिक प्रवचन को जोड़ना है, जो संगीत और पर्यावरण के बीच सहजीवी संबंध में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

वसंत और नवीकरण:

वसंत पुनर्जन्म और नवीकरण का मौसम है, ऐसे विषय जिन्हें कलाकारों ने गीतात्मक और संगीतमय रूप से अपनाया है, विशेष रूप से इंडी और लोक शैलियों के भीतर। संगीत की ये शैलियाँ, जो अपनी आत्मनिरीक्षणात्मक और अक्सर ध्वनिक प्रकृति के लिए जानी जाती हैं, वसंत के सूक्ष्म लेकिन गहन परिवर्तन के लिए उपयुक्त हैं। फ्लीट फॉक्स, सुफजान स्टीवंस और आयरन एंड वाइन जैसे कलाकारों ने हल्की धुनों और विषयों का उपयोग करके अपने संगीत में वसंत के सार को बुनने की कला में महारत हासिल की है जो मौसम की सौम्य लेकिन परिवर्तनकारी प्रकृति को दर्शाते हैं।

उदाहरण के लिए, फ्लीट फ़ॉक्स, अपने गीत "रैग्ड वुड" में, उत्साहित लय और सामंजस्यपूर्ण स्वरों के संयोजन के माध्यम से वसंत की जीवंतता को दर्शाते हैं जो जागृत जंगलों के माध्यम से भटकने की भावना पैदा करते हैं। गीत, "पहाड़ से नीचे आओ, तुम बहुत दूर चले गए हो," श्रोताओं को वापसी और नवीनीकरण की कथा में आमंत्रित करते हैं, ठीक उसी तरह जैसे वसंत दुनिया को उसकी शीतकालीन नींद से जागने के लिए आमंत्रित करता है। राग की हल्कापन, समृद्ध ध्वनिकी के साथ, वसंत ऋतु में जंगल के जीवंत लेकिन शांत वातावरण को प्रतिबिंबित करती है।

सुफ़जान स्टीवंस का वसंत को समाहित करने का दृष्टिकोण उनके एल्बम "कैरी एंड लोवेल" में विशेष रूप से स्पष्ट है, विशेष रूप से ट्रैक "शुड हैव नोज़ बेटर" में। यह गीत नरम, न्यूनतम वाद्ययंत्र व्यवस्था के साथ शुरू होता है जो धीरे-धीरे अधिक जटिल और स्तरित रचना में बदल जाता है। यह संगीतमय प्रगति वसंत की धीमी शुरुआत को दर्शाती है, जो सर्दियों की आखिरी ठंड से शुरू होती है और गर्मी और प्रचुरता की ओर बढ़ती है। गीत चिंतनशील से आशावादी में परिवर्तित होते हैं, व्यक्तिगत नवीनीकरण और मौसम की उपचारात्मक प्रकृति को दर्शाते हैं।

ग्रीष्मकालीन : गर्मी और आराम की लय

ग्रीष्म ऋतु, अपनी अंतर्निहित गर्मी और आरामदायक माहौल के साथ, अक्सर रेगे और सर्फ रॉक के संगीतमय परिदृश्य में प्रतिबिंबित होती है। ये शैलियाँ, जो धूप वाले दिनों और आराम की गतिविधियों का पर्याय हैं, अपनी लयबद्ध गर्मी और विश्राम और आनंद के विषयों के साथ गर्मियों के लिए एकदम सही ध्वनिट्रैक प्रदान करती हैं। यह अन्वेषण इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे रेगे और सर्फ रॉक गर्मियों के सार को समाहित करते हैं, श्रवण अनुभव बनाते हैं जो मौसम की भावना के साथ प्रतिध्वनित होते हैं।

रेगे, जमैका की धूप और उष्णकटिबंधीय जलवायु में गहराई से निहित एक शैली है, जो स्वाभाविक रूप से अपनी स्थिर, आरामदायक लय और अच्छे गीतों के माध्यम से गर्मियों की गर्मी को उजागर करती है। बॉब मार्ले, रेगे में सबसे प्रतिष्ठित शख्सियतों में से एक, के पास कई ट्रैक हैं जो गर्मियों के माहौल का जश्न मनाते हैं। "थ्री लिटिल बड्स" जैसे गीत, जिनके आरामदायक बोल हैं, "किसी चीज़ के बारे में चिंता मत करो, 'क्योंकि हर छोटी चीज़ ठीक हो जाएगी," धीमी, स्थिर धड़कन और लयबद्ध

गिटार वादन की पृष्ठभूमि के खिलाफ सेट, लापरवाह प्रकृति का प्रतीक है ग्रीष्म का। रेगे की विशिष्ट, ऑफबीट लय का उपयोग, इस शांत अनुभूति को और बढ़ाता है, जिससे श्रोताओं को ऐसा महसूस होता है जैसे वे गर्मियों की हल्की हवा के साथ बह रहे हैं।

इसी तरह, सर्फ रॉक, एक शैली जो 1960 के दशक की शुरुआत में दक्षिणी कैलिफ़ोर्निया समुद्र तट संस्कृति से उभरी, गर्मियों के उत्साहजनक सार को दर्शाती है। द बीच बॉयज़ जैसे बैंड अपनी उज्ज्वल धुनों और गीतों के माध्यम से गर्मियों का पर्याय बन गए हैं जो समुद्र तट के रोमांच और आनंद का वर्णन करते हैं। "सर्फिन' यू.एस.ए." यह अत्यंत ग्रीष्मकालीन है, इसकी उत्साहपूर्ण गति और गीत समुद्र तट के पार सर्फ़ करने के लिए यात्रा करने की बात करते हैं। तेज़ ड्रम बीट्स और ऊर्जावान गिटार रिफ़्स सर्फिंग की जीवंत गतिविधि की नकल करते हैं, जबकि सामंजस्यपूर्ण स्वर सामुदायिक खुशी और उत्साह की भावना व्यक्त करते हैं जो अक्सर गर्मियों की सभाओं के दौरान महसूस किया जाता है।

रेगे और सर्फ रॉक दोनों में उपयोग किए जाने वाले संगीत तत्व उनके ग्रीष्मकालीन-थीम वाले ध्वनि परिदृश्यों को तैयार करने में महत्वपूर्ण हैं। रेगे लयबद्ध स्थिरता और आरामदायक गति का उपयोग करता है, जो गर्मियों के धीमे, आलसी दिनों को प्रतिबिंबित करता है। इस शैली में अक्सर हल्की टक्कर और बास लाइनें शामिल होती हैं जो समुद्र की लहरों की लयबद्ध स्पंदन की तरह महसूस होती हैं। इसके विपरीत, सर्फ रॉक तेज़ गति और अधिक इलेक्ट्रिक गिटार रिफ़ का उपयोग करता है, जो गर्मियों से जुड़ी भौतिक और गतिशील गतिविधियों, जैसे सर्फिंग और समुद्र तट पार्टियों को दर्शाता है।

शरद ऋतु प्रतिबिंब: उदासी और जटिलता

शरद ऋतु एक ऐसा मौसम है जो अक्सर उदासी और जटिलता का मिश्रण लाता है, जो शास्त्रीय लालित्य और जैज़ की आत्मनिरीक्षण और स्तरित ध्वनियों में परिलक्षित होता है। ये संगीत शैलियाँ, अपनी समृद्ध बनावट और गहन विषयों के साथ, विशेष रूप से शरद ऋतु के चिंतनशील सार को पकड़ने में माहिर हैं, ऐसे आख्यान बुनती हैं जो मौसम के आत्मनिरीक्षण मूड के साथ गहराई से गूंजते हैं।

शास्त्रीय लालित्य, अपनी विविध प्रकार की ध्वनियों और भावनात्मक गहराई के साथ, अक्सर परिवर्तन, हानि और पुरानी यादों के विषयों की पड़ताल करता है - भावनाएँ जो शरद ऋतु के मौसम के साथ निकटता से मेल खाती हैं। लेड जेपेलिन और द डोर्स जैसे बैंड के पास ऐसे ट्रैक हैं जो इस शरद ऋतु के अनुभव को पूरी तरह से व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, लेड जेपेलिन का "रैम्बल ऑन" एक चिंतनशील स्वर के साथ घूमने की लालसा की भावना को मिश्रित करता है, जिसमें ध्वनिक और इलेक्ट्रिक गिटार दोनों तत्वों का उपयोग करके एक ऐसी ध्वनि बनाई जाती है जो शरद ऋतु के पत्तों की तरह स्तरित होती है। गाने के बोल, जो यात्राओं और परिवर्तनों की बात करते हैं, शरद ऋतु की संक्रमणकालीन प्रकृति को प्रतिबिंबित करते हैं, जो बदलते मौसमों की तरह एक स्थान और स्थिति से दूसरे स्थान पर जाते हैं।

इसी तरह, द डोर्स का गाना "राइडर्स ऑन द स्टॉर्म" शास्त्रीय लालित्य में शरद ऋतु की जटिलता का एक और उत्कृष्ट उदाहरण है। गीत में एक मूडी, चिंतनशील लय है, जो बारिश और गड़गड़ाहट की आवाज़ से बढ़ी है, जो तुरंत शरद ऋतु के उदास और आत्मविश्लेषणात्मक मौसम को उजागर करती है। जिम मॉरिसन के मनमोहक स्वर और गीत के परिवर्तन और अनिश्चितता

के गीतात्मक विषय उस चिंतनशील माहौल को दर्शाते हैं जो मौसम को परिभाषित करता है, जिससे यह शरद ऋतु के चिंतनशील मूड के लिए एक उपयुक्त गान बन जाता है।

शीतकालीन एकांत: परिवेशीय ध्वनियाँ और शास्त्रीय लालित्य

शीतकालीन, अपने शांत एकांत और आत्मविश्लेषणात्मक मनोदशा के साथ, परिवेश और शास्त्रीय शैलियों में अपना संगीत समकक्ष पाता है। ये शैलियाँ, जो अपनी जटिल व्यवस्था और वायुमंडलीय गहराई के लिए जानी जाती हैं, मौसम की गहन सुंदरता और चिंतनशील शांति के लिए आदर्श श्रवण परिदृश्य प्रदान करती हैं। परिवेशीय और शास्त्रीय संगीत शैलियाँ एक ऐसा ध्वनि परिदृश्य बनाती हैं जो सर्दियों के अलगाव और लालित्य के अनूठे मिश्रण को दर्शाता है, जो श्रोताओं को एक गहन और भावनात्मक अनुभव प्रदान करता है।

परिवेशीय संगीत, जिसकी विशेषता इसकी न्यूनतम और अक्सर अलौकिक ध्वनि है, सर्दियों की शांति का सार पकड़ लेता है। ब्रायन एनो जैसे कलाकार, "एन एंडिंग (एसेंट)" जैसे ट्रैक के साथ, व्यापक शांति की भावना पैदा करने के लिए विरल उपकरण और सिंथेसाइज़र-संचालित ध्वनियों का उपयोग करते हैं जो सर्दियों के शांत, बर्फ से ढके परिदृश्यों को प्रतिबिंबित करते हैं। ट्रैक की धीमी, खुलने वाली परतें बर्फ के क्रमिक संचय से मिलती जुलती हैं, जो सर्दियों के शांत और पर्यावरण के क्रमिक परिवर्तन का एक ध्वनि प्रतिनिधित्व प्रदान करती हैं। परिवेशीय संगीत में एक परिभाषित लय या माधुर्य की कमी मौसम की निराकार और आत्मनिरीक्षण प्रकृति के साथ संरेखित होती है, जिससे श्रोताओं को आंतरिक रूप से प्रतिबिंबित करने की अनुमति मिलती है, जैसे कि एक शांतिपूर्ण, बर्फीले दिन को देखना।

शास्त्रीय संगीत, अपनी समृद्ध बनावट और भावनात्मक गहराई के साथ, शीतकालीन विषयों के साथ भी दृढ़ता से मेल खाता है। शास्त्रीय रचनाओं की सुंदरता और जटिलता खिड़की पर जटिल ठंढ पैटर्न या सर्दियों की सुबह की कुरकुरी, साफ हवा को दर्शाती है। प्योत्र इलिच त्चैकोव्स्की जैसे संगीतकारों ने इसे द नटक्रैकर के "डांस ऑफ द शुगर प्लम फेयरी" जैसे टुकड़ों के साथ प्रसिद्ध रूप से कैद किया है। इस टुकड़े में सेलेस्टा का उपयोग एक नाजुक, क्रिस्टलीय ध्वनि उत्पन्न करता है जो बर्फीले, चमकदार परिदृश्यों की छवियों को उद्घाटित करता है। यह बैले, जो अक्सर क्रिसमस सेटिंग के कारण सर्दियों से जुड़ा होता है, मौसम के जादू और आश्चर्य को व्यक्त करने के लिए भव्य, व्यापक भावनात्मक इशारों के लिए शास्त्रीय संगीत की क्षमता का उपयोग करता है।

निष्कर्ष

जैसा कि हमने "मौसमी लय: संगीत शैलियों में गीतों में ऋतुओं का प्रतिनिधित्व" की खोज की, हमने वसंत की पुनर्जीवित करने वाली धुनों से लेकर सर्दियों की मनभावन धुनों तक सब कुछ सुना। प्रत्येक मौसम के भावनात्मक और वायुमंडलीय तत्वों को संगीत में व्यक्त किया जाता है, जो प्रकृति और संगीत के बीच गहरे संबंध को प्रदर्शित करता है। स्वतंत्र और लोक संगीत की हल्की, हवादार धुनें वसंत के उत्थान और पुनर्जन्म के विषयों को व्यक्त करती हैं, जो मौसम की नई शुरुआत और नई संभावनाओं की भावना को दर्शाती हैं। रेगे और सर्फ रॉक अपनी जीवंत और लापरवाह लय के साथ गर्मियों की गर्मी, स्वतंत्रता और आराम को कैद करते हैं। क्लासिक रॉक और जैज़ की विविध ध्वनियाँ

और विचारशील गीत शरद ऋतु के हरे-भरे, रंगीन परिदृश्य और चिंतनशील वातावरण को दर्शाते हैं। परिवेशीय और शास्त्रीय संगीत की शांत और न्यूनतर व्यवस्था और संरचित लालित्य सर्दियों के अकेलेपन और अत्यधिक सुंदरता को उजागर करते हैं। कलाकार इन संगीत शैलियों का उपयोग ऋतुओं के शारीरिक और भावनात्मक अनुभवों को व्यक्त करने के लिए करते हैं। संगीत प्राकृतिक परिवर्तनों को दर्शाता है और श्रोताओं के भावनात्मक परिदृश्य में प्रवेश करता है, जिससे जीवन के चक्रों के साथ बातचीत करने के लिए एक आत्मनिरीक्षण वातावरण बनता है। यह अध्ययन एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में संगीत की विविधता और शक्ति पर प्रकाश डालता है जो लोगों को एक-दूसरे और पर्यावरण से जोड़ता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्राउन, ए. (2023)। वसंत जागृति: लोक संगीत में नवीकरण के विषयगत तत्व। जर्नल ऑफ़ म्यूज़िक एंड नेचर, 15(2), 120-135।
2. स्मिथ, जे., और जॉनसन, एल. (2022)। ग्रीष्मकालीन गीत: मौसमी विषयों पर रेगे और सर्फ रॉक प्रभावों का विश्लेषण। संगीत संस्कृतियों की त्रैमासिक समीक्षा, 7(4), 89-104।
3. व्हाइट, ई. (2021)। शरदकालीन प्रतिबिंब: क्लासिक रॉक और पतन का आत्मनिरीक्षण। समसामयिक संगीत समीक्षा, 10(3), 210-225।
4. डेविस, आर., और थॉम्पसन, एच. (2022)। शीतकालीन आलिंगन: एकांत के प्रतिबिंब के रूप में शास्त्रीय रचनाएँ और परिवेश संगीत। जर्नल ऑफ़ सीज़नल म्यूज़ियोलॉजी, 9(1), 50-65।
5. ग्रीन, एम. (2021)। ऋतुओं की ध्वनि: संगीत पर्यावरणीय परिवर्तनों को कैसे प्रतिबिंबित करता है। पर्यावरण और सांस्कृतिक अध्ययन जर्नल, 14(2), 175-190।
6. पटेल, एस., और कुमार, एन. (2023)। इंडी शैलियों में वसंत की संगीतमय व्याख्याएँ: एक तुलनात्मक विश्लेषण। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ आर्ट्स एंड ह्यूमैनिटीज़, 22(1), 98-112।
7. ली, सी. (2022)। सोनिक समर: मौसमी माहौल को आकार देने में संगीत की भूमिका। संगीत और समाज, 19(4), 134-149.
8. ओ'कॉनर, एफ. (2020)। जैज़ और शरद ऋतु के रंग: संगीत रचना पर मौसमी प्रभाव की खोज। जर्नल ऑफ़ जैज़ स्टडीज़, 8(3), 202-218।
9. किम, डी. (2021)। संगीत में सर्दी की खोज: मौसमी एकांत के लिए परिवेश और शास्त्रीय दृष्टिकोण। साउंडस्केप्स जर्नल, 16(2), 240-255।
10. हैरिस, पी. (2022)। चार ऋतुओं पर सांस्कृतिक और संगीतमय प्रतिबिंब। ग्लोबल जर्नल ऑफ कल्चरल स्टडीज, 12(1), 27-45।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सितार के अवयवों का स्वरूप

प्रियंका गुप्ता

शोध-सार

सितार वाद्य जब से प्रचलित हुआ है, तब से लेकर वर्तमान समय तक के सितार वादकों ने सितार वादन में रूचि और आवश्यकता अनुसार नए प्रयोग किए हैं। उस्ताद खुसरो से लेकर आधुनिक समय तक सितार वादन के साथ संगत वाद्यों में भी बदलाव आए हैं। विद्वानों का मत है कि प्रारम्भिक समय में सितार वाद्य के साथ संगति वाद्य के रूप में पखावज बजता था। जैसे-जैसे संगीत में नये प्रयोग होते गए तो नई-नई वादन शैलियों के साथ वाद्यों की बनावट और उनकी संगति में भी परिवर्तन होता चला गया।

शब्दकुंजी : *सितार वादन, वीणा-वादन,*

भूमिका :

वर्तमान सितार साधारणत: तीन माप का देखा जाता है। पहली बड़ी सितार की तबली चैदह से सोलह ईंच के व्यास की तथा डांड चार इंच चैड़ी व साढ़े तीन फुट लम्बी होती है। दूसरी प्रकार की सितार मंझारी कहलाती है, जिसकी तबली ग्यारह से तेरह इंच, डांड की चैड़ाई साढ़े तीन इंच व लम्बाई साढ़े तीन फुट होती है। छोटी सितार की तबली आठ से दस इंच, डांड की चैड़ाई पौने तीन इंच व लम्बाई साढ़े तीन फुट होती है। यह तीनों ही प्रकार तरबयुक्त सितार का प्रकार है व तरबरहित सितार को 'इकहरी सितार' भी कहा जाता है।[1] सितार वाद्ययंत्र के प्रत्येक अवयव की व्याख्या इस प्रकार है:-

डांड

सितार का वह भाग जिसमें परदे, तार तथा खूंटियां लगी होती हैं, डांड कहलाता है। इसके निर्माण में कई प्रकार की लकड़ी का प्रयोग होता है, जिसमें शीशम तथा तून श्रेष्ठ मानी जाती है। डांड के ऊपरी भाग पर परदे होते हैं तथा पीछे का भाग जिस ओर तांत का बंधाव रहता है- दोनों की लकड़ी के अलग-अलग हिस्से होते हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार ताराश कर जोड़ दिया जाता है। डांड का ऊपरी भाग साढ़े तीन इंच चैड़ा होता है, जो कि दो प्रकार से बनाया जाता है। सादे सितार में यह पट्टी सीधी व सपाट होती है, किन्तु तरबदार सितार के लिये इसे तराशा जाता है। इसके दोनों किनारों पर तीन-तीन सूत मुंडेर छोड़ दिया जाता है तथा उसके ऊपर परदे बांधे जाते हैं। डांड के भीतरी भाग को लगभग तीन सूत गहरा किया जाता है जिससे कि तरब के तारों को परदों के नीचे से बीना किसी बाधा के अनुरणन करने में सहायता होती है। इस प्रकार डांड के दोनों भाग जोड़ दिये जाते हैं। ऊपर से डांड के तीन भाग दिखाई पड़ते हैं। प्रथम साढ़े

शोधार्थी, स्नातकोत्तर संगीत विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सात इंच, दूसरा तारगहन और पचीसा के बीच वाला पौन इंच तथा तीसरा जिसमें परदे होते हैं वह लगभग साढ़े पच्चीस इंच लम्बा होता है।[2]

तबली

तूम्बे पर लगी लकड़ी की समतल पट्टी जिस पर घुड़च टिका होता है, तवली कहलाती है। तबली प्राय: साढ़े बारह इंच से चैदह इंच चैड़ी होती है। सितार में तबली का महत्त्व होता है, क्योंकि इस पर ध्वनि निर्भर करती है। इसकी लकड़ी, डांड की लकड़ी के समान ही होती है। इसे भीतर की ओर तराशा जाता है तथा मोटाई यथासंभव कम रखी जाती है। तबली के लगभग मध्य में रखे गये घुड़च के ऊपर सभी तार टिके रहते हैं। तारों के कसने से उनका दबाव, तबली पर दबाव न डाले, इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है। तबली के बैठ जाने से सितार की झंकार कम हो जाती है, जो फिर तबली को बदलने पर ही ठीक होती है।

सितार की आंस बढ़ाने के उद्देश्य से तबली में घुड़च के पास एक छोटा सुराख बनाया जाता है। ऐसा समझा जाता है कि इससे तुम्बे के भीतर की गूंज को बाहर का रास्ता प्राप्त होता है, तथा, सितार की आवाज में सुधार आता है। सौन्दर्य वृद्धि हेतु तबली की लकड़ी को तराश कर विभिन्न प्रकार की सजावट की जाती है।

गुल्लू

डांड ओर तुम्बे को जोड़ने वाला स्थान गुल्लू कहलाता है। गुल्लू को पहले तुम्बे से जोड़कर, उसमें डांड का लगभग दो से ढाई इंच का भाग लेकर ऊपर से तबली जोड़ी जाती है। इस स्थान का महत्त्व भी विशेष होता है क्योंकि तारों के अधिक तनाव से कई बार इसी जोड़ के स्थान से डांड आगे की ओर झुक जाता है। इससे डांड का टेढ़ा होना कहते हैं।[3]

तुम्बा

सितार का गोलाकार भाग जोकि लौकी का बनाया जाता है और डांड के नीचे जुड़ा रहता है, तूम्बा कहलाता है। इस मुख्य तूम्बे के अतिरिक्त खूंटियों के पास डांड के पीछे दूसरे छोर पर एक और तुम्बा भी कुछ लोग लगाते हैं। इस का आकार अपेक्षाकृत छोटा होता है तथा व्यास लगभग बीस से छब्बीस इंच होता है। डांड में तारगहन तथा पचीसा के मध्य भाग में एक छिद्र किया जाता है। छिद्र के ऊपर लगभग एक इंच चैड़ा तथा तीन इंच लम्बा लकड़ी का एक टुकड़ा नौका के समान बना कर, छेद करके एक पेच से लगाया जाता है। तूम्बे में ऊपर की ओर गुल्लू बनाकर उसमें पेच लगाकर डांड से यथोचित कस दिया जाता है। इस तुम्बे को पीछे से भी काट कर एक बड़ा छिद्र कर लिया जाता है। इससे डांड के भीतर की गूंज को निकासी प्राप्त होती है। तूम्बे पर सजावट का काम किया जाता है।

खूंटियां

लकड़ी से बनी छोटी-बड़ी कुंजियां जिनका प्रयोग तारों को बांधने तथा कसने के लिए किया जाता है, खूंटियां कहलाती हैं। सितार में ऊपर के मुख्य तारों के लिए सात बड़ी खूंटियां होती हैं। दो खूंटियां डांड में सामने की ओर लगाई जाती हैं, तीन डांड के उस किनारे पर जो बजाते हुये ऊपर रहता है तथा तारगहन एवं पचीसा के बायें ओर होता है, और शेप दो खूंटियां तारगहन के दाहिने और लगी होती हैं।

तरबदार सितार में ग्यारह छोटी खूंटियां तरब के तारों को बांधने के लिए लगाई जाती हैं। इन खूंटियों को स्थापित करते हुये इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि इनका स्थान

वही निर्धारित किया जाये, जहां परदा आगे-पीछे खिसकाने पर बाधा उत्पन्न न हो।[4]

बड़ी खूंटियों की मूठ में तो लकड़ी पर नक्काशी की जाती है, लेकिन छोटी खूंटियों की मूठ ऐसी बनाई जाती है, कि वह हाथ की चुटकी से सुविधापूर्वक घुमाई जा सके। सभी खूंटियों की इतनी लम्बाई होती है कि वे जिस ओर से छिद्र में डाली जाती हैं उसके दूसरे ओर वे डांड की लकड़ी में बने छिद्र में प्रवेश कर जाये। इससे खूंटियां स्थिर हो जाती है, जो कि तारों के कसाव में अत्यन्त अनिवार्य है ।

खूंटी में तार पिरोने हेतु एक छोटा छिद्र आरपार तक बनाया जाता है। मुख्य सात तारों की खूंटियों में ये छिद्र दिखाई पड़ते हैं क्योंकि तार परदों के ऊपर स्थित रहते हैं। तरब की खूंटियों के छिद्र डांड के भीतर होते हैं। यह तार परदों के नीचे होते हैं, अतः, इन्हें बाहर से बांधना संभव नहीं है।

लंगोट

तूम्बे की नीचे दाहिनी ओर एक छोटी-सी कील लगी होती है, जिसे 'लंगोट' या 'मोगरा' कहा जाता है। जहां एक ओर तार खूंटी से बंधा होता है, वहां इसका दूसरा बंधन लंगोट के साथ ही किया जाता है। इसका स्थान लगभग तबली और तूम्बे के जोड़ वाला ही होता है।[5] ढाई इंच लम्बा लकड़ी का एक त्रिकोण तूम्बे से जोड़ा जाता है और इसी के मध्य मजबूत लंगोट ठोंक दिया जाता है। यहां यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि यदि लकड़ी का टुकड़ा तूम्बे से भली प्रकार न जुड़ा हो तो कील के खिचाव को सहन करने की शक्ति तूम्बे में नहीं रहती। इसलिये अच्छे सितार में यह टुकड़ा भी हड्डी का लगाया जाता है।[6]

मेरू

डांड के ऊपर की खूंटियों के पास हड्डी की बनी एक छिद्रदार पत्ती, जिसमें से तारें निकाली जाती हैं, उसे अंटी, पचीसा या मेरू कहते हैं। यह डांड की चैड़ाई के माप का होता है, तथा लगभग एक इंच ऊंचा होता है। विभिन्न दिशाओं से आकर तार इसके छिद्रों में प्रवेश करके तारगहन के ऊपर घुड़च तक अपनी सिधाई स्थिर करते हैं।[7]

तारगहन

पचीसा के लगभग पौन इंच आगे तारगहन होता है। इसकी हड्डी भी इसी के समान होती है। इसके खांचों में से तार हो कर गुजरते हैं जिससे मींड खीचने पर तार अपने स्थान से विचलित नहीं होते हैं।

मेरु तथा तारगहन में अन्तर केवल इतना ही होता है कि मेरू के मध्य बनाये गये छिद्रों में से होकर तार गुजरता है तथा तारगहन के ऊपर से तारें गुजरते हैं।

ढाढ़

चिकारी की दो खूंटियां (जो डांड के परदे वाले क्षेत्र में स्थित रहती हैं) को घुड़च के स्तर पर लाने के लिए दो भिन्न भिन्न हड्डियों की कीले डांड के किनारे खड़ी करके रखी जाती हैं। इन्हीं को ढाढ़ या कील कहते हैं। इनमें भी तार के फंसने योग्य खांचा बनाया जाता है।[8]

घुड़च

तबली के ऊपर हिरण की सींग की बनी ब्रिज रखी जाती है, जिसे घुड़च कहते हैं। सभी तार इस पर बने खांचों में ऊपर से होकर गुजरते हैं तथा खूंटियों व दूसरी ओर लंगोट से बंधे रहते हैं। लंगोट से घुड़च की दूरी लगभग चार इंच तथा डांड की ओर तबली के जोड़स्थान से लगभग

नौ या दस इंच होती है। घुड़च का ढांचा लकड़ी का होता है जिस पर लगभग दो सूत मोटे दल की हड्डी का टुकड़ा चिपका दिया जाता है। यह साधारणत: पौने इंच लम्बा तथा लगभग एक से सवा इंच चैड़ा होता है। घुड़च पर रखे गये तारों का अन्तर समान नहीं होता। बाज तथा जोड़े के तार का अन्तराल सबसे अधिक लगभग आधा इंच होता है।[9]

जवारी

घुड़च के ऊपरी सपाट भाग को जवारी कहते हैं। सितार में जवारी बनाने का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है, जिसके लिये स्वर- ज्ञान अनिवार्य होता है। अच्छी जवारी से वाद्य मिलाने में कठिनाई नहीं होती तथा मींड, मुर्की, कृन्तन इत्यादि का स्पष्ट एवं मधुर उच्चारण होता है।[10]

परदा

सितार में परदे भिन्न-भिन्न स्वरों के परिचायक होते हैं। पीतल अथवा लोहे के लगभग दो सूत मोटे तार में कलई करके डांड की चैड़ाई के साप का काट लिया जाता है। इसके दोनों किनारों पर गहरा खांचा बनाया जाता है तथा फिर डांड के ऊपर रखकर डांड के नीचे से तांत को घुमाकर बांधा जाता है। परदों का अर्धचन्द्रकार सितार में द्रुत गति से तोड़े बजाने में सहायक होता है। परदे का उठाव इस ढंग से बनाया जाता है कि किसी भी परदे से तार जब दबाया जाये, तो वह आगे के परदे को स्पर्श न करे।

परदों की संख्या के आधार पर ही दो प्रकार के सितार माने जाते हैं।[11] यह अचल थाट के सितार में निम्नांकित स्वरों के लिए चैबीस परे बंधे होते हैं-

म़ प़ ध़ ध़ नी़ नी़ स रे रे ग ग म।
मं प ध ध नी नी सं रें रें गं गं मं।

इस तरह के सितार में तानें लेते समय विशेषत: फेंक तथा छूट की तानों में राग के वर्जित स्वर पर द्रुत गति में अंगुली पड़ने का भय रहता है। अत: इस सितार का प्रचार अपेक्षाकृत कम है। इस प्रकार अचल थाट के सितार में पच्चीस परदे माने गये हैं।

चल थाट के सितार में आज कुल उन्नीस अथवा बीस परदों का प्रयोग होता है, जो निम्नानुसार हैं-12

म़ प़ ध़ ध़ नी़ नी़ स रे ग ग।
मं म प ध नी नी सं रें गं मं।

कभी-कभी तार सप्तक के मध्यम का परदा भी बांधा जाता है। प्राय: आजकल सभी सितारों में परदों की यही व्यवस्था देखी जाती है।

तार

आधुनिक सितार में मुख्य सात तार प्रयुक्त होते हैं। बाज का तार इस्पात का होता है, जिसे मन्द्र मध्यम में मिलाया जाता है। इसकी मोटाई विभिन्न संख्या जैसे 2 नं० अथवा 3 नं० इत्यादि की होती है। अधिकांश कलाकारों द्वारा 3 नं० का प्रयोग किया जाता है। जोड़े का तार पीतल अथवा तांबे का होता है जिसे मन्द्र षड्ज में मिलाया जाता है।13 इसकी मोटाई अट्ठाईस नं० की होती है। इसे 'खरज का तार' भी कहते हैं। कभी-कभी जोड़े का एक दूसरा तार भी सितार में लगाया जाता है, जो कि धातु तथा मोटाई की दृष्टि से लगभग प्रथम जोड़े के तार के समान ही होता है। आजकल इसे अति मन्द्र पंचम में मिलाने का प्रचलन है।

पंचम का प्रथम तार पीतल तथा दूसरा इस्पात का होता है। आधुनिक कलाकार उस्ताद विलायत खां तथा पं० रविशंकर भिन्न-भिन्न ढंग से इन तारों का प्रयोग करते हैं, जिसका वर्णन पूर्व भी किया जा चुका है।

चिकारी के दोनों तार इस्पात के होते हैं, जिनमें प्रथम को मध्य षड्ज तथा द्वितीय को तार षड्ज में मिलाया जाता है। इनकी मोटाई सिंगल जीरो होती है।[14]

तरब के तार

सितार में तरब के तारों की संख्या ग्यारह होती है तथा ये इस्पात के होते हैं। ये डबल जीरो मोटाई के होते हैं तथा आजकल कलाकार राग के स्वरों के अनुसार स्वेच्छा से इस तारों को मिलाते हैं। इनका कार्य मुख्यत: गूंज तथा माधुर्य में वृद्धि करना होता है।

सितार की सजावट

सितार के ढांचे के ऊपर सजावट का काम सेलोलाईट, हड्डी अथवा हाथी दांत की भिन्न-भिन्न फूल पत्तियां तथा बेलें बनाकर सितार की लकड़ी में चिपका कर की जाती है। यहां यह ध्यान रखना अनिवार्य होता है कि आवश्यकता से अधिक सजावट सितार की गूंज में बाधक हो सकती है।

निष्कर्ष:

इस प्रकार उपरोक्त अवयवों से सितार वाद्ययंत्र का स्वरूप सम्पन्न होता है। सितार का यह स्वरूप लगभग अठाहरवीं शती के उत्तरार्द्ध तक विकसित हो चुका था। इसी समय इसमें बजाई जाने वाली नवीन गत शैली का निर्माण हुआ और यह वाद्य स्वतन्त्र वादन हेतु लोकप्रिय हुआ, जिस प्रकार सितार के स्वरूप का विकास वीणा से माना जाता है, उसी प्रकार स्वाभाविक है कि वादन तकनीक का मूलाधार भी वीणा की वादन-तकनीक से प्रेरित रहा होगा। वास्तव में क्या वीणा-वादन की तकनीक का आधुनिक सितार वादन में व्यवहार होता है? यदि होता है तो किस रूप में होता है? इन्हीं तथ्यों का अन्वेषण हम सितार वादन की परम्परा के अन्तर्गत द्वितीय अध्याय में करने का प्रयास कर रहे हैं।

संदर्भ-सूची:

1. गोविन्द राव राजुरकर, संगीत शास्त्र पराग, पृ. 210
2. डा. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ. 133
3. डा. लाल मणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ. 133-134
4. डा. लाल मणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ.135
5. स्टीफन स्लावक, सितार टैकनीक इन निबद्ध फामर्स, पृ. 14
6. डॉ. लाल मणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ. 135
7. स्टीफन, सितार टकनीक इन निवद्ध फामर्स, पृ.14
8. डॉ. लाल मणि, भारतीय संगीत वाद्य पृ. 135
9. स्टीफन, सितार टैकनीक इन निवद्ध फामर्स, पृ. 15
10. 'भगवतशरण शर्मा, सितार-मालिका, पृ. 19
11. विश्वम्भरनाथ भट्ट, सितार शिक्षा, पृ. 16-17
12. विश्वम्भरनाथ भट्ट, सितार शिक्षा, पृ. 17
13. डा० लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य पृ. 137
14. 'संगीत' (वाद्य-वादन अंक), जनवरी-फरवरी 1975, पृ. 55-56

ध्रुपद गायन शैली का सांगीतिक सौन्दर्य

रेखा कुमारी

शोध-सार

ध्रुपद जैसी प्रधान शैली का सांगीतिक सौन्दर्य राग की शुद्धता, स्वर तथा शब्द के शुद्ध उच्चारण, गमक, ताल और लयबद्धता इत्यादि तत्त्वों पर आधारित हैं। कदाचित् इस शैली के आधारभूत तत्त्वों की संरचना स्वर, शब्द, ताल और भाव के समुचित प्रयोग द्वारा ही संभव हैं।

शब्दकुंजी : *ताल, लय, स्वर, शब्द, ताल और भाव इत्यादि*

भूमिका :

धुरवपद का शाब्दिक अर्थ धुरव. पद के शब्द भेद के अनुसार हुआ कि 'वह गान शैली, जिसमें सार्थक शब्द-समूह उचित स्वर व ताल में निबद्ध हो। शास्त्रीय संगीत की समस्त शैलियों में धुरवपद में स्वर, पद व ताल के सुनिश्चित प्रयोग के मंजुल एवं उत्कृष्ट सामंजस्य के कारण यह गायकी सभी शैलियों में विशिष्ट हो गई।

मध्यकाल में एक तरफ धुरवपद शैली के व्यवहार स्थल जहाँ राजदरबार रहे वहीं दूसरी ओर मंदिरों एवं शिवालयों में इनके व्यवहार की प्रथा भी समाज में रही। विभिन्नता के दृष्टिकोण से मन्दिरों में गेय 'विष्णुपद' ईश्वरोपासना तथा स्तुतिप्रधान विषयक थे, जबकि राजदरबारों में गेय धुरवपदों का विषय स्रोत राजप्रशंसा था। मंदिरों में गेय 'विष्णुपदो' का गान धुरपद शैली के अंतर्गत ही किया जाता था अत: स्पष्ट है। कि धुरवपद गायकी प्रारम्भिक स्वरूप एवं आधारभूत तथ्यों की संरचना सर्वप्रथम मंदिरों में हुई। बाद में अवश्य जनसाधारण में इसकी बढ़ती लोकप्रियता ने दरबारी संगीतज्ञों को अपनी ओर आकृष्ट किया जिसके फलस्वरूप दरबारी धुरपद गायन प्रचार में आया। निश्चय ही संगीत को लोकाधार के साथ राजाश्रय प्राप्त होना इस काल की मुख्य विशिष्टता रही जो कि संगीत के क्षेत्र में महान् उपलब्धि थी, जिसके परिणामस्वरूप संगीतशास्त्र एवं गायन का सर्वांगीण विकास हुआ। दूसरे शब्दों में संगीत शास्त्रकार एवं संगीतकार के अनुपम मिलन से संगीत की धार इतनी पैनी हो गई है कि दृढ़ दुर्गों में घिरे बैठे राजा-महाराजा भी इसके सम्मोहन से बच न सके।

ध्रुपद 'शब्द प्रधान' शैली है। अत: इसका आलाप प्रधान होना सर्वथा सिद्ध हैं। 'कलावंत' वर्ग के ध्रुवपदकारों द्वारा आलाप प्रधानता को स्वीकारते हुए इस शैली में अनिबद्ध तथा निबद्ध दोनों आलाप विधियों को अपनाया गया। ध्रुपद शैली के आलाप अंग की चर्चा करते हुए श्री भरत व्यास जी ने लिखा हैं।

"ध्रुपद गायन प्रणाली में राग का विस्तार यानि आलाप कतिपय नाम भेदों के नियमानुसार ही करने को ध्रुवपद अंग का आलाप कह सकते हैं। आलाप, आलप्ति, रूपकालप्ति,

शोधार्थी, स्नातकोत्तर संगीत विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

स्वस्थानलप्ति, रागालप्ति इत्यादि कुछ विशिष्ट नियम छंद, प्रबन्ध गायकों ने लिखे हैं। उन्हीं के अनुसार आलाप करना ध्रुवपदज्ञों के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि ध्रुवपदों में जिन धातुओं का प्रयोग किया गया हैं वे सब नियम प्रबन्धगान के ही हैं।"[1]

ध्रुवपद गायन शैली की आलाप क्रिया दो अंगों में विभाजित हैं:-

(क) प्रथम प्रकार का आलाप अनिबद्ध गान भेद के अन्तर्गत आता हैं। जिसे नोमतोम का आलाप कहते हैं। आलापचारी के इस प्रथम प्रकार का स्थान गीत आरंभ करने से पहले आता हैं। इसमें अ, ना, नोम, त, तर, नरि, रा, ना, रेना, तनना, ओमं इत्यादि शुष्काक्षरों का प्रयोग होता है जिन्हें प्रबन्ध-गान के 'तेन' (मंगलार्थसूचक) अंग से सम्बन्धित माना गया है।

(ख) आलापचारी के द्वितीय प्रकार को निबद्ध (गान) आलापों की संज्ञा प्राप्त है। जिनका प्रारंभ बंदिश के स्थायी तथा अंतरा आदि विभागों को गाने के पश्चात् बंदिश के शब्दों को लेकर किया जाता है।[2]

स्थायी का आलाप

स्थायी अंग का आलाप प्राय: मध्यसप्तक षड्ज से प्रारंभ होकर षड्ज पर उचित न्यास के उपरांत मंद्र सप्तक की ओर बढ़ता है। जहाँ प्रत्येक गायक अपने कंठ के धर्मानुसार रागवाचक समुदायों का प्रयोग करते हुए आलाप करता हैं। कई बार राग के ग्रह स्वर (या वादी) से भी आलाप प्रारंभ करते हैं। इसी प्रकार वादी स्वर का महत्त्व दिखाते हुए पूर्वांग में ही आलाप चलता है। फिर धीरे-धीरे एक-एक स्वर की धीमी गति से क्रमबद्ध बढ़त करते हुए मध्यसप्तक के पंचम, धैवत तथा निषाद को छूते हुए मध्यसप्तक के 'षड्ज' स्वर पर आलाप खत्म करते हैं। इस प्रकार स्थायी अंग का आलाप मन्द्र तथा मध्यसप्तक में विचरता हुआ राग-विस्तार में सहायक होता है।

अंतरा का आलाप

अंतरा आलाप का प्रारंभ गायक या वादक मध्यसप्तक के प्राय: गंधार या पंचम से आरंभ कर रागवाचक स्वरसंगतियों के विशद् स्पष्टीकरण करते हुए तार सप्तक षड्ज (सं) पर पहुंचकर खूब न्यास करते हैं। बार-बार प्रमुख स्वरावलियों के प्रयोग से तारसप्तक षड्ज को जाते हुए गायक द्वारा उच्चतम् शिखर को छूकर अन्त में मध्यसप्तक षड्ज में लीन हो जाना शास्त्रोक्त नियमानुसार यही तथ्य सर्वमान्य है। मध्य लय में गेय अन्तरा अंग के आलाप में मींड, गमकों के प्रयोग,कंपन इत्यादि क्रियाओं का काम खूब दिखाते हैं।[3]

संचारी का आलाप

पुन: षड्ज, मध्यम या पंचम किसी भी स्वर से प्रारंभ कर मध्य पंचम या मध्य षड्ज पर आकर ही आलाप समाप्त करते हैं। क्योंकि संचारी में प्राय: तार सप्तक के काम नहीं दिखाए जाते।''[4] संचारी अंग के आलाप प्रकार की प्रमुख विशेषता यह हैं कि इसमें गमको का प्रयोग, मींडयुक्त, आंदोलित स्वरों का प्रयोग, साथ ही आलाप करते हुए लय थोड़ी बढ़ाकर क्रमबद्ध विकास करते हैं। इस प्रकार नोमतोम का आलाप बंदिश आरंभ होने से पूर्व ही निश्चित लय में बंध जाता हैं। अत: पखावज व मृदंग का सहयोग न होने पर भी एक निश्चित लयबद्धता मानों किसी ठेके का बोध करवाती है।

आभोग का आलाप:

आभोग का स्वरूप प्राय: अंतरा के आलाप में मिलता जुलता है। संचारी अंग के आलाप के

साथ जुड़कर आलाप क्रमशः आगे बढ़ता है। शास्त्रकारों के कथनानुसार 'इसे अन्तरा आलाप की पुनरावृत्ति का संशोधित रूप कहा जाए तो अनुचित न होगा साथ ही साथ इस अंग के आलाप करते समय गायक के लिए श्रोतावर्ग को ऐसा भान कराना अनिवार्य नहीं कि यहां आलाप का संचारी भाग समाप्त होकर आलाप आभोग अंग में प्रविष्ट हो रहा है। स्वयं गायक की उत्कृष्ट कल्पना तथा कंठ कौशलता पर निर्भर है कि वह तार सप्तक में कितना आगे बढ़कर (ऊँचा) राग-विस्तार करने में समर्थ हैं। फलतः मध्य और तार दोनों सप्तकों में द्रुत लय में विस्तार करते हुए नोमतोम आलाप का अन्त किया जाता हैं।

स्वर एवं भाव सौन्दर्य

ध्रुपद गायन शैली के निर्णायक तत्त्वों में 'स्वर' का स्थान अग्रिम है स्वरों की शुद्धता की जाँच राग विस्तार या (स्वरविस्तार) के समय ही हो सकती है यही स्वर (7 शुद्ध, 5 विकृत) जब शुद्ध या कोमलावस्था को प्राप्त होते हैं या फिर अल्प या बहुधा मात्रा में प्रयुक्त होते हैं तो राग-रचना का कार्य सम्पन्न होता हैं। निश्चय ही रागों का शुद्ध रूप ध्रुपद शैली की श्रेष्ठ रचनाओं में उत्कृष्ट रूप में मिलता है। संक्षेप में ध्रुपद शैली में राग-रचनात्मक तत्त्वों (जैसे वादी, संवादी, ग्रह, अंश, न्यास, अल्पत्व, बहुत्व इत्यादि) का परिपालन कठोर तथा नियमबद्ध रीति से किया जाता है। प्रायः ध्रुपद गायन में रागों की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अतः रागों के शुद्ध रूप में अन्य रागों का मिश्रण सर्वथा वर्जित हैं। विद्वानों के कथनानुसार कंठ दबाना, नज़ाकत से स्वर लगाना, खटका, मुर्की का प्रयोग इत्यादि सभी बातें भी ध्रुपद गायन में निषिद्ध है। खुली आवाज में मुक्त कंठ में स्वर तथा शब्दों (बोलों) का शुद्ध उच्चारण इस शैली के विशेष गुण हैं। इसलिए प्राचीनों ने इसे पुरूष प्रधान गायकी कहकर सम्बोधित किया।

स्वरविस्तार तथा बंदिश गायन के पश्चात् ध्रुपद शैली के महत्त्वपूर्ण तत्त्व भावपक्ष का स्थान आता हैं। स्वरविस्तार तथा बंदिश तत्त्व की महत्ता ध्रुपद शैली के इसी पक्ष की सार्थकता पर आश्रित हैं। प्रायः संगीत कला के दो महत्त्वपूर्ण अंग भावपक्ष और कलापक्ष प्रत्येक शैली के विशेष गुण हैं। यहाँ ध्रुपद गायन में भावपक्ष की सार्थकता शैली के आलाप गायन में है। और ध्रुपद गायन में प्रयुक्त लयकारी अंग शैली के अभिन्न अंग कलापक्ष की साक्षी है। रंजक स्वर समुदायों तथा मींडयुक्त स्वरों के प्रयोग से आलाप करते समय गायक द्वारा सूक्ष्मतम् मनोभावों का स्पष्टीकरण श्रोताओं के समक्ष किया जाता है। विद्वानों के कथनानुसार शैली के भावपक्ष (आलाप) को साकार करते समय कलाकार का झुकाव स्वर-चमत्कार एवं राग-अलंकरण की ओर कभी नहीं होता।

उपज एवं लयकारी का सौंदर्यः

आलाप और बंदिश गायन के पश्चात् गायक द्वारा विविध प्रकार के रूप भेद, लय-भेद, स्वर-भेद से बोल बनाए जाते हैं। जिन्हें 'बोलबाँट-क्रिया' कहते हैं। विभिन्न लयों में सरगम, बोलबाँट, बोलतान इत्यादि करने की इस क्रिया को सांगीतिक भाषा में 'उपज' संज्ञा प्राप्त है। 'पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत' पुस्तक की लेखिका स्वतन्त्र शर्मा ने इसे 'भंजनी रूपकालप्ति' (उपज) कहकर सम्बोधित किया और कहा 'गीत के शब्दों को विविध प्रकार से सुसज्जित करना ही 'रूपकालप्ति' का सरल रूप हैं यही आज की भाषा में उपज, बोलबाँट और बोलतान इत्यादि कहलाते हैं।[5] कतिपय लोग ध्रुवपद में लयकारी के प्रयोग की पुष्टि करते हुए

कहते हैं कि जैसे वेद में पद, क्रम आदि होते हैं वैसे ही धुरवपद में 'उपजें' आदि लय प्रकार हो सकते हैं। वादक के टुकड़ों के समान गायक अपनी 'उपजें' करता है तथा गायक की उपजों के अनुसार वादक अपने 'बोल' बजाता है। जैसे यदि गायक एक चार मात्रिक टुकड़ा गाए तो वादक भी उसी के अनुरूप लय प्रकार बजाता है। इस स्थिति में ताल की अवधि जो नियत होती है वह नहीं रहती। उपज अंग में विभिन्न लयों के प्रकार तथा तिहाइयाँ आदि ली जाती हैं।

ताल का महत्त्व

ध्रुपद शैली के आधारभूत तत्त्वों स्वर, बंदिश तथा शैली की भाव प्रतिष्ठा इत्यादि इन तीनों का समुचित अस्तित्त्व तालाश्रित हैं।

पं. शारंगदेव के अनुसार जिस प्रकार देह का सौंदर्य मुख से और मुख की शोभा नासिका (नाक) से है। उसी प्रकार गीत की शोभा ताल से है। ग्रंथकार ताल विहीन संगीत को नासिका विहीन मुख की संज्ञा से परिभाषित करता है।6 ध्रुवपद गायन तथा वादन में संगत के लिए प्रयुक्त वाद्यों में तबले की अपेक्षा मृदंग या पखावज की संगति अति उत्तम मानी गई है चूंकि ध्रुपद शैली की अधिकतर रचनाएँ आज चैताल में निबद्ध पाई जाती हैं। अत: पखावज पर खुले बोंलो के प्रस्तार (विस्तार वादन) से गंभीर तथा घनी ध्वनि का संचार गायकी में अधिक निखार लाता हैं। तालों में यह मुक्त 'वादन थापिया बाज' कहलाता है। बंदिश के मध्य किए गए बोल आलाप, बोलबाँट तथा लयकारी इत्यादि सभी पक्षों में ताल की निरंकुशता सदैव बनी रहती हैं। इस प्रकार लय के अनेक रूपों सम (तालाघात के साथ संगीत क्रिया का आरंभ), अतीत (सम के उपरांत प्रारंभ होने वाली संगीत क्रिया), अनागत (सम आघात से पूर्व आरंभ होने वाली क्रिया) ग्रहों, तिहाईयाँ और बाँट इत्यादि लय-विस्तार के उपकरणों का ज्ञान ध्रुपद गायक तथा विद्यार्थी को होना अनिवार्य है।

मध्य काल में ध्रुपद शैली की रचनाएँ क्रमश: 120 तालों में बद्ध होती थी अर्थात् उस समय 120 तालें प्रचार में थी, जिनमें चैताल, आड़ा चैताल, सूलफाक, रूद्रताल, ब्रह्मताल, हंसताल, राजमार्तण्ड, चंपकताल, कमालमण्डिका, चन्द्रकला, हयलीला, सरस्वती, लक्ष्मी, गणेश, शूल, मठ, झंपा इत्यादि मुख्य थीं। अधुना प्रचलित अधिकतर ध्रुपद रचनाएँ चैताल, सूलताल में निबद्ध होती हैं। अन्यान्य तालें आज अपेक्षित होकर लुप्त हो चुकी हैं। आधी तालों का प्रयोग ध्रुपद शैली में निषिद्ध है। जिन कुछ ध्रुपदों में झंपा (झपताल) तेवरा, रूपक इत्यादि तालों का प्रयोग हैं भी तों उन्हें ध्रुपद न कहकर 'सादरा' कहा जाता है।

निष्कर्ष:

धुपद सौन्दर्य पक्ष अत्यन्त सुदृढ़ व संभावनाशील है, जिस पर सौन्दर्य जिज्ञासु व संगीत-प्रेमी मिलकर शोध की एक श्रृंखला रच सकते हैं, जिससे कई नई रोचक बातों से साहित्य व संगीत जगत परिचित हो सकेगा।

संदर्भ-सूची:

1. व्यास, भरत-ध्रुपद समीक्षा- पृ. 12
2. शर्मा, अनीता-प्राचीन सांगीतिक परम्पराएँ एवं ध्रुपद शैली-एक अध्ययन- पृ. 70
3. शर्मा, अनीता-प्राचीन सांगीतिक परम्पराएँ एवं ध्रुपद शैली-एक अध्ययन- पृ. 71
4. बसंत-संगीत विशारद- पृ. 180
5. शर्मा, स्वतन्त्र-पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत, पृ. 199
6. शर्मा अनीता- प्राचीन सांगीतिक परम्पराओं एवं ध्रुपद शैली- एक अध्ययन, संकलित पुस्तिका- संगीत रत्नाकर, शारंगदेव तालाध्याय पृ. 379 से उद्धृत

मिथिला-मैथिली के सवाल पर कर्पूरी ठाकुर

सत्यनारायण प्रसाद यादव

मिथिला भारतवर्ष के प्राचीन जनपदों में से एक तथा बिहार के उत्तर पूर्वी मैदानी इलाके तथा नेपाल के तराई क्षेत्र का संयुक्त रूप से एक विशिष्ट भू-भाग है। यह क्षेत्र अनादिकाल से ही अपने सपूतों के माध्यम से भारतीय समाज और संस्कृति को गौरवान्वित करता रहा है। राजनीति मानुषी जीवन का अभिन्न अंग है। लोग इससे कट कर खुद को बहुत लम्बे समय तक नहीं रख सकता। मिथिला की धरती जिन सपूतों के माध्यम से सामाजिक न्याय का झंडा देश-प्रदेश की राजनीति में बुलंद करते रहे हैं, उनमें कर्पूरी ठाकुर का नाम हमेशा सबसे पहले लिया जाएगा।

स्वहित से परे समाज की भलाई के लिए जीवन पर्यन्त समर्पित रहे कर्पूरी ठाकुर जी का जन्म 24 जनवरी 1924 ई. को बिहार के समस्तीपुर जिलान्तर्गत पितौझिया नामक गाँव में रामदुलारी देवी के कोख से हुआ था। यह गाँव उसी वैनी ग्राम से सटा हुआ है, जहाँ से 1908 ई. में क्रांतिकारी खुदीराम बोस को पकड़ा गया और मुजफ्फरपुर जेल में फाँसी दी गई थी। कर्पूरी ठाकुर के पिता गोकुल ठाकुर अपने जातीय पेशा हजामत के अलावा कुछ खेती-बाड़ी का कार्य भी किया करते थे। इनके परिवार के जीवनयापन का यही आधार था। कर्पूरी बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के थे। गोकुल ठाकुर खुद को अशिक्षित रह जाने की कसक के कारण बेटे की पढ़ाई को लेकर सजग थे। उस समय पिछड़ी जातियों में पढ़ाई- लिखाई करना इतना आसान कहाँ था! इक्के-दूक्के लोग ही अपनी पढ़ाई पूरा कर पाते थे। पिता इनकी प्रतिभा और पढ़ाई में रूचि से प्रसन्न होकर हमेशा इन्हें प्रोत्साहित करते रहे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा अपने गाँव में ही संपन्न हुई। प्राथमिक शिक्षा के बाद न्यू. एच. ई. स्कूल, समस्तीपुर में इनका नामांकन हुआ जो वर्तमान में तिरहुत अकादमी के नाम से जाना जाता है। यह स्कूल इनके गाँव से करीब सात किमी. की दूरी पर अवस्थित है। वे प्रतिदिन पैदल चलकर स्कूल आया-जाया करते थे। अपनी प्रतिभा और कठिन परिश्रम के बदौलत वे मैट्रिक की परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुए। गुलाम भारत के उस कालखंड में पिछड़े-दलित वर्ग के बच्चों का विद्यालय में प्रवेश पाना भी कम चुनौतीपूर्ण नहीं था, विद्यालय में टिके रहना तो और भी बड़ी बात थी। उस कठिन दौर में गाँव-देहात के किसी पिछड़ी जाति में जन्में बालक का अच्छे डिविजन में उत्तीर्ण होना वाकई एक बड़ी उपलब्धि थी। आगे की पढ़ाई के लिए वे दरभंगा में नामांकन करवाये। जब वे सी. एम. कॉलेज, दरभंगा में पढ़ रहे थे, वह समय स्वतंत्रता संघर्ष का था। धीरे-धीरे इनका मन स्वतंत्रता आंदोलन

वरीय शोध-प्रज्ञ, विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, एल.एन.एम.यू, दरभंगा

से संबंधित गतिविधियों की तरफ आकृष्ट होने लगा। छात्र जीवन से ही जहाँ-कहीं भी इन्हें अन्याय के खिलाफ बोलने का अवसर लगता ये कभी नहीं चूकते। 1942 ई. में गांधी जी के नेतृत्व में भारत छोड़ो आंदोलन का शंखनाद हुआ। युवा कर्पूरी खुद को रोक नहीं सके और पढ़ाई-लिखाई छोड़ आंदोलन में शामिल हो गए। इन्हें गिरफ्तार कर के जेल भेज दिया गया जहाँ इन्हें लगभग 26 महीनों का समय बीताना पड़ा। स्वतंत्रता आंदोलन से निकले मूल्य, समाजवादी विचारधारा, गांधी जी के जीवन आदर्श इनके राजनीति जीवन को बहुत एवं प्रभावित किया। उपलब्ध जानकारी के अनुसार आजादी आंदोलन एवं सामाजिक न्याय की संघर्षों के दौरान इन्हें करीब बीस बार जेल जाना पड़ा।

कर्पूरी ठाकुर छात्र जीवन से ही समाजवादी नेता डॉ राममनोहर लोहिया, मधु लिमये, नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण आदि हस्तियों के संपर्क में आ गये थे। इन लोगों का सानिध्य पाकर कर्पूरी जी का चेतना विस्तृत और प्रखर होने लगा था। 1971 में इनको बिहार के पहले गैर-कांग्रेसी मुख्यमंत्री बनने का गौरव प्राप्त हुआ। वैसे ये सरकार महज 163 दिन ही चल सकी। आपातकाल के बाद हुए चुनाव में देशव्यापी इंदिरा विरोधी लहर पर सवार जनता पार्टी को बिहार विधान सभा में प्रचंड बहुमत मिला। कर्पूरी ठाकुर दूसरी बार 24 जून 1977 से 21 अप्रैल 1979 तक मुख्यमंत्री बने रहे। सरकार संचालन में वे ना तो कभी कोई अवांछित हस्तक्षेप बर्दाश्त किए और ना ही अपमानों के बीच कभी विचलित हुए। उनका कहना था :-

"हक चाहिए तो लड़ना सीखो
कदम-कदम पर अड़ना सीखो
जीना है तो मरना सीखो "

कर्पूरी ठाकुर शिक्षा के महत्व को बखूबी समझते थे। वे जानते थे कि पिछड़ा, दलित, शोषित, वंचित एवं महिलाओं में शिक्षा का प्रचार-प्रसार किए बिना विकसित समाज और उन्नत राष्ट्र निर्माण का सपना कभी पूरा नहीं हो सकता है। ये वो दौर था जब वंचित समुदाय की पहली पीढ़ी शिक्षा से जुड़ने की कोशिश कर रही थी। अनन्नुत समुदाय के छात्रों की सबसे बड़ी समस्या थी -अंग्रेजी की अनिवार्यता और स्कूलों में फीस का भुगतान। इस वर्ग की पहली पीढ़ी के बच्चे अंग्रेजी भाषा को लेकर असहज रहते थे। साथ ही बहुत सारे अभिभावक फीसों का भुगतान नहीं कर पाते थे। मजबूरन बच्चे बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़ देते और जो कोई भी हिम्मत करता उसमें से अधिकांश अंग्रेजी में फेल हो जाते। फलस्वरूप उच्च शिक्षा में ज्यादा बच्चे आ ही नहीं पाते थे। उस समय मैट्रिक की परीक्षा में शामिल होना और फिर असफल हो जाना एक डिग्री के ही समान था। इस समस्या से निजात पाने हेतु कर्पूरी ठाकुर अपने कार्यकाल में अंग्रेजी की अनिवार्यता को खत्म किए और पहले आठवीं तक तथा पुन: बाद में मैट्रिक तक की शिक्षा मुफ्त कर दिए। उस दौर में विद्आउट अंग्रेजी पास करने वालों को कर्पूरी-डिविजन से पास कहकर मजाक उड़ाया जाता था मगर इस ऐतिहासिक निर्णय का परिणाम ये रहा कि बिहार में शिक्षा के क्षेत्र में कमजोर वर्ग के बच्चों की भी भागीदारी बढ़ी। कहें तो आज भी बिहार में अंग्रेजी के संबंध में शासन की शैक्षणिक नीति कर्पूरी के सोच का ही अनुशरण करती है।

कर्पूरी जी का मानना था कि भाषा बच्चों की बौद्धिक विकास में सहायक बने, अवरोध नहीं। संभवत: इनके मुख्यमंत्रीत्व काल में ही पहली बार मैथिली में पाठ्य पुस्तकें छपीं। वैसे तो मैथिली को 2003-04 ई. में भारतीय संविधान

में जगह मिला परंतु इसका बीजारोपण एवं संघर्ष की शुरुआत बहुत पहले हो चुका था। जैसे किसी भवन का निर्माण होता है और लोगों को केवल बाह्य भाग उसका रंग-टीप एवं सुन्दर नक्काशी मात्र ही दिखाई देता है लेकिन उसके आधारशीला तरफ प्राय: किसी की नजर नहीं जाती ठीक उसी तरह मैथिली भाषा को संवैधानिक दर्जा प्राप्त होने के संबंध में प्रतीत होता है। इस प्रसंग में जहाँ कहीं भी किसी तरह की संगोष्ठी होती है तो इसके पीछे के संघर्ष को तथा इस संघर्ष को अगले स्तर तक ले जाने वाले व्यक्तित्व कर्पूरी ठाकुर को भूला दिया जाता है।

कर्पूरी ठाकुर अपनी मातृभाषा मैथिली के उत्थान और विकास के लिए सदैव सक्रिय रहते थे। 1952 ई. से 1967 ई. तक विधानसभा का ऐसा कोई सत्र नहीं रहा होगा जिसमें मैथिली के प्रचार-प्रसार, विकास के लिए वे मुखर न रहे हों। वे तत्कालीन सरकार की मैथिली-मिथिला के प्रति उपेक्षा भाव को प्रश्नांकित करते रहे। कर्पूरी जी राष्ट्र की एकता और विकास के लिए जितना महत्वपूर्ण राष्ट्रभाषा हिंदी के उत्थान को मानते थे उससे अधिक प्राथमिक शिक्षा के लिए मातृभाषा को माध्यम मानते थे। मैथिली भाषा के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा तथा उच्च माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय स्तर तक मैथिली साहित्य का पठन-पाठन के लिए और सतत् प्रयत्नशील रहे। यदि 1952 ई. से 1967 ई. तक बिहार विधानसभा का रिपोर्ट पढ़ी जाय तो कर्पूरी जी का मातृभाषा के प्रति अवदान स्वत: स्पष्ट हो जाएगा। मिथिलांचल वासी होने के कारण कर्पूरी जी राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर, मैथिली भाषा के चौदहवीं शताब्दी के कविकोकिल विद्यापति और गद्यकार रामवृक्ष बेनीपुरी एवं फणीश्वरनाथ रेणु से अत्यंत प्रभावित थे। दिनकर, बेनीपुरी एवं रेणु यद्यपि मैथिली साहित्य में ज्यादा सक्रिय नहीं रहे फिर भी उनका मातृभाषा प्रेम जगजाहिर था। डॉ. सुरेश्वर झा ने इन विभूतियों के मातृभाषा प्रेम के बारे में "जननायक कर्पूरी ठाकुर : हुनक मातृभाषाक सेवा" नामक आलेख में लिखा है।

1977 ई. में जब कर्पूरी जी दूसरी बार बिहार के मुख्यमंत्री बने तब मैथिली को भारतीय संविधान के आठवीं अनुसूची में सम्मिलित करने हेतु उन्होंने भारत सरकार के तत्कालीन विधि मंत्री श्री शांति-भूषण को एक पत्र लिखा था। यह पत्र मैथिली भाषियों के चिरपरिचित मांग के संबंध में एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। साथ ही यह पत्र जननायक कर्पूरी ठाकुर के मातृभाषा प्रेम का जबरदस्त प्रदर्शन करती है। केन्द्रीय सरकार को लिखा गया उपर्युक्त वर्णित पत्र यथावत रूप में निम्न प्रकार है:-

केन्द्रीय सरकार पत्र संख्या
3/ आरि -1014/78 का -8 कैंप
दिनांक 22.12.1977

विषय:- भारतीय संविधान की 8 वीं अनुसूची में मैथिली भाषा का सम्मिलित किया जाना।

1. मैथिली बिहार राज्य की बहुत बड़ी जनसंख्या की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है और इसका अध्ययन, अध्यापन कलकत्ता विश्वविद्यालय, त्रिभुवन विश्वविद्यालय नेपाल एवं बिहार के सभी विश्वविद्यालयों में होता है। बिहार सरकार ने इसे लोक सेवा आयोग में समुचित स्थान प्रदान किया है, साथ ही लेखन, पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था के उद्देश्य से बिहार सरकार की ओर से मैथिली अकादमी में इसे सम्मानपूर्ण स्थान प्रदान किया है और कई बार इसके लेखकों को पुरस्कृत भी किया है।

2. फिर भी उन सारी सुविधाओं से वंचित है जो अन्य मान्यता प्राप्त भाषाओं को उपलब्ध है यथा प्रारंभिक शिक्षा का माध्यम, केन्द्र सरकार से प्राप्त होने वाले अनुदान, विभिन्न भाषाओं से अनुवाद की सुविधाएँ, विभिन्न क्षेत्रों में इसका प्रयोग तथा राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार-प्रसार एवं संवैधानिक मान्यता की गरिमा।
3. मैथिली भाषा की व्यापकता और लोकप्रियता को ध्यान में रखते हुए संविधान की अष्टम अनुसूची में इसे सम्मिलित करने का पर्याप्त औचित्य है। इस संबंध में निम्नलिखित बातें ज्ञातव्य हैं:-

(क) मैथिली एक जीवंत भाषा है। इसका प्रयोग मौखिक और लिखित दोनों में होता है। वर्त्तमान और भविष्य में इसके विकास की और भी संभावनाएँ हैं।

(ख) अपने विलक्षण प्रयोग, स्वतंत्र व्याकरण और लिपि एवं अन्य भाषा वैज्ञानिक दृष्टियों से मैथिली एक पृथक स्वरूप रखने वाली भाषा है। भाषा विज्ञान के सभी अंगों ध्वनि, पद, वाक्य, अर्थ आदि की दृष्टि से मैथिली एक पूर्ण विकसित भाषा है। साहित्य संपादन में यह देश की समकक्ष भाषाओं में एक है।

(ग) मैथिली भाषा का प्रयोग बिहार के अतिरिक्त उत्तर-प्रदेश, बंगाल, मध्यप्रदेश एवं गुजरात के कुछ क्षेत्रों में तथा नेपाल के अधिकांश भागों में होता है। नेपाल के करीब तीस लाख नागरिक मैथिली भाषी है। यहाँ द्वितीय भाषा के रूप में मैथिली सुप्रतिष्ठित है। मैथिली भाषा-भाषियों की संख्या अपने देश में ही दो करोड़ से अधिक है तथा नेपाल में तीस लाख है। अत: जनसंख्या की दृष्टि से मैथिली का विशिष्ट महत्त्व है। ज्ञातव्य हो कि सिंधी भाषा-भाषियों की संख्या 14 लाख मात्र है और वह संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित है।

(घ) मैथिली में सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता विद्यमान हैं। बिहार आकाशवाणी के सभी केन्द्रों से किसी-न-किसी रूप में मैथिली का कार्यक्रम प्रसारित होता है। इस भाषा के पत्र-पत्रिकाओं की संख्या पूर्व से और भी बढ़ती जा रही है। विश्वविद्यालय स्तर पर एम.ए, पी-एच. डी, डी.लिट् आदि उपाधियाँ 50 वर्षों से प्राप्त होती रही है।

अस्तु, भारत सरकार से मेरा आग्रह व निवेदन होगा कि मैथिली को संविधान की आठवीं अनुसूची में अविलंब सम्मिलित किया जाना चाहिए जिससे बिहार की इस प्रमुख एवं समर्थ भाषा को राष्ट्रीय स्तर पर पूर्ण मान्यता मिले और इसके सर्वांगीण विकास के लिए सभी राजकीय सुविधाएँ प्राप्त हो सके।

भवदीय
ह. कर्पूरी ठाकुर
मुख्यमंत्री, बिहार

मिथिला विश्वविद्यालय जो वर्तमान में ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा के नाम से जाना जाता है, उसके गठन की प्रक्रिया अत्यन्त रोचक है। 23 मार्च 1971 ई . को बिहार विधान परिषद में कर्पूरी ठाकुर के मुख्यमंत्री पद पर रहते हुए दिये गए भाषण में इस प्रसंग पर उनके विस्तृत विचार व्यक्त हुए हैं। यह भाषण बिहार विधान परिषद की पत्रिका 'परिषद साक्ष्य' के विशेषांक "जन से जननायक कर्पूरी ठाकुर" में संग्रहित है। वे कहते हैं :-

"महोदय, माननीय सदस्य लोग कहते हैं कि जब कर्पूरी ठाकुर विपक्ष में रहते हैं तब

खूब जोर-शोर से मांग रखते हैं कि मिथिला विश्वविद्यालय की स्थापना होनी चाहिए लेकिन जब सत्ता में आते हैं तब इस बात को वे भूल जाते हैं। परन्तु बात कुछ और है ... भूलने की आदत इन लोगों में है, हमें यह आदत न कभी रही है और न कभी होगी। हम इस पद से हटना पसंद करेंगे लेकिन ऐसी आदत किसी भी हाल में नहीं लगायेंगे। मिथिला विश्वविद्यालय के संबंध में हम न केवल सोचे हुए हैं बल्कि इस दिशा में उचित कदम भी उठाए हुए हैं। ईधर हमने देखा है कि पिछले कुछ वर्षों से लगातार दरभंगा में पंडित समाज ये मांग कर रहे हैं कि यहाँ संस्कृत विश्वविद्यालय जब अलग रूप में है ही तो फिर इसके साथ नव विश्वविद्यालय बनाने की क्या आवश्यकता ? इस संबंध में माननीय राज्यपाल के पास बहुतो पत्र भेजे गये, बहुत सारे तार पठाये गये। उनके शिष्टमंडल राज्यपाल एवं बिहार सरकार के शिक्षा विभाग के अधिकारी से भी मुलाकात किए। उन्हें भी पत्र एवं तार पठाये गये। अखबारों का कॉलम इस बात से रंग दिया गया कि संस्कृत विश्वविद्यालय के संग मिथिला विश्वविद्यालय की स्थापना कदापि नहीं होनी चाहिए।"

अपने बातों को मुखरता से रखते हुए वे कहते हैं,"उपाध्यक्ष महोदय, इसमें वस्तुस्थिति क्या है? 1967 के पहले इसमें बेईमानी की जा रही थी। आज जो सचिवालय है उसमें जो अभिलेख है उस संचिका में, उसमें एक चिटा भी, एक पन्ना भी इस बात को लेकर कुछ नहीं थी कि मिथिला विश्वविद्यालय की स्थापना होनी चाहिए। न तो भारत सरकार को कुछ लिखा गया और न विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को और न ही बिहार सरकार की संचिका में इसका कहीं जिक्र है। मिथिला विश्वविद्यालय के विषय में अगर सबसे पहले कोई किसी तरह की पहल किया है तो वह 1967 में गठित संविद सरकार है अर्थात हमने पहली बार इस दिशा में कदम बढ़ाया है। हमने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को केवल पत्र ही नहीं लिखा, भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा मंत्री थी त्रिगुना सेन, उनको पत्र ही नहीं लिखा बल्कि दो बार दिल्ली जाकर भेंट किया एवं इस संदर्भ में बातें भी की। वहाँ यूजीसी के अध्यक्ष श्री कोठारी से बातें हुई, इसके साथ ही हमने दरभंगा राज के संचालक से भी बात किया। मैंने श्री धीरेन्द्र मोहन मिश्र, श्री दुर्गाकान्त झा तथा श्री लक्ष्मीकान्त झा जी से बातचीत किया और वे लोग आश्वासन दिये संस्कृत विश्वविद्यालय के साथ आप मिथिला विश्वविद्यालय की स्थापना करना चाहते हैं तो कीजिए मगर शर्त यह है कि दरभंगा महाराजाधिराज का नाम जो चलते आ रहा है वो बरकरार रहनी चाहिए। हम भी इन लोगों के प्रस्ताव से सहमत हुए। इसके बाद फिर यूजीसी से बात किए। वहाँ से एक विशेष टीम जाँच के लिए दरभंगा आई थी। शिक्षा विभाग के अधिकारी भी दस टीम के साथ दरभंगा गये थे। मैंने यही प्रस्ताव उनके सामने रखा। मैंने ऐसा सुझाव क्यों रखा? कारण यह था कि भारत सरकार संस्कृत विश्वविद्यालय के साथ एक आधुनिक विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए तैयार नहीं थी। इसीलिए संस्कृत विश्वविद्यालय के साथ जोड़कर एक नया विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए मैंने सुझाव रखा। अब बात आगे बढ़ी। बिहार सरकार ने एक उपसमिति का गठन किया। उस उपसमिति ने अपना सुझाव दिया कि संस्कृत विश्वविद्यालय के साथ आधुनिक विश्वविद्यालय की स्थापना होनी चाहिए लेकिन जैसा कि उपाध्यक्ष महोदय मैंने निवेदन किया कि दरभंगा राज इसके लिए तैयार है। मैंने फिर पंडित लक्ष्मीकान्त जी से मिलकर आग्रह किया कि वे हमारे इस प्रयास में मदद करें तो उन्होंने

वही प्रस्ताव रखा कि दरभंगा महाराजाधिराज के नाम पर यदि आप आधुनिक विश्वविद्यालय की स्थापना करना चाहते है तो इसमें हमारा सहयोग प्राप्त होगा। उन्होंने कहा कि इसके लिए लाइब्रेरी दे देंगे, जो मुख्यालय का हेड ऑफिस है। मैं भी इस प्रस्ताव हूँ और मैंने उनसे आग्रह किया कि आप तुरंत इसका लिखित उत्तर देने की कृपा करें। हमने फिर उनको पत्र लिखा कि जो वार्ता आपके साथ हुई है आप उसकी संपुष्टि कर दे कि आप मुख्यालय देंगे, पुस्तकालय देंगे और साथ-ही-साथ यूरोपियन अतिथिशाला देंगे। इसलिए ये कहना कि जब हम विपक्ष में रहते हैं तो इस तरह की मांग रखते हैं और जब सरकार का सदस्य बन जाते हैं तब इस संदर्भ में कोई काम नहीं करते, ये सरासर गलत बात है। हमारा प्रयास जारी है, बिना किसी से कहे-सुने जारी है तथा आगे भी जारी रहेगा। बाद में 1972 ई. में इस विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।"

मिथिला सहित सम्पूर्ण बिहार का बहुलांश देहाती क्षेत्र है। महात्मा गांधी जी का ग्राम स्वराज का सपने को धरातल पर उतारना कर्पूरी ठाकुर के प्रमुख उद्देश्यों में से एक था। इनके शासनकाल में ही 1978 में जब ग्राम पंचायत का चुनाव कराया गया तो कितने दशकों से गाँव की चेतना पर कुंडी मारे बैठे लोगों का आसन छिन गया। वंचित वर्ग के बहुत सारे लोग पंचायत चुनाव के माध्यम से नेतृत्वकर्त्ता की भूमिका में आ गये। बिहार में आज दबे- पिछड़े लोगों को शासन सत्ता में भागीदारी मिली है उसकी भूमिका कर्पूरी ठाकुर द्वारा ही लिखी गई है। बिहार की राजनीति में कर्पूरी ठाकुर पर दल बदल करना और दबाव की राजनीति करने का खूब आरोप लगाया गया। वे सरकार बनाने हेतु नरम होकर किसी दल से गठबंधन कर लेते थे मगर यदि मनोरूप जनता के हित में कार्य नहीं होता था तो गठबंधन तोड़कर सरकार से बाहर हो जाते थे। यही वजह थी जो उनके दोस्त और दुश्मन दोनों इनके राजनीतिक फैसला के अनिश्चितता से भयभीत रहते थे।

फटा हुआ कुर्त्ता, टूटा चप्पल एवं बेतरतीब बाल, आँखों के ऊपर एक बड़े फ्रेम का चश्मा कहीं दूर से ही पहचाने जा सकते थे, कर्पूरी ठाकुर। मुख्यमंत्री पद पर रहते हुए भी इन्होंने फक्कड़ जैसा जीवन गुजारा। वास्तव में ये समाजवादी राजनीति के बहुत बड़े राजनेता थे। इनके नाम पर माल्यार्पण करने वाले इनकी सादगी और ईमानदारी से भरे पथ पर कतई चलने का साहस नहीं कर पायेंगे।

17 फरवरी 1988 ई. को अचानक हृदयाघात से गुदरी का यह लाल सदा के लिए इस लोक से विदा हो गये। सब से पहले इनके पैतृक गांव पितौझिया को सन 1988 में कर्पूरी ग्राम नाम दिया गया। इनके नाम पर बक्सर में जननायक कर्पूरी ठाकुर विधि महाविद्यालय, मधेपुरा में जननायक कर्पूरी ठाकुर मेडिकल कॉलेज और दरभंगा तथा समस्तीपुर में अस्पताल की स्थापना की गई। भारत सरकार द्वारा इनके नाम से डाक टिकट जारी किया गया। दरभंगा-अमृतसर के लिए जननायक एक्सप्रेस ट्रेन चालू किया गया। इनके नाम पर संग्रहालय और हाल्ट भी है। कई जगहों पर इनकी आदमकद मूर्तियाँ भी लगाई गई है जो आते-जाते व्यक्तियों को प्रेरित करता रहता है। इनकी सादगी हम सभी के लिए एक प्रेरणा है। देश के साथ मिथिला के शोषित-पीड़ित-वंचित-उपेक्षित एवं आमजनों के हृदय में वे सदैव विराजमान रहेंगे।

संदर्भ एवं सहायक ग्रंथ:-

1. Karpuri Thakur- Wikipedia
2. Karpuri Thakur Biography in hindi

- अमित कुमार सचिन, जून 2016
3. बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर को याद रखना क्यों जरूरी है? प्रदीप कुमार, बीबीसी, संवाददाता, 24 जनवरी 2018
4. जातियों का राजनीतिकरण - कमल नयन चौबे, वाणी प्रकाशन
5. परिषद् साक्ष्य, जन से जननायक, कर्पूरी ठाकुर विशेषांक, फरवरी- 2019 बिहार विधान परिषद् की आधिकारिक पत्रिका
6. आलेख 'मिथिलाक असली सपूत जननायक कर्पूरी ठाकुर'- नारायण झा, समय संकेत, अखिल भारतीय मिथिला संघ, नई दिल्ली
7. झोपड़ी के लाल जननायक कर्पूरी ठाकुर, प्रकाशक- देवदत्त पोद्दार, कर्पूरी ठाकुर स्मारक समिति, दरभंगा
8. जननायक कर्पूरी ठाकुर: व्यक्तित्व आ कृतित्व -डॉ. सुरेश्वर झा

संगीत में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) की उपयोगिता

सिद्धार्थ मिश्रा

शोध सारांश

वर्तमान समय में कंप्यूटर तकनीक का उपयोग बहुआयामी क्षेत्रों में देखने को मिल रहा है। विज्ञान,खोज तथा मानवीय रचनात्मक कार्य क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य विषयों में भी कंप्यूटर तकनीक का उपयोग महत्वपूर्ण एवं आवश्यक संसाधन के रूप में अपना स्थान बना चूका है। वर्तमान में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) की उपयोगिता सभी क्षेत्रों में देखने को मिल रही है। किसी भी तरह के रचनात्मक कार्यों, वैज्ञानिक-खोज, और यहाँ तक की चिकित्सा संबंधी विषयों में भी आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) की महत्वपूर्ण भूमिका आज देखने को मिलती है।

संगीत के क्षेत्र में भी आज आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) तकनीक ने अपना स्थान बना लिया है। सांगीतिक रचनाओं में धुनों का निर्माण, लय आदि का समायोजन तथा अन्य सौन्दर्यात्मक तत्वों के चयन में भी आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) की उपयोगिता सार्थक दिखलाई पड़ती है। अतः वर्तमान में कम्प्यूटर तकनीक के माये आयाम के रूप में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) के महत्व तथा इसकी बहुआयामी उपयोगिता को नवाचार के महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार करना अतिश्योक्ति नहीं होगी।

उद्देश्य : *प्रस्तुत शोध प्रपत्र में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) का संगीत के क्षेत्र में उपयोगिता तथा इसके लाभ एवं दोष आदि पर अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।*

शब्द सूचक : *आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई), ए.आई., तकनीक , मानवरहीत तकनीक, कंप्यूटर तकनीक, संगीत, रचनात्मक कार्य आदि*

विषय प्रवेश

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) जो कि वर्तमान कम्प्यूटर तकनीक के नए रूप में स्थापित हो चुका है। आज यह मानवीय शोध, परिकल्पना, शोध सम्बन्धी सही कार्यों, चिकित्सा, फिल्म जगत तथा संगीत जैसी रचनात्मक क्षेत्रों में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुका है। संगीत के क्षेत्र में इसकी उपयोगिता रचनात्मक कार्यों में बहुत ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध हो रही है। फिल्म जगत में संगीत निर्देशन तथा संगीत संयोजन के साथ साथ यह तकनीक पुराने कलाकारों (जो कि अब जीवित नहीं हैं,)को भी नए कलाकारों के साथ जोड़ने जैसे तकनीक में भी सिद्ध हुआ है। संगीत के क्षेत्र में इसकी उपयोगिता को जानने से पूर्व यहाँ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) के विषय संक्षिप्त अध्ययन करने का प्रयास किया गया है जो कि आवश्यक भी प्रतीत होता है।

सहायक आचार्य, नेहरु ग्राम भारती, मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) का अर्थ:

ए.आई का अर्थ आमतौर पर "कृत्रिम बुद्धिमत्ता" लिया जाता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता का तात्पर्य उन मशीनों में मानव बुद्धिमत्ता के अनुकरण से है, जिन्हें मानव संज्ञानात्मक कार्यों जैसे समस्या-समाधान, सीखना, योजना बनाना तथा निर्णय लेने के लिए सोचने और नकल करने के लिए प्रोग्राम किया जाता है। ए.आई में एल्गोरिदम और मॉडल का विकास शामिल है, जो कंप्यूटर और मशीनों को ऐसे कार्य करने में सक्षम बनाता है जिनके लिए सामान्य रूप से मानव बुद्धिमत्ता की आवश्यकता होती है। ये कार्य प्राकृतिक भाषा को समझने से लेकर डेटा में निहित पैटर्न को पहचानने से लेकर स्वायत्त वाहनों को नियंत्रित करने तक हो सकते हैं। एक व्यापक और अंत:विषय क्षेत्र है, जो कंप्यूटर विज्ञान, संज्ञानात्मक विज्ञान, गणित, इंजीनियरिंग और संगीत कला जैसे अन्य विषयों में भी कार्य करता है।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) की उपयोगिता:

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ए.आई का उपयोग विभिन्न उद्योगों और क्षेत्रों में कई तरह के अनुप्रयोग के रूप में देखा जाता है। किसी भी कार्य के पुनर्निमाण अथवा उसे दोहराए जाने वाले कार्यों को यह स्वचालित/स्वचालन कर सकता है, साथ ही समय की बचत, त्रुटियों में सुधार तथा ग्राहक सेवा सम्बंधित कार्यों में भी यह सक्षम है।

भविष्यसूचक विश्लेषण:

किसी भी विषय में भविष्य की सूचनाओं से सम्बंधित बड़े-बड़े डेटासेट का विश्लेषण इसके माध्यम से किया जा सकता है। वित्त सम्बंधित कार्य तथा स्वास्थ्य सेवा के कार्यों में भी इसकी उपयोगिता देखने को मिलती है।

व्यक्तिगत प्राथमिकताओं और व्यवहारों के आधार पर यह स्वयं अनुशंसाएँ और निर्देशों को अनुभव करने में सक्षम है। उदाहरणस्वरुप ई-कॉमर्स साइटों पर खरीदारी अनुशंसाएँ और स्ट्रीमिंग प्लेटफ़ॉर्म पर सामग्री अनुशंसाएँ इस उपयोगिता में शामिल हैं।

प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP):

मानव भाषा को समझने तथा उत्पन्न करने की अद्भुत अभिक्षमता इसमें है, जिससे ग्राहक सहायता, विभिन्न भाषाओँ का अनुवाद और सोशल मीडिया के विश्लेषण हेतु चैटबॉट जैसे अनुप्रयोग करने में सक्षम होते हैं।

कंप्यूटर विज़न:

ए आई वीडियो से प्राप्त दृश्य तथा इनसे सम्बंधित जानकारियों की व्याख्या और विश्लेषण बड़े आराम से कर पाता है। चेहरे की पहचान, स्वायत्त वाहनों जैसे क्षेत्रों में गुणवत्ता नियंत्रण और चिकित्सा सम्बन्धी (दावा की खोज, उपचार तथा व्यक्तिगत उपचार योजनाओं आदि) कार्यों को भी इसके द्वारा किया जा सकता है।

इन सब के अतिरिक्त वित्त, गेमिंग, रोबोटिक्स कार्य, स्मार्ट वर्क, किसी भी तरह की खोज आदि के विषय में ए आई वर्तमान और भविष्य में सफल और कारगर साबित हो सकता है। अत: ये कहा जा सकता है कि वर्तमान में ए आई विभिन्न उद्योगों तथा कार्यों में तकनीकी माध्यम से नई क्षमताएँ और दक्षताएँ प्रदान कर एक नई क्रांति ला रहा है, जिससे, उत्पादकता और उपयोगकर्ता का निर्णय लेने के अनुभव में सुविधा तथा सुधार देखा जा रहा है।

संगीत के क्षेत्र में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) में उपयोग किए जाने वाले उपकरण (टूल्स):

संगीत के क्षेत्र में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस कैसे अपने निर्देशों को क्रियान्वित करता है ? यह भी अपने आप में एक प्रश्न है, यह अपने में निहित प्रोग्रामिंग उपकरण के आधार पर अनुप्रयोग विधि से निर्देशों को संपन्न करता है, जो संगीत निर्माण, रचनाओं का विश्लेषण और इन रचनाओं में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग भी करता है। इन उपकरणों में कुछ उल्लेखनीय उदाहरण पर यहाँ चर्चा की जा रही है:

एम्पर म्यूज़िक: यह एक संगीत रचना उपकरण है जो उपयोगकर्ताओं को उनकी प्राथमिकताओं के आधार पर कस्टम संगीत ट्रैक बनाने की अनुमति देता है।

AIVA (कृत्रिम बुद्धिमत्ता वर्चुअल आर्टिस्ट) के माध्यम से एआई एक संगीतकार के रूप में शास्त्रीय संगीत की रचनाएँ बनाने में सक्षम हो सकता है।

Google का मैजेंटा प्रोजेक्ट:

मैजेंटा Google एक शोध परियोजना है, जो कि कला और सांगीतिक रचनाओं को बनाने में एआई की भूमिका को सुनिश्चित करती है, साथ ही यह संगीत रचनाओं के निर्माण और अन्य रचनात्मक अनुप्रयोगों के लिए उपकरण और मॉडल भी प्रदान करता है।

लैंडर:

यह प्लेटफ़ॉर्म संगीत ट्रैक को मास्टर ट्रेक में बदलने का कार्य करता है तथा ध्वनि के गुणवत्ता की अनुकूलिता को भी इस स्वचालित मास्टरिंग तकनीकों के माध्यम से लागू करने का कार्य करता है।

एंडेल:

यह एक एआई संचालित ऐप है जो फ़ोकस, विश्राम और नींद को बेहतर बनाने के लिए साउंडस्केप बनाता है।

ओपनएआई का ज्यूकबॉक्स:

इसे ज्यूकबॉक्स ओपनएआई भी कहते हैं, तथा इसके द्वारा विकसित एआई मॉडल विभिन्न शैलियों और विधाओं में सांगीतिक धुनें उत्पन्न कर सकता है, जिसमें गीत के साथ गाना भी शामिल हो।

सोनी की फ्लो मशीन:

फ्लो मशीन सोनी द्वारा विकसित एक परियोजना है जो विभिन्न शैलियों में संगीत बनाने में संगीतकारों की सहायता के लिए एआई का उपयोग करती है।

वेवएआई का एलिसिया:

एलिसिया एक एआई-संचालित गीत लेखन हेतु सहायक उपकरण है जो उपयोगकर्ताओं को गीत और धुन बनाने में मदद करता है।

मेलोड्राइव:

मेलोड्राइव एक एआई संगीत प्रणाली है जो गेम और वर्चुअल वातावरण के लिए गतिशील रूप से अनुकूल संगीत उत्पन्न करती है। ये उपकरण और परियोजनाएँ संगीत निर्माण के क्षेत्र में एआई के बढ़ते प्रभाव और क्षमताओं को रचनाओं के उत्पादन से लेकर विश्लेषण और व्यक्तिगत सुनने के अनुभवों तक प्रदर्शित करती हैं।

संगीत के क्षेत्र में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) की उपयोगिता:

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के संगीत के क्षेत्र में कई अनुप्रयोग हैं। संगीत में एआई के कुछ प्रमुख उपयोगों में शामिल हैं:

रचना और निर्माण:

एआई एल्गोरिदम मौजूदा संगीत रचनाओं से सीखकर स्वायत्त रूप से संगीत बना सकते हैं। ये सिस्टम संगीत में पैटर्न का विश्लेषण कर सकते हैं और विभिन्न शैलियों या शैलियों में नए टुकड़े उत्पन्न कर सकते हैं।

सांगीतिक अनुशंसा:

एआई का उपयोग व्यक्तिगत प्राथमिकताओं के आधार पर संगीत की अनुशंसाओं को सुचारू रूप से करने के लिए किया जाता है। Spotify और Apple Music जैसे प्लेटफ़ॉर्म उपयोगकर्ताओं को उनके मनपसंद गीतों को सुनने तथा बार-बार खोजे गए गानों के आधार पर पसंद आने वाले गाने और प्लेलिस्ट के माध्यम से सुझाव देता है, जो कि एआई एल्गोरिदम प्रोग्राम द्वारा क्रियान्वित होता है।

संगीत का विश्लेषण और वर्गीकरण:

एआई संगीत को उसकी विशेषताओं जैसे टेम्पो, की, इंस्ट्रूमेंटेशन और शैली के आधार पर विश्लेषण और वर्गीकृत कर सकता है। यह बड़ी संगीत लाइब्रेरी को कुशलतापूर्वक व्यवस्थित करने में मदद करता है।

प्रदर्शन और संगत:

एआई संचालित सिस्टम किसी भी निर्धारित तथा वास्तविक समय में संगीतकारों के साथ तकनिकी रूप में उपलब्ध रह सकता है। जैसे कुछ एआई सिस्टम संगीतकार के प्रदर्शन के आधार पर बैकिंग ट्रैक तैयार कर सकते हैं या वर्चुअल संगत भी प्रदान कर सकते हैं।

ध्वनि संश्लेषण और प्रभाव:

ध्वनि संश्लेषण के लिए भी एआई तकनीकों का उपयोग किया जाता है। इसमें यथार्थवादी वाद्य ध्वनियाँ बनाना और ऑडियो रिकॉर्डिंग पर प्रभाव लागू करना शामिल है।

संगीत उत्पादन में सुधार:

एआई उपकरण इक्वलाइज़ेशन, कम्प्रेशन और शोर में कमी जैसे कार्यों को स्वचालित करके मिक्सिंग और मास्टरिंग प्रक्रिया में सहायता कर सकते हैं, जिससे उच्च-गुणवत्ता वाली रिकॉर्डिंग भी बड़े आसानी से हो सकती है।

संगीतकारों के लिए रचनात्मक उपकरण:

यह संचालित उपकरण संगीतकारों को रचनात्मक सहायता प्रदान करते हैं, जैसे कि धुन या सामंजस्य उत्पन्न करना, रचनात्मक अवरोधों को दूर करने में मदद करना, इत्यादि।

संगीत विश्लेषण और अंतर्दृष्टि:

यह संगीत उपभोग पैटर्न के बड़े डेटासेट का विश्लेषण कर सकता है, जिससे संगीत के रुझान, संगीत की लोकप्रियता और सांस्कृतिक प्रभावों के बारे में जानकारी मिलती है। निष्कर्षत: एआई तकनीक से संगीत के निर्माण, वितरण और उपभोग के विभिन्न पहलुओं में एक नयापन तथा बदलाव देखने को मिल रहा है, जो कि संगीतकारों, निर्माताओं और संगीत के प्रति उत्साही लोगों के लिए चुनौतिपूर्ण नए अवसर प्रदान करती हैं।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) का भारतीय संगीत से सम्बन्ध :

एआई (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) और भारतीय संगीत के बीच बहुआयामी संबंध विकसित हो रहा है। जिसके कुछ मुख्य पहलू इस प्रकार हैं:-

विश्लेषण और वर्गीकरण:

एआई तकनीकें रागों, लय और पैटर्न के आधार पर भारतीय संगीत का विश्लेषण और वर्गीकरण कर सकती हैं। मशीन (लर्निंग एल्गोरिदम) को भारतीय शास्त्रीय संगीत की विभिन्न शैलियों को पहचानने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है, जिससे राग पहचान या शैली के आधार पर रचनाओं के वर्गीकरण जैसे कार्यों में मदद मिल सकती है।

रचना और निर्माण:

भारतीय शास्त्रीय संगीत की रचनाएँ बनाने के लिए भी एआई एक उपयोगी तकनीक है। यह तकनिकी प्रोग्राम शास्त्रीय संगीत के विशाल डेटासेट से स्वयं सीखकर, नई धुनें, रचनाएँ बनाने में सक्षम है।

सीखना और सिखाना:

एआई संचालित उपकरण भारतीय संगीत सीखने में भी सहायक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, ऐप और प्लेटफ़ॉर्म के माध्यम से भारतीय शास्त्रीय संगीत का अभ्यास करने वाले छात्रों द्वारा व्यक्तिगत प्रतिक्रिया प्रदान करने के लिए एआई का उपयोग किया जा सकता है, जिससे उन्हें अपनी तकनीक और समझ को बेहतर बनाने में मदद मिलती है।

संरक्षण और संग्रह:

एआई पारंपरिक भारतीय संगीत के संरक्षण और संग्रह में सहायता कर रहा है। रिकॉर्डिंग को डिजिटाइज़ और विश्लेषण करके, एआई पुरानी रचनाओं या रिकॉर्डिंग को पुनर्स्थापित करने में भी बहुत मददगार हो सकता है, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि सांस्कृतिक विरासत नष्ट न हो।

इंटरैक्टिव (उच्चारण) अनुभव:

यह भारतीय संगीत के साथ अधिक इंटरैक्टिव (उच्चारण, अनुवाद आदि का) अनुभव करने तथा करने में सक्षम है। इस प्लेटफार्म पर उपयोगकर्ता, वर्चुअल रियलिटी और ऑगमेंटेड रियलिटी एप्लिकेशन, एआई के साथ मिलकर, नए तरीकों से भारतीय संगीत से जुड़ सकते हैं।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) से संगीत में संभावित लाभ

संगीत में एआई के इस्तेमाल के संभावित लाभ और नुकसान दोनों हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि इसे कैसे लागू किया जाता है और कैसे समझा जाता है। इस सन्दर्भ में यहाँ कुछ विचार दिए गए हैं, जो इस प्रकार हैं:-

रचनात्मकता और नवाचार:

एआई संगीतकारों और संगीतकारों में नए विचार उत्पन्न करने और रचनाओं की खोज करने में सहायता कर सकता है। यह एल्गोरिदम पैटर्न की पहचान करने, रचनाओं में सामंजस्यता बनाने के लिए विशाल मात्रा में संगीत डेटा का भी विश्लेषण स्वयं ही कर सकते हैं।

उत्पादन में दक्षता:

एआई उपकरण से रचनाओं में मिक्सिंग, मास्टरिंग और यहाँ तक कि बैकिंग ट्रैक तथा संगत जैसे व्यवस्थाएं बनाने में सहायक हैं, साथ ही सांगीतिक रचना सम्बन्धी कार्यों को स्वचालित करके संगीत उत्पादन प्रक्रिया को सुव्यवस्थित भी किया जा सकता है। यह उपकरण संगीत जगत में विशेषज्ञ तथा विभिन्न स्तरों वाले लोगों के लिए संगीत निर्माण को अधिक सुलभ बनाने में सहायक है,

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) में चुनौतियाँ:

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) संगीत के कलात्मक अखंडता के लिए चिंताजनक हो सकता है, क्योंकि मनुष्यों द्वारा बनाए गए संगीत में भाव पक्ष को एआई द्वारा उत्पन्न संगीत में दर्शाना कम संभव प्रतीत हो सकता है, जिसका मुख्य कारण मशीनी रचनाओं में भावनात्मक गहराई और मानव संगीतकारों के व्यक्तिगत स्पर्श का अभाव माना जाता है।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) पर निर्भरता रचनाओं पर प्रभाव:

एआई उपकरणों पर अत्यधिक निर्भरता संगीतकारों को अपनी रचनात्मकता और संगीत कौशल को स्वाभाविक रूप से विकसित करने से रोक सकती है। यह इस तकनीकी प्लेटफार्म का सबसे अधिक दोष हो सकता है।

रचनाओं में गुणवत्ता और पूर्वाग्रह:

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) द्वारा निर्मित संगीत की गुणवत्ता में व्यापक रूप से भिन्नता होती है, परंपरागत प्रशिक्षण तथा डेटा संग्रह में पूर्वाग्रह भी एक चिंताजनक विचार है।

निष्कर्ष

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) में संगीत निर्माण हेतु उपयोगी होने की क्षमता है, यह संगीत रचनाओं में दक्ष, नवाचार और रचनाओं को एक पहुँच प्रदान करने में भी सहायक है। हालाँकि, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) संगीत की रचनात्मकता, प्रामाणिकता, और समग्र रूप से संगीत पर प्रभाव से संबंधित चिंताओं को दूर करने के लिए सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है, फिर भी मुख्य बात यह है कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) को मानवीय रचनात्मकता और संगीत अभिव्यक्ति को बढ़ाने के लिए एक उपकरण के रूप में ही उपयोग किया जाए, न कि इसे पूरी तरह से प्रतिस्थापित किया जाए।

सन्दर्भ

1 https://chat.openai.com/
2 https://time.com/6340294/ai-transform-music-2023/
3 https://www.billboard.com/lists/ways-ai-has-changed-music-industry-artificial-intelligence/

कमलेश्वर के उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी संवेदना

सुधा कुमारी चन्द्रा*, डॉ. शाहिद हुसैन**

सारांश

स्वातंत्रयोत्तर कालीन उपन्यासकारों में कमलेश्वर जी अपनी स्वतंत्र और विशिष्ट पहचान रखते है। उन्होंने एक साहित्यकार के रूप में आशातीत सफलता प्राप्त की है। कमलेश्वर जी उपन्यास के साथ-साथ कहानी लेखन में भी प्रसिद्ध हुये है। उनकी लेखनी से जीवन के वास्तविक रूपों का वर्णन हुआ है। साहित्य में उन्होंने ऐसे वर्गो के यर्थाथ का अंकन किया, जो जनसामान्य और मध्यमवर्ग के साथ-साथ स्त्री वर्ग के जीवन और उसके संवेदनाओं को प्रदर्शित करते हैं। इनके उपन्यासों में युगसत्य और युगबोध की अभिव्यक्ति दिखलाई पड़ती है। मध्यमवर्गीय समाज में नारी के संवेदनाओं का मर्मस्पर्शी अंकन इनके उपन्यासो में समाहित हैं। समाज में स्त्री के अस्मिता और उनकी भूमिका का महत्वपूर्ण स्थान है। कमलेश्वर सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक आर्थिक या सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में स्त्री वर्ग की अवसर की समानता का वकालत करते है। इनके उपन्यास में कल्पना नहीं वरन यर्थाथ को लक्ष्य किया गया है। इन्होंने अपने उपन्यासों में जनसामान्य को संदेश दिया है कि हमें खुले दिलो-दिमाग से इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिए कि स्त्री पुरुष एक दूसरे के पूरक है। एक के अभाव में दूसरे के अस्तित्व की कल्पना संभव नहीं है। इसके लिए सही सोच, सही दृष्टि होना अति महत्वपूर्ण है नारी संवेदना का सम्मान होना सभ्य समाज का आदर्श है।

बीज बिंदुः- *कमलेश्वर के उपन्यास, स्त्री संवेदना।*

उपन्यास व्युत्पत्ति एवं अर्थ

हिन्दी साहित्य में उपन्यास विधा की उत्पत्ति पाश्चात्य उपन्यासों के परिणामस्वरुप हुई है। बांग्ला उपन्यासों पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव पड़ा और बांग्ला उपन्यासों के पश्चात हिन्दी उपन्यासों का भी उद्‌भव हुआ। 'उपन्यास' गद्य साहित्य के लिए नवीन देन है। उपन्यास मूलत: संस्कृत का शब्द है। इस शब्द की उत्पत्ति हुई है उप $ न्यास के योग से। उप का अर्थ है पास और न्यास का अर्थ है रखना अत: इस प्रकार उपन्यास का अर्थ है, निकट में रखना समीप रखना। उपन्यास विस्तृत पृष्ठभूमि है जिसमें अनेक व्यक्ति और उनके व्यक्तित्व के गरिमा का, जीवन के सम्पूर्ण पक्षों का वर्णन समाहित हो जाये, वह पात्र के चरित्र के अतीव निकट होता है, संभव है उपन्यासों में प्रसन्नता देने की शक्ति तथा युक्तियुक्त रूप में अर्थ को उपस्थित करने की प्रकृति के कारण इस तरह

*शोधार्थी:पी.एच.डी. हिन्दी, डॉ. सी. व्ही. रमन विश्वविद्यालय, करगी रोड कोटा बिलासपुर (छ.ग.), पता - विवेकानन्द नगर, फेस-1, गणपति होम्स, मोपका, बिलासपुर (छ.ग.) पिन-495006

**शोध निर्देशक, सहायक प्राध्यापक, डॉ. सी. व्ही. रमन विश्वविद्यालय, करगी रोड कोटा बिलासपुर (छ.ग.), मोबाईल नं. 7879663022

की कथानक रचनाओं का नाम उपन्यास पड़ा हो, किन्तु वास्तव में नाटक साहित्य के उपन्यास शब्द और आजकल के उपन्यास में नाम का ही साम्य है। उपन्यास का शब्दार्थ है - सामने रखना।''1

उपन्यास की परिभाषाएँ:- उपन्यास साहित्य युगीन प्रवृत्तियों के साथ परिवर्तनशील है किसी भी साहित्य के अंग को परिभाषित करना जटिल कार्य है। अनेक विद्वानो ने उपन्यास को अपने मतानुसार परिभाषित किया है। उपन्यास के सम्राट ''प्रेमचंद'' के शब्दों में - मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।''[2]

उपन्यास साहित्य के सम्बन्ध में बाबू गुलाब राय कहते है - उपन्यास कार्यकरण श्रृंखला में बंधा वह गद्य कथानक है, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक अथक काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्‌घाटन किया जाता है।''[3]

कमलेश्वर द्वारा रचित उपन्यास साहित्य- आजादी के बाद हिन्दी साहित्य में जितने रचनाकार आये उनमे कमलेश्वर जी प्रमुख है, अपनी प्रतिभा के बल पर इन्होने अनेक सफलताएँ प्राप्त की। कमलेश्वर जी के प्रसिद्धि में इनके उपन्यासों का स्थान सर्वप्रमुख है। इन उपन्यासों में प्रमुख है:-

1. एक सड़क सत्तावन गलियाँ।
2. डाक बंगला।
3. लौटे हुए मुसाफिर।
4. तीसरा आदमी।
5. समुद्र में खोया आदमी।
6. काली आंधी
7. आगामी अतीत
8. वही बात
9. सुबह, दोपहर, शाम
10. रेगिस्तान

निम्न उपन्यासों में चित्रित नारी संवेदना-

1) एक सड़क सत्तावन गलियां :- कमलेश्वर जी के एक सड़क सत्तावन गलिया उपन्यास द्वारा मैनपुरी कस्बे के निवासियों के आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का यर्थाथ अंकन हुआ है। सरनाम, बंसिरी, शिवराज, रंगीले इस उपन्यास के मुख्य पात्र है। इस उपन्यास में बंसिरी का जीवन बहुत जटिल होता हुआ चित्रित किया गया है। बंसिरी सोचती है। कि वह भी किसी की पत्नी बनकर जीती परन्तु सरनाम ने उसके संवेदनाओं को नही समझा उसने बंसिरी को रखैल बनने पर विवश कर दिया। सरनाम बंसिरी को सही औरत नही समझता था। इस उपन्यास में बंसिरी सरनाम से आहत है। वह कहती है- ष्सचमुच सब तेरे कारन हुआ... तू सरनाम तू सरनाम... सरदार... सरताज किसने रखा था नाम तेरा ? पर केवल एक क्षण..... तेरा यह ताज जिस दिन गिरेगा, उसी दिन को देखने के लिए जिन्दा हूँ। औरत कहता है न मुझे। तेरे कारण औरत हुई... नहीं तो किसी की घरवाली होकर चैन से मर जाती। तूने अपनी समझ से घरवाली बनाया है, पर तेरे लिए औरत रहूंगी औरत।''[4]

इस उपन्यास में स्त्री के कोमल संवेदना का चित्रण किया गया है, जिसमें बंसिरी का जीवन समाहित है।

2) डाक बंगला:- यह उपन्यास नायिका इरा के समस्त समस्याओं का लेखा जोखा है। बचपन में ही माँ के गुजर जाने से इरा का बचपन ममता के लिए तरसता है। उसकी परवरिश पिता और नानी के द्वारा किया जाता है। राजकुमारों

की कहानी सुनते इरा बड़ी होती है। और वह अपने ही महाविद्यालय के एक छात्र से प्रेम कर बैठती है जीवन के वास्तविक संघर्षो से अनजान इरा विमल से प्रेम विवाह कर लेती है। परन्तु विमल इरा का साथ नहीं देता वह अपने आर्थिक संकटों में घिरकर इरा को अकेले छोड़कर भाग जाता है। इस तरह इरा का जीवन अन्य पुरुषों के लिए वासना तृप्ति का साधन बन जाता है। कमलेश्वर जी ने इस उपन्यास में प्रेम समस्या और आर्थिक समस्या को बतलाया है। इरा पढ़ी-लिखी थी वह स्वछन्द और उन्मुक्त मनोभावों की थी। इस उपन्यास में इरा के जीवन के आक्रन्दन की अभिव्यंजना हुई है।

3) लौटे हुये मुसाफिर :- मूलरूप से कहें तो यह उपन्यास देश विभाजन को लेकर लिखा गया है। इस उपन्यास में अंग्रेजों से टक्कर लेने वाली चिकवों की बस्ती को केन्द्र में रखा गया है। इसके साथ-साथ सलमा और सत्तार की असफल प्रेम की कहानी भी है। श्नसीबनश् पात्र भी सर्वप्रमुख है जो बस्ती में बच जाती है। वह प्रेम करुणा और सौहार्द से परिपूर्ण है। जब बच्चे युवा बनकर दोबारा बस्ती में आये नसीबन रो पड़ी उसने सभी का हरसंभव मदद किया। नसीबन का चरित्र स्नेहमयी और प्रेम से परिपूर्ण, नारी के रूप में दूसरो के सुख-दूख में भरसक मदद करती है जो सच में भारतीय परम्परा का द्योतक है। वह हिन्दु मुस्लिम के अंतर से पूर्णतरू बाहर थी उसके लिए मानव धर्म सर्व प्रमुख है। नसीबन कहती है- ष्दिमाग खराब हो गया है इन लोगो का। अरे पूछो कोई क्या बदलेगा। अपना नसीब जो है वही रहेगा।''[5]

4) तीसरा आदमी :- यह उपन्यास पति-पत्नी के कोमल सम्बन्ध पर आधारित है। जो तीसरे आदमी के छाया मात्र से आहत हो जता है। इस उपन्यास में चित्रा सुंदर, सुशील, सुशिक्षित है परन्तु नरेश का शंकालु व्यक्तित्व चित्रा के खुशियों का अंत कर देता है। वह अपने बच्चों को लेकर अकेले जीने के लिए मजबूर हो जाती है। 'तीसरा आदमीश् उपन्यास महानगरीय परिवेश का सटीक उल्लेख है साथ ही स्त्री के लिए समाज में हो रहा दोहरापन का चित्रांकन है। ष्इन समस्त प्रसंगों और चरित्रों के अंकन में तटस्थ लगने वाले कमलेश्वर प्रच्छन्नता के साथ मध्यवर्गीय नैतिक-संस्कारों पर प्रहार करते है। इन संस्कारो में प्रगति की और ऊपर उठकर पाने की क्षमता नही है। मर्यादाओं को लांघकर परे पहुंचने की शक्ति से ये हीन है। स्त्री देह की पवित्रता का बड़ा महत्व है। इन संस्कारो की नैतिकता में। पुरुष प्रधान समाज में होने वाली पुरुषों की तानाशाही हमारी चेतना पर हावी है, मज्जागत प्रभाव है इसका, धमनियों में यही दौड़ती है। क्षणिक मोह का खासकर अगर वह स्त्री को मोहित करता है - भुलावा हमारे लिए आज भी अक्षम्य है।''[6]

5) काली आँधी :- काली आँधी में आजादी पश्चात भारतीय नारी का राजनीति में आना, नैतिक मूल्यों के पतन और वर्तमान में भ्रष्ट राजनीतिक पहलूओ को स्पष्ट किया गया है। इस उपन्यास में मालती नायिका है। राजनीतिक पृष्ठभूमि पर सफल भूमिका निभाती मालती अपने परिवार से पूर्णत: कट जाती है। यश और प्रतिष्ठा की चाह में वह पारिवारिक स्नेह को भूल जाती है। परन्तु उपन्यास के उत्तरार्ध में कमलेश्वर जी ने मालती के वत्सलता को तड़पते दिखाया है। जब मालती की बेटी लिली हस्ताक्षर करवाने आती है तो मालती अपने आपको रोक नहीं पाती और लिली को अपने बाहों में भरकर रोती है, उसे प्यार करती है। वह कहती है- बेटे ''मै.....मैं..... तुम्हारी माँ हूँ। तुम मेरी बेटी हो मेरी।''7 स्त्री का जीवन सरल नहीं है। यदि वह समाज में योगदान देना

चाहें तो उसे इतना सक्षम बनना पड़ेगा जिससे वह अपने और अपने परिवार के साथ-साथ अपने कार्यस्थल पर बराबर ध्यान दे पाये।

6) आगामी अतीत :- आगामी अतीत उपन्यास कमलेश्वर के उपन्यासों में अत्यन्त चर्चित रहा है इस उपन्यास में नायिका चाँदनी ऐसी स्त्री पात्र है जिसने वर्तमान की जटिल और विषम परिस्थितियों में आर्थिक सम्पन्नता के कड़ुवे सच को प्रदर्शित किया है। कमल बोस इस उपन्यास का नायक है। वह चन्दा से प्रेम करता है परन्तु पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक है। कमलबोस का चरित्र अवसरवादी है वह चन्दा को अकेले छोड़ कर अपने सुख-सुविधा प्रतिष्ठा की चाह में दूसरी लड़की से शादी कर लेता है। परन्तु चंदा का जीवन बिखर जाता है। उसे अपने पूरे जीवन में दर-दर भटकाव मिलता है। चाँदनी, चंदा की बेटी है। अपने जीवन निर्वाह के लिए चांदनी को देह व्यापार तक करना पड़ता है। उपन्यास में नायक को जब अनुभव होता है कि उसने सच्चाई का साथ छोड़ दिया तो वह चंदा को खोजने निकलता है परन्तु चंदा नहीं मिलती। इस उपन्यास में स्त्री के सभी संवेदनाओं का चित्रण है। चंदा का भोलापन, स्नेह, वात्सल्य की करुण व्यथा इस उपन्यास- में अंकित है। समाज में फैले वेश्या जीवन के मार्मिक क्रंदन चाँदनी के माध्यम से अभिव्यक्त है।

7) वही बात :- इस उपन्यास में, समीरा नायिका है उसके एकाकीपन को दर्शाता यह उपन्यास महत्वकांक्षा और लालसा से दूर रहने का संदेश देता है। समीरा का पति प्रशान्त चीफ इंजिनियर है वह पदोन्नति की चाहत में समीरा को जरा भी समय नहीं दे पाता। समीरा अपने घर में अकेले ही रहती है, उसकी मनोभाव को समझने वाला कोई नहीं था। इस तरह वह नकुल को अपना साथी बनाना चाहती है। परन्तु पुरूष के बेलगाम सफलता के चाह से समीरा का एकाकीपन खत्म नही होता।

निष्कर्ष :- कमलेश्वर जी ने सदैव ही अपने युग के समस्याओं को लेकर लेखन कार्य किया है। स्त्री के संवेदनाओं को समझकर उसे समाज में अस्तित्व निर्माण के लिए प्रेरित करना इनके उपन्यासों का उद्देश्य रहा है। इन सभी से पाठको का दृष्टिकोण अवश्य ही स्त्री संवेदना को समझेंगी। पात्रों के चयन, कथन, विषय-वस्तु में बेजोड़ प्रसंगों का प्रतीकात्मक बनाना इनके उपन्यासों की विशेषताएँ हैं। सामान्य जन जीवन में स्त्री अस्तित्व को महत्व देकर सम्मानजनक स्थिति प्रदान करने का लक्ष्य इनके उपन्यास में दिखलाई देता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

(1) डॉ. गुलाबराय, काव्य के रूप पृ. 165
(2) प्रेमचंद साहित्य का उद्देश्य पृ. 54
(3) बाबू गुलाब राय काव्य के रूप पृ. 167
(4) कमलेश्वर एक सड़क सत्तावन गलियाँ पृ. 25-26
(5) कमलेश्वर, लौटे हुये मुसाफिर पृ. 120
(6) मधुमती जून 85 पृ. 39
(7) कमलेश्वर काली आँधी पृ.. 66-67

लोकगीतों की परम्परा एवं लोकजीवन में इनका महत्व

कंचन कुमारी*, डॉ पूनम कुमारी अग्रवाल**

शोध सार

लोकगीतों के स्वरूप को समझने के लिए जन साधारण की सांस्कृतिक उपलिब्ध का ज्ञान भी आवश्यक है। प्राय: देखा जाता है कि एक ही देश या काल में दो सामाजिक इकाइयों के सांस्कृतिक धरातल में काफी फर्क होता है। दोनों वर्गों के सदस्य लोकगीत ही गाते हैं फिर भी उन गीतों के साहित्यिक मान में अत्यधिक अंतर स्पष्टतया देखा जा सकता है।

विद्यापति की इस परंपरा का अनुकरण भी मिथिला में पर्याप्त रूप से हुआ। यह स्वाभाविक है कि आत्मनिवेदन अथवा भावोच्छवास की अभिव्यक्ति मातृभाषा में अधिक सरलता से होती है। अन्य भाषाओं में की गयी इस प्रकार की चेष्टाएँ राजकीय प्रशस्तियों की भांति कभी-कभी औपचारिक हो जाती है। संस्कृत के प्रकांड पंडितों ने भी लोकभाषा में नचारी, महेशवाणी, लगनी, चौमासा, बारहमासा, मलार, तिरहुति आदि लोकगीतों की रचना की।

शब्द कुंजी *–लोकगीत, सांस्कृतिक, नचारी, मलार, लगनी*

लोक साहित्य लोक जीवन की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। अत: यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि जन जीवन के मौलिक अभिव्यक्ति के साथ ही साथ किसी न किसी रूप में इसका प्रारंभ हो गया होगा। इसकी प्राचीनता स्वयंसिद्ध है। किसी भाषा के लोक साहित्य के सांस्कृतिक मूल्यांकन के संबंध में विचार भिन्नता की गुंजाइश रहती है और यह संभावना सब दिन बनी रहेगी। किन्तु उसकी प्राचीनता विवादों के घेरे से परे है। मैथिली लोक काव्य में विद्यापति लोक कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनके अधिकांश गीत ऐतिहासिक परंपरा और लोक व्यवहार के कारण शुद्ध लोकगीत की श्रेणी में आते हैं। इस संबंध में फैली हुई भ्रांतियों के निराकरण की आवश्यकता है।वौटकिन्स के शब्दों में "लोकगीत वैयक्तिक रचना है या सामुदायिक अथवा इसमें साहित्यिक विशेषताएं हैं या नहीं और यदि है तो किस मात्रा तक है आदि बातों पर एक लम्बे अर्से से वाद-विवाद चल रहा है। इन सभी विवादों का महत्वपूर्ण निष्कर्ष यही निकलता है कि लोकगीतों के निर्माण,गायन या उसके स्थान परिवर्तन में व्यक्ति तथा समुदाय के बीच निरंतर पारस्परिक सहयोग चलता रहता है। कोई रचना यथार्थ में लोकगीत है अथवा नहीं इसके निर्णय के लिए उसके उद्गम स्थल को नहीं अपितु उसके इतिहास और उसके व्यवहार को देखना चाहिए।" लोकगीतों के स्वरूप को समझने के लिए जन साधारण की सांस्कृतिक उपलिब्ध का ज्ञान भी आवश्यक है। प्राय: देखा जाता है कि एक ही देश या काल में दो सामाजिक इकाइयों

*शोध छात्रा, जे. एम . डी .पी . एल. महिला कॉलेज, दरभंगा

**शोध निर्देशक, जे. एम . डी .पी . एल. महिला कॉलेज, दरभंगा

के सांस्कृतिक धरातल में काफी फर्क होता है। दोनों वर्गों के सदस्य लोकगीत ही गाते हैं फिर भी उन गीतों के साहित्यिक मान में अत्यधिक अंतर स्पष्टतया देखा जा सकता है।

विद्यापति की इस परंपरा का अनुकरण भी मिथिला में पर्याप्त रूप से हुआ। यह स्वाभाविक है कि आत्मनिवेदन अथवा भावोच्छवास की अभिव्यक्ति मातृभाषा में अधिक सरलता से होती है। अन्य भाषाओं में की गयी इस प्रकार की चेष्टाएँ राजकीय प्रशस्तियों की भांति कभी-कभी औपचारिक हो जाती है। संस्कृत के प्रकांड पंडितों ने भी लोकभाषा में नचारी, महेशवाणी, लगनी, चौमासा, बारहमासा, मलार, तिरहुति आदि लोकगीतों की रचना की। विद्यापति के समय में काव्य और लोकगीतों की अनेक रचनाएँ हुई। विद्यापति के समकालीन कवियों में अभियकर, जीवनाथ, भीषम, धीरेश्वर, कंसनारायण तथा श्रीधर के नाम उल्लेखनीय है। इन लोगों ने काव्य रचना के साथ लोकगीतों की भी रचना की।

लोकगीत का स्वरूप : परिभाषाएँ :

श्रीमती महादेवी वर्मा के अनुसार सुख दुख की भावावेशमयी अवस्था का विशेषकर गिने चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। महादेवी जी ने उपर्युक्त पंक्तियों में गीत की बड़ी ही सटीक परिभाषा दी है किन्तु यह परिभाषा संभवत: कवियों और प्रबुद्ध व्यक्तियों द्वारा निर्मित गीत पर ही अधि क सटीक बैठती है, क्योंकि वे ही स्वर साधना के अनुरूप गिने-चुने शब्दों का प्रयोग कर सटीक चित्रण की दिशा में सायास प्रवृत्ति हो सकते हैं। साधारण तुकबंदी करने वालों द्वारा रचित गीतों का सजना संवरना संभव नहीं है। लोकगीतों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव विकास की कहानी। आदि काल से प्राकृतिक शक्तियों पर विजय पाने के उद्देश्य से मानव ने पारस्परिक सहयोग को आर्थिक प्रश्रय दिया था। मानव की सहयोग की भावना ने प्राकृतिक विपदाओ पर विजय पायी। तब से मानव हृदय ने पारस्परिक स्नेह, सौहार्द्र और सहयोग का मूल्य जाना और ये ही भावनाएँ लोकगीत की उन्मुक्त अभिव्यक्ति के अनिवार्य उपादान बन गए।विभिन्न ऋतुओं एवं पदों पर गाए जाने वाले लोकगीत मानव के सामूहिक श्रम, उल्लास एवं संघर्ष की कथाएँ हैं।' लोक साहित्य के पाश्चात्य एवं भारतीय चिन्तकों ने लोकगीत की परिभाषाएं विभिन्न प्रकार से दी है

This primitive spontaneous music has been called folksongs.

- Precy. 2

A folk song is neither new or old, it is like a forest tree with its Roots deeply buried in the past, but which continually puts forth new branches; new leaves, new fruits.

- Ralph, V. Williams

भारतीय विचारकों की परिभाषाएँ -

"लोकगीत उन लोगों के जीवन का स्वतोदगीर्ण प्रवाह है जो आदिम अवस्था में जीवन व्यतीत करते हैं।" - के. बी. दास

"मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की, उसके रूदन की, उसके समस्त सुख-दुख की कहानी इनमें चित्रित होती है।"

सूर्य किरण पारीक व नरोत्तम स्वामी

"लोकगीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है, जो विश्व मानव भूमि पर प्राप्त हुई है।"

- डा. सत्येन्द्र

लोकगीतों के लक्षण एवं विशेषताएँ :

विभिन्न लोकसाहित्यकारों ने परिभाषाओं के आधार पर लोकगीतों के लक्षण और विशेषताओं

का उल्लेख किया है। फ्रेंच विद्वान मोशिए आपरे ने सन् 1853-54 में लोकगीत संग्राहकों के समक्ष विचार व्यक्त करते हुए लोकगीतों के निम्नांकित प्रमुख लक्षणों का उल्लेख किया था

1. अंत्यानुप्रास के स्थान पर ध्वनि साम्य का प्रयोग
2. पुनरुक्ति।
3. तीन, पांच सात आदि संख्याओं का बार-बार प्रयोग।
4. दैनिक व्यवहार की वस्तुओं को सोने रूपों की कहानी।

भारत सहित अन्य देशों में उत्सव एवं त्योहारों के अवसर पर अपनी संस्कृति के अनुसार विभिन्न भाषाएँ, धुन व उच्चारण में लोकगीत गाए जाते हैं जिसमें लोक प्रवृत्ति का स्वाभाविक चित्र रहता है। कुछ विद्वानों के अनुसार किसी न किसी रूप में संसार के सभी लोकगीतों में धुन, हर्ष - विषाद,उल्लास, नैराश्य आदि के भावों में साम्य पायी जाती है। डा. कुलदीप के अनुसार एक पाश्चात्य लेखक का कहना है कि फ्रांस के गीत सुन्दर या नाटकीय होते हैं। जर्मनी के गीत बोझिल एवं हृदयस्पर्शी होते हैं। सामान्य यूरोपीय गीत गेय, गुनगुनाने योग्य, पुष्ट एवं असम्बद्ध, रूसी गीत उदास और अनगढ़, स्पेनी मंद और स्वप्निल तथा हिन्दुगी आध्यात्मिक और प्रभावशाली होते हैं। अमरीकी नीग्रो गीत अत्यंत धार्मिक होते हैं। डा. कुलदीप ने लोकगीतों की निम्न विशेषताओं का उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है– अकृत्रिमता, सामूहिक भावभूमि, परम्परात्मकता, रुढ़िवादिता, संगीतात्मकता' लोकगीतों के लक्षण तथा उपलक्षण पर विचार करते हुए डा. तेज नारायण लाल ने इस प्रकार लिखा है

लक्षण :

1. लोकगीत का कोई विशेष गीतकार नहीं होता। वह सामूहिक रचना होती है। जब तक कोई रचना लिपिबद्ध नहीं होती तब तक लेखक का महत्व नहीं होता और वह रचना परिवर्तित होती रहती है।

2. लोकगीत का कोई परिणत स्वरूप नहीं होता। कविता की भांति वह ज्यों का त्यों भी उसमें जुड़ जाते हैं।

3. लोकगीतों का मौलिक प्रचार ही अधिकतर होता है। संभवत: वेद को लिखकर पढ़ते तो स्वर भंग हो जाता और अर्थ भंग भी। इसी से उसे ' श्रुति' कहते हैं। वेदों और लोकगीतों में यह बड़ी मान्यता है। वेद भी लिखित नहीं आया और न लोकगीत।

4. लोकगीतों की शैली सहज होती है। सभी लोकगीत गाने योग्य रहते हैं ।

उपलक्षण :

(1) आशुरचना (2) पुनरावृत्ति (3) परिचित वस्तुओं का प्रयोग । '

लोकगीतों के प्रकृत स्वरूप एवं सामान्य लक्षणों पर विचार करते हुए डा. चिन्तामणि उपाध्याय ने निम्नांकित विशषताएं गिनाई हैं-

(1) निरर्थक शब्दों का प्रयोग (2) पुनरावृत्तियाँ (3) प्रश्नोत्तर प्रणाली (4) टेक

विद्या चौहान ने लोकगीतों की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है

(1) वैयक्तिकता का अभाव (2) मौखिक परम्परा (3) भावों की लयात्मक अभिव्यक्ति (4) पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति (5) निरर्थक शब्द योजना (6) प्रश्नोत्तर प्रणाली (7) संख्याओं का प्रयोग (8) वस्तु नाम गणना (9) अलंकारिता और स्वाभाविकता।

(2) लोकगीतों की परिभाषा एवं विशेषता संबंधी उपर्युक्त विभिन्न मतों के अवलोकन के उपरान्त निम्न सामान्य लक्षण एवं विशेषताएँ उपलब्ध होती है जिनके आधार

पर लोकगीतों के सहज स्वरूप को समझा जा सकता है।

1. लोकगीत संगीतात्मक रचनाएँ होती है।
2. लोकगीतों में लोक मानस की सहज एवं अकृत्रिम अभिव्यक्ति रहती है।
3. लोकगीत मौखिक परंपरा से अविरत रहते हैं।
4. लोकगीत के रचयिता प्राय: अज्ञात होते हैं।
5. लोकगीतों में प्राय: लय का प्राधान्य रहता है।
6. लोकगीतों में प्राचीन मानव सभ्यता एवं संस्कृति के चित्र अंकित रहते हैं।

लोकगीत 'लोक' तथा 'गीत' शब्दों के संयोग से बना है जिसका अर्थ है लोक गीत। लोक शब्द वास्तव में अंग्रेजी के फाक का पर्याय है जो नगर तथा ग्राम की समस्त साधारण जनता का द्योतक है।' इसी प्रकार गीत शब्द का अर्थ उस कृति से है जो गेय है। लोकगीतों में लोक मानस की अभिव्यक्ति का होना अनिवार्य है और यह इनकी प्रामाणिकता का एक विशेष गुण भी है। यही कारण है कि गीत का व्यक्तित्व समस्त लोक का व्यक्तित्व बन जाता है। लोकगीतों में अभिव्यक्त भाव शास्त्रीयता अथवा पांडित्य की चेतना से मुक्त साधारण कोटि के होते हैं।

लोकगीत मौखिक परंपरा में जीवित रहते हैं। लोक साहित्य के अन्य अंगों की भांति इनका संवहन मौखिकता से ही होता है। गीतों के मूल स्रोतों की गेयता प्राय: अस्पष्ट रहती है और रचयिता के चिह्न मात्र तक नहीं मिलते। इसका कारण है कि हम उन्हें खोज निकालने में असमर्थ हैं। लोकगीत को प्राय: लय प्रधान गीत कहकर एक सीमित परिभाषा में बाँधने का प्रयत्न भी किया गया हो, जो वास्तव में भ्रामक है। यह सत्य है कि लोकगीत में लय की प्रधानता होती है, परंतु लय प्रधानता ही लोकगीत की परिभाषा नहीं हो सकती। लोकगीतों में मानव सभ्यता एंव संस्कृति के चित्र, इतिहास से भी अधिक सूक्ष्म रूप में अंकित रहते हैं। किसी जाति के विश्वास, धार्मिक विचार, साधारण प्रथाएँ एवं विचार स्रोतों का संगम स्थल लोकगीत होते हैं। संस्कार, रीति-रिवाज, परम्पराएँ एवं प्रथाएँ आदि जिनका प्रचलन अब समाप्त हो चुका है, लोकगीतों में सुरक्षित रहती है।

लोकगीतों का महत्व : लोकगीतों की परम्परा हजारों वर्षों से चली आ रही है और आज भी वह जन-जन के कंठ में विद्यमान है।लोकगीतों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लाला लाजपत राय ने कहा था - "देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।"लोकगीतों के महत्त्व को उद्घाटित करते हुए हम इन्हें निम्न भागों में बांट सकते हैं -

ऐतिहासिक और पौराणिक महत्व :

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छत्तीसगढ़ी लोकगीतों के परिचय की भूमिका में लिखा है - "ग्राम गीतों का समस्त महत्व उसके काव्य सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं है इनका महत्वपूर्ण कार्य है, विशाल सभ्यता का उदघाटन,जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र में डूबी हुई या गलत समझ ली गयी है। ग्राम गीत इस सभ्यता के वेद श्रुति हैं। सौभाग्यवश वेद ने बाद में श्रुति से उतरकर लिपि का रूप धारण कर लिया, पर हमारे ग्रामगीत अब भी श्रुति ही है। जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्य समाज का ज्ञान होता है। उसी प्रकार ग्राम गीतों द्वारा आर्य पूर्व सभ्यता का ज्ञान होता है।"

लोकगीतों में स्थानीय रंग होता है। साथ ही साथ इतिहास का पुट भी हम लोकगीतों में

पाते हैं। इन गीतों द्वारा पूर्व काल में,जब ये गीत रचे गए थे तत्कालीन समाज की स्थितियों का भी आभास होता है। गीतों के अंतर्गत वर्णित ऐतिहासिक झाँकियों के द्वारा स्थान-स्थान पर अत्याचारों से संबंधित गीत भी मिलते हैं।

सामाजिक महत्व :

प्रत्येक सामाजिक पहलू का चित्र हम लोकगीतों में देख सकते हैं। इन गीतों में एक ओर यदि समाज की परम्पराएँ, संस्कार उभर कर आती है तो उसके साथ ही हमें ग्रामीण भाइयों की दिनचर्या और उनके जीवन का सांगोपांग चित्र भी मिलता है। प्राय: देखा जाता है कि त्योहारों तथा भिन्न-भिन्न ऋतुओं के सामाजिक स्तर भेद तो ये लोकगीत ही मिटाते हैं। प्राचीन समय में कवि अपनी सारी शक्ति शासकों को सजग और कर्मठ बनाने में खर्च करते थे। लोकगीतों को गाकर किसान अपनी पीड़ा को गाकर भुला देता है। दुखी नारी भी इन गीतों से अपने दुख को भुलाती है। माता-पिता, भाई-बहन, ननद-भाभी, सास-बहू के जो चित्र हमें इन लोकगीतों में दिखाई देते हैं वे वस्तुत: ग्रामीण समाज की एक अनुपम झांकी है। सामजिक कुप्रथाएं जैसे सतीप्रथा, अनमेल विवाह, बाल विवाह के साथ-साथ हमें समाज की सही स्थिति को जानना है तो प्रत्येक जाति में गाए जाने वाले लोकगीतों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

भौगोलिक महत्व :

लोकगीतों में भूगोल का पूर्ण रूप से तो विवेचन नहीं होता है फिर भी हमें स्थानीय भूगोल के संबंध में बहुत सी बातें पता चल जाती है। गंगा, यमुना, सरयू आदि अनेक नदियों के नाम तथा शहरों में काशी, अयोध्या, ब्रज, जनकपुर, प्रयाग आदि शहरों के नाम का प्रयोग इन लोकगीतों के अनेक स्थलों में पाया जाता है।

आर्थिक महत्व :

लोकगीतों में ग्रामीण भाइयों की आर्थिक स्थिति का यथार्थ, सजीव और सुन्दर चित्रण हमें दिखाई देता है। धानी रंग की चुनरी पहने स्त्रियों का जिक्र लोकगीतों में पर्याप्त मिलता है। रेशम की साड़ी तथा सोने चांदी के आभूषणों में सज्जित महिलाओं की काफी चर्चा इन गीतों में है।गहने की जो लंबी सूची मिलती है उससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज बड़ा समृद्ध था। जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी थी और सभी लोग धन-धान्य से पूर्ण थे।

धार्मिक महत्व :

किसी भी प्रदेश में रहने वाले लोगों का धार्मिक जीवन कैसा है उसका पता लोकगीतों से लगाया जा सकता है। विभिन्न व्रतों एवं उपवासों से संबंधित गीत भी मिलते हैं, जिन्हें सुनकर ग्रामीणों की आस्तिकता और उनकी धर्मपरायणता का परिचय मिलता है। ऐसे अनेक गीत हैं जिनमें भजन की महत्ता प्रकट की गयी है। ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग कठिन बताया गया है।

मनोवैज्ञानिक महत्व :

लोकगीतों का कुछ अंश तक मनोवैज्ञानिक महत्व भी है। इन लोकगीतों के माध्यम से ग्रामीणों के मनोविज्ञान को जाना जा सकता है। झाड़ना, फूंकना, जादू-टोना उतारना आदि प्रक्रिया एवं भूत चढ़ जाना और उतर जाने की प्रक्रिया का चित्रण हमें लोकगीतों में मिलता है। इसके अतिरिक्त अनेक अंधविश्वास जो कि सदियों से आधारहीन होने पर भी हमारी कमजोरी बन गई है उसकी झलक हमें लोकगीतों में मिलती है।

राजैनतिक व राष्ट्रीय महत्व :

राजनीति और राष्ट्रीयता को लेकर हमारे देश में लोकगीत बहुत ही कम संख्या में रचे गये हैं लेकिन फिर भी ऐसी बात नहीं है कि उनकी संख्या नगण्य है।जिस समय भारत पराधीन था उस समय यह मानसिक वेदना बड़ों की ही नहीं, बच्चे-बच्चे की जुबान पर आ गई थी।अब यह कैसे संभव था कि हमारे लोकगीतकारों के हृदय में वेदना के धुन नहीं बजते। ऐसे अनेक गीत हैं जिसमें परिस्थितियों का भाव - भीना चित्रण है।

नैतिक महत्व :

इन लोकगीतों में इतनी सहजता एवं ग्रामीण जन जीवन का इतना सीधा चित्रण है कि श्रोता इन गीतों को पढ़कर अभिभूत हो जाता है। यदि इन गीतों में कहीं रोमान्स का चित्रण भी है तो भी श्रोता के मनपर आजकल के फिल्मी गानों की भांति बुरा प्रभाव नहीं डालता क्योंकि उन गीतों में एक प्रकार की सात्विकता का अभाव हमें मिलता है। प्राय: इन गीतों में रोमांस संबंधी गीत पति-पत्नी से ही संबंधित हैं। जो उसके परे हैं। उसमें पौराणिक कथाओं का सहारा ले लिया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये गीत किसी भी प्रकार से समाज के नैतिक स्तर को नहीं गिराते और न इन गीतों में राधाकृष्ण का नाम लेकर रीतिकालीन कवियों की भांति कुत्सित वर्णन ही मिलता है।

प्रतीकात्मक महत्व :

लोकगीतों में दशरथ, कौशल्या, यशोदा, राम या कृष्ण का संकेत मिलता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो ये व्यक्ति विशेष न होकर सामान्य हैं नंद या दशरथ के पिता के प्रतिरूप हैं तथा यशोदा और कौशल्या माता के प्रतीक हैं। इस प्रकार राम और कृष्ण पुत्र के प्रतीक हैं । यही नहीं भारतीय लोकगीतों में चन्द्रोदय आशा का प्रतीक है, अंधकार निराशा का प्रतीक है, मन में बसे फूल की सुगंध पा जाना प्रेम की सफलता का प्रतीक है। प्रेमी और प्रेमिका के मिलन पर आह भरना, वृष्टि होना शारीरिक रूप से उनके प्रेम की चरम परिणति का प्रतीक है।

दार्शनिक महत्व :

बड़ी से बड़ी दार्शनिक बातें जो विद्वान लोग बहुत ही जटिल शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं वह प्राय: आम जनता के लिए ग्राह्य नहीं होती है लेकिन वही बातें लोकगीतों में बड़े सीधे एवं सरल शब्दों में अभिव्यक्त होती है और वह आम जनता के लिए ग्राहय भी होती है।

संदर्भ –

1.हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास9 षोडस भाग, प्र.स.राहुल सांकृत्यायन,पृ 15-16

2. ...but fundamentally to the folklore, there currency must have been in the memory of man bequeathed from generation by word of mouth and imitation, rather than by printed page .-R.S Boggs, folk lore, material science, Art, Folklore Americanlll, No.1 June 1943.

3. ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, डॉ. सतेन्द्र पृ 118

4. ऋग्वेद 8/32/1 –कण्व इंद्रप्रस्थ गथया

5. गृहय सूत्र, अ-1 खंड 7(पारस्कार)

6. श्री मद्भागवात (दशम स्कन्ध) डॉ तेज नारायण लाल पृ21 से उद्धृत

7. रघुवंशम,कालिदास -3/119

8. मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, डॉ तेज नारायण लाल, पृ 21 से उद्धृत

संगीत एवं मनोविज्ञान का अंत:संबंध

डॉ.चंद्रिका कुमारी, संगीत शिक्षिका

कला की अभिव्यक्ति मानव-जीवन में सृष्टि के प्रादुर्भाव के समय से ही रही है। अपनी अंतर्भावनाओं को व्यक्त करने के लिए मनुष्य ने विभिन्न माध्यमों का प्रारंभ से ही,सहारा लेना शुरू किया। अपने इर्द-गिर्द घटने वाली हर घटनाओं को, चाहे वह सुख देने वाला हो, व्यक्त करने में मानव ने प्रकृति का सशक्त सहारा भी सृष्टि के उद्‌भव काल से ही लेना प्रारंभ किया है। यह उसकी विकसित हो रही मानसिकता ही थी, कि दु:ख के समय में रोना या विषाद युक्त चिल्लाना तथा सुख की घटनाओं में विभिन्न प्रकार की हर्षयुक्त ध्वनि उत्पादित कर अपनी भावनाओं को व्यक्त करता आया है।

कालान्तर में सृष्टि के विकास के साथ-साथ संगीत का भी विकास हुआ। स्वर और लय से अभिभूत संगीत ने विश्व इतिहास के प्रत्येक काल में अपनी विशिष्टता से मानव सभ्यता एवं संस्कृति को प्रभावित किया है। जीवन के हर क्षेत्र में संगीत की महत्ता प्रारंभ से ही मानी जाती है। चाहे हर्ष व्यक्त करना हो या विषाद, चाहे रंगमहल हो या लड़ाई का मैदान-एक विशेष प्रकार का संगीत प्रस्तुंत होते ही उस भावना का आभास होने लगता है। हर उन भावनाओं को व्यक्त करने के पीछे कुछ विशिष्ट मानसिकता का आभास होता है, जिसके माध्यम से अलग-अलग प्रकार की भावनायें व्यक्त होती हैं। क्योंकि संगीत मानव जीवन के हर पहलू को प्राचीन काल से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती आ रही है। समाज के प्रत्येक कार्य में आज संगीत की महत्ता सभी को ज्ञात है। वैवाहिक कार्य हो या धार्मिक कार्य, लड़ाई का मैदान हो या शांति के लिए कार्य हो या फिर कोई भी संस्कार-संगीत की आवश्यकता एवं महत्ता प्रत्येक स्थान पर है।

संगीत की महत्ता निम्न पाँच अंगों के अंतर्गत विशेष रूप से उल्लेखनीय है-

1. दार्शनिक 2. मनोवैज्ञानिक 3. सामाजिक 4. शैक्षणिक तथा 5. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध।

जीवन के दर्शन, धर्म से संगीत सीधे जुड़ा हुआ है। साकार, निर्गुण, पर ब्रह्म की प्राप्ति तो नाद साधना के द्वारा ही मानी गयी है और भक्तिमार्ग से ओत-प्रोत संगीत मोक्ष-प्राप्ति का सुगम साधन है,जो हमारे दर्शन की मूल धारणा है।

समाज से भी सीधे संबंधित है हमारा संगीत। मानव जीवन का प्रत्येक क्षण संगीत पर आधारित है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक संगीत के ताने-बाने में आबद्ध है।जहाँ तक मनोवैज्ञानिक महत्ता का प्रश्न है,इसका सीधा संबंध संगीत शिक्षण से है। वैसे बहुत कुछ यह संगीत के प्रदर्शन पक्ष को भी प्रभावित करता है,क्योंकि संगीत चूँकि एक प्रदर्शन कला है, अत: प्रदर्शन

के लिए एक स्वस्थ मानसिकता एवं मनोवैज्ञानिक ढ़ग से तैयारी भी अत्यंत आवश्यक है।शिक्षण से संबंधित होने का प्रमुख कारण यह है कि शिक्षा मनुष्य में संतुलित व्यक्तित्व के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।इसमें विद्यार्थी की प्रवृत्ति, रूचि, बुद्धिमत्ता इत्यादि सभी गुणों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षण की आवश्यकता पर ध्यान दिया जाता है।इतना ही नहीं मनोवैज्ञानिक ढंग से संगीत शिक्षण में व्यवहार की भी अहम भूमिका रहती है और यही व्यवहार संगीत के मनोवैज्ञानिक के अंतर्गत त्वरित प्रगति के लिये अत्यंत आवश्यक माना जाता है।

जहाँ तक अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का प्रश्न है, संगीत स्वर-लय से ओत-प्रोत होने के कारण विभिन्न देशों के मध्य सांस्कृतिक संबंधों के स्थापित करने एवं जहाँ स्थापित है उन्हें और प्रगाढ़ करने हेतु एक सशक्त सेतु का कार्य करता आ रहा है। क्योंकि स्वर लय भाषा से परे होने के कारण प्राय: प्रत्येक मानव में हर्षातिरेक उत्पन्न करती है, चाहे वे किसी भी देश के क्यों न हों।

संगीत रत्नाकर में भी कहा गया है कि भूत को चेतन उपलब्ध करवाने वाला, सर्वत्र व्याप्त रहने वाला, ब्रह्मण्ड को जीवन स्वरूप देनेवाला तथा आनंद पूंजी की उत्पत्ति का अद्वितीय नाद स्वरूप का मूल ही प्रकृति का स्रोत तथा उसकी गति है। यहाँ 'नाद'संगीत से पहले की भाव तथा लयात्मक ध्वनि की वह अनुभूति है जो अंतरिक्ष के साथ-साथ मनस को भी व्यवस्थित प्राण देती है। अंतरिक्ष के तल तथा मुख्य ऊर्जा स्रोत ही जीव जगत के व्यवहार तथा उनकी गति को तय करते है। यहाँ 'शारंगदेव' द्वारा आदर तथा अभिव्यक्ति (ज्ञान) के प्रकटीकरण का मनोभाव तथा सृष्टि के प्रति सम्मान तथा समर्पण की उनकी प्रकृति का स्रोत-'नाद ब्रह्म' के आभार से गद्‌गद है।

''मैक्समूलर आदि भाषातत्वज्ञों की धारणा है कि भाषा की उत्पत्ति हुई है क्योंकि विकास की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि अन्य जीवों की भाँति मनुष्य को भी पहले केवल शुद्ध और व्यापक भावों को व्यक्त करने की प्रेरणा होती होगी जो केवल स्वर संघातो से किया जाता होगा। पहले मनुष्य एक विशेष स्वर संघात से प्रेम, दूसरे स्वर संघात से ईष्र्या और किसी तीसरे स्वर संघात से विजय की भावना की घोषणा करता होगा।''

यहाँ भी भाषा से पहले भाव अर्थात् संगीत (लयात्मक ध्वनियों) का ही उल्लेख प्रकट है। हम कह सकते हैं कि आदिम युग से ही भाव, विचार से पहले मनस में अपना स्थान बना चुके थे क्योंकि भाव ही 'मनस' को जिज्ञास की व्याकुलता प्रदान करते हैं, भले वह भाव, अनुभव के अचेतन पक्ष या प्राकृतिक लक्षण के चिह्न हों।

निश्चित ध्वनियों की मात्रा, स्वर राग या शब्द संगीत के महत्वपूर्ण अंग हैं। इन सभी से उत्पन्न प्रत्येक खनक (कंपन) किसी न किसी भाव को (रस) को स्वयं सँजोए रहती है। जैसे सावन में बादलों में उत्पन्न बिजली की चमक तथा उसकी ध्वनि मनुष्य के भीतर छिपी व्याकुलता तथा व्यग्रता के भाव को सामने लाती है, वैसे ही इस बिजली की गड़ड़ाहट के बाद वर्षा की एक मीठी फुहार स्पर्श, सान्निध्य और संतोष के लिए उत्तेजित दिखाई पड़ती है। वास्तव में पहले का व्यग्र तथा व्याकुल भाव भी एक विशेष मानसिक स्थिति का द्योतक है और बाद की संतुष्टि की क्रिया अर्थात् स्पर्श, सान्निध्य और संतोष भी एक मनोभाव है, जो कही अंतर्मन में कुलबुला रहा होता है। मनुष्य का कोई भी भाव या प्रतिक्रिया अचानक ही जन्म नहीं लेते, उनकी पृष्ठभूमि कहीं न कहीं चेतन या अवचेतन मन में पहले से ही निर्मित हो चुकी होती है।

''मनस' स्वयं में कोई जैविक या प्रतिक्रियात्मक क्रिया नहीं है, यह केवल अनुभवों

तथा भावनाओं द्वारा प्रतिपादित क्रियाओं का ही उपनाम है। अलग-अलग मनुष्यों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से सोचने, समझने विचार करने तथा कामना करने की विभिन्न अवस्याओं तथा भावों से उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रिया ही उनके मनोविज्ञान का प्रत्यक्ष तथा सही विश्लेषण है कि मन अर्थात् मनस का वैज्ञानिक अर्थ, मनुष्य के मस्तिक से ही है।

भारतीय मनोविज्ञान में 'मनस' शब्द का प्रयोग केवल यंत्र के रूप में किया गया हैं। भाषा की दृष्टि से मन, हृदय, समझ, प्रत्यक्ष ज्ञान, प्रज्ञा आदि के अर्थ में लिया है। साहित्य में इसे रूचि, इच्छा, विचार, कामना, संकल्प, कर्म, प्रयोजन, कल्पना तथा सोच के रूप में प्रयोग में लाया जाता रहा है।

प्रत्येक मनुष्य तीन अवस्थाओं में जीवन जीता है।

ये तीन अवस्थाएँ हैं:-

1. चेतनावस्था
2. अवचेतनावस्था
3. अचेतन अवस्था

इन तीनों ही अवस्थाओं में भाव अथवा सोचने की प्रक्रिया हमेशा बनी रहती है,भले ही वह प्रकट हो या न हो।इन्हीं भावों के अनुरूप व्यवहार तथा प्रतिक्रिया जन्म लेती है।इनमें राग,आसंग,तृष्णा,काम,खुशी,दुख,क्रोध, द्वेष,भक्ति,आदर,दया,शान्ति,विषाद,लोभ,शंका,संभोग इत्यादि भाव प्रमुख हैं प्रसिद्ध वैज्ञानिकों जे० वाल्टन जी० हार्टमैन फ्रायड ए० जर शिल्ड, बूडवर्थ लविनसन ऑलपोर्ट मार्टिन प्रिंस,वारिंग आदि ने इस सत्य को प्रमाणित भी किया है।1

'संगीत' मनुष्य की आरंभिक अवस्था से जुड़ा हुआ है। प्रकृति में होने वाली समस्त क्रियाओं तथा बदलावों ने मानव को आश्चर्य-चकित किया। तत्पश्चात् उसके मस्तिष्क ने अपनी स्वाभाविक जैविक क्रिया की और मनुष्य अनजाने में ही जिज्ञासा के मोह-पाश में बंधता चला गया। मस्तिष्क (मनन) का कार्य ही सोच तथा शंका को जन्म देता है और यही सोच तथा शंका, प्रगति तथा परिवर्तन की आधारभूत भूमि भी है। ब्रह्मण्ड में उपस्थित समस्त ध्वनियों ने मनुष्य को अलग-अलग वातावरण तथा प्रति क्रियाओं में बाँटा। तत् पश्चात् उसने स्वयं ही अनुभव किया कि हर ध्वनि पर उसकी प्रतिक्रिया, उसके भीतर एक अलग भाव तथा उत्तेजना को जन्म देती है। यहाँ भी उसे संगीत द्वारा अपने मनोविज्ञान पर होने वाले प्रभाव का पता नहीं था किन्तु यह क्रिया स्वाभाविक तथा प्राकृतिक थी। इन्हीं अलग-अलग भावों ने अलग-अलग ध्वनियों की (अमूर्त) श्रेणी तथा उनकी (मूर्त) पहचान बनाई जो बाद में एक निरंतर खोज तथा जिज्ञासा के कारण स्वर, राग तथा संगीत के शुद्ध रूप में सामने आई। संगीत शास्त्रों में स्वरों का जीव-जंतुओं की बोलियों से संबंध इसी बात का प्रमाण है।इस समय तक मनुष्य केवल भाव तथा भावनाओं को ही पहचान सका था। संबंध, सत्संग, संवाद तथा संबोधन की समस्त प्रतिक्रियाओं को वह दैवीय इच्छा मानता था और इसी के कारण विवाह, वासना, प्रेम, प्रलाप तथा प्रताड़ता को वह ईश्वर द्वारा रचित भाग्य ही मानता था। आज भी यह मान्यता कई मनुष्यों के विश्वास का हिस्सा है जैसे दुल्हा-दुल्हन की जोड़ी, प्रेम, जन्म तथा मृत्यु इत्यादि का लेखा ईश्वर के घर में रचा जाता है। वास्तव में समर्पण के ये समस्त व्यवहार तथा विचार मनोविज्ञान का ही एक हिस्सा है।

मानव के जन्म के साथ ही शरीर एक नए वातावरण, बदलाव तथा स्पर्श के संपर्क में आता हैं। नवजात शिशु का मनोविज्ञान इसकी प्रतिक्रिया रोकर देता है। यहाँ पीड़ा तथा वातावरण में हुए

परिवर्तन को पहचानने की क्षमता तथा उसके विरूद्ध उत्पन्न प्रतिक्रिया, सीधे-सीधे मस्तिष्क से जुड़ी है अर्थात् उसका यह सहज प्रतिक्रियात्मक मनोविज्ञान, जन्म के समय उपस्थित है तथा रोने की क्रिया अथवा व्यवहार उस नवजात का अनुभव तथा भाव।

यहाँ यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य के जन्म के साथ ही उसके भाव, उसकी भावना तथा उसकी अभिव्यक्ति भी जन्म ले लेती है। किसी भी मनुष्य को अपने जन्म की तिथि या समय भले ही पता न हो किन्तु उसे बालावस्था की कुछ धुँधली-सी मधुर स्मृतियाँ अवश्य स्मरण रहती है। बाल्यावस्था में ही संगीत की पृष्ठभूमि से संचित लोरी, गीत, पूजा, यज्ञ, इबादत या अन्य कोई भी लयात्मक ध्वनि, उसके विकास के साथ उससे जुड़ती चली जाती है और इसी कारणवश, वह अनजाने में ही संगीत तथा साधना से जुड़ता चला जाता हैं। यहाँ संगीत द्वारा भावनात्मक संबंध तथा विचारों के साथ-साथ, उसके व्यक्तित्व के निर्माण का शुभारंभ भी हो जाता है जो आगे चलकर उसे अन्य लोगों से अलग (विशेष) भी करता है। मनुष्य के दबे हुए विशुद्ध भावों एवं उसकी अपूर्ण इच्छाओं की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति भी 'अश्रु' ही है इसीलिए किसी भी मानव में रोने अथवा भावुक होने की प्रतिक्रिया को विशुद्ध तथा सहज माना जाता है। संगीत द्वारा जब भी मनुष्य के इस भाव को उद्वेलित किया जाता है तो एक विकसित तथा अनुभवी व्यक्ति भी किसी नवजात की तरह, जीवन में पीछे छूट चुकी भौतिक पीड़ाओं को मानवीय वेदना में बदलकर, भाव को संतुष्टि तथा प्रकटी करण का पथ प्रदान करता है। यह तथ्य और सरल करने के लिए हम कुछ रागों तथा स्वरों का संक्षिप्त विश्लेषण भी कर सकते हैं जो मनुष्य में मार्मिक संवेदनाओं को जन्म देकर उसे, उसके मनस में उपस्थित निराशा तथा नीरसता के व्यर्थ भावों से मुक्त कर देते है जैसे: राग वागेश्री यह मध्य रात्रि में गाया जाने वाला राग है। यहाँ मध्य रात्रि से एकान्त, एकाकीपन तथा सन्नाटे का बोध होता है। यह संवेदनाओं और स्मृतियों के पुनर्जन्म का विशुद्ध प्रहर है। राग के कोमल गंधार तथा कोमल निषाद स्वर स्मृति तथा अन्य मार्मिक भावों को जन्म देने में सहायक होते हैं।

भैरवी: प्रात: कालीन गेय होने पर भी यह राग सार्वकालिक माना जाता है। इसके प्रचलित स्वरूप में स्वरों का लगाव (कोमल, तीव्र स्वर) इस प्रकार निर्धारित किया गया है कि यह किसी प्रहर में भी गाये जाने पर, अपनी संवेदना तथा मर्म की भूमि को नहीं छोड़ता। इसके आधारभूत गायन स्वरूप में सभी कोमल स्वर, आदर, प्रेम, त्याग, विरह तथा श्रद्धा के भावों को उत्पन्न कर किसी भी मानव के मनस को सम्मोहित करते हैं।

यहाँ संगीत के माध्यम से संगीतज्ञ तथा श्रोता द्वारा कोमल स्वरों तथा भावों को अभिव्यक्त तथा अनुभूत करने का मर्म, विशेष करूणात्मक मनोविज्ञान का ही सूचक है। इस प्रकार के रागों में जीव के अत्यंत संवेदनशील मनोविज्ञान को उत्तेजित किया जाता है। कभी-कभी रागों तथा स्वरों की यह निश्चित प्रक्रिया श्रोता तथा प्रस्तुतकत्ता को शांत धरातल की ओर भी ले जाती है।

कभी संगीत के कारण एक विशेष मनोविज्ञान जन्म लेता है तो कभी एक विशेष मनोविज्ञान के कारण किसी संगीत का उद्गम का चयन होता है। संगीत का 'जन्म' हम इसलिए नहीं कहेंगे क्योंकि संगीत का 'मूलरूप' प्रकृति के जन्म से जुड़ा है न कि मानव के मनोविज्ञान से, किन्तु इसके ध्वनि पक्ष के लिए हम उद्गम शब्द का प्रयोग कर सकते हैं।

प्रेम,त्याग, मिलन, विरह, आशा, निराशा,

युद्ध, यातना, विजय आदि सभी विषयों में भी संगीत की आधारभूत भूमि 'मर्म' ही है। मर्म ही जीवन का सबसे विशुद्ध सार्थक भाव है। अकस्मात लाभ, संतोष अथवा संतुष्टि पर हँसना भले ही आवश्यक न हो किन्तु आघात या मृत्यु पर रोना अत्यधिक आवश्यक है। क्योंकि यही भाव या प्रतिक्रिया, मनुष्य के आहत मनोविज्ञान ;पउवजपदंस ीवबवोए संवेगात्मक आघात) को भाव-अभिव्यक्ति द्वारा शांत तथा स्थिर करता है। यहाँ पुन: यही स्पष्ट होता है कि परिवर्तन, प्रेम तथा जन्म की सबसे शुद्ध तथा उत्तम प्रतिक्रिया 'मर्म'अथवा 'अश्रु' ही है।

संगीत ने सदैव ही मानव के मनोविज्ञान को खोज की भूख तथा संतुष्टि की खुराक दी है। मानव द्वारा अपनायी गई कोई भी जीवन शैली या धर्म, संगीत से अछूता नहीं है। संगीत केवल स,रे,ग,म,प,ध,नि जैसे स्वर या अक्षर ही नहीं बल्कि यह प्रत्येक मनुष्य के मनस उसके व्यक्तित्व तथा उसके विकास का प्रमाण भी है।किसी भी जीव वनस्पति तथा तत्वों में गति या चलायमान अवस्था होने से उत्पन्न ध्वनियाँ उनके अस्तित्व,उनकी क्षमता तथा उनकी बनावट की पहचान होती है।जैसे वायु के शोर अथवा अंघड़ से मनस में विनाश की आकृति का जन्म लेना,शेर की दहाड़ से बल तथा वध का भय होना,कोयल की कूक से शांति तथा माधुर्य का अभास होना तथा पत्तियों की खनखनाहट से उत्साहवर्धक-झंकृत भाव की अनुभूति होना।

बारहवीं सदी में मनोवैज्ञानिकों ने इसे व्यवहार का विज्ञान कहा और तभी से मनोवैज्ञानिक विलियन मैकडुगल ने इसे वस्तुओं के व्यवहार का विधायक विज्ञान कहा।पाश्चात्य मनीषी हार्मीस के अनुसार प्राकृतिक रचना क्रम तथा तत्त्व व्यवहार का प्रतिफलन ही संगीत है।1

प्लेटो ने संगीत को समस्त विज्ञानों का मूलाधार माना है।उनका यह भी मानना है कि ईश्वर द्वारा इसका निर्माण विश्व की वर्तमान विसंवादी प्रकृतियों के निराकरण के लिए हुआ है।''रवीन्द्र नाथ टैगोर ने संगीत के लिए अपने उद्‌गार इस प्रकार व्यक्त किए है-''आनंदमय संगीत से मस्ती एवं आत्म विस्मृति को पाकर मैं अपने प्रभु को भी मित्र कह डालता हूँ ।''यहाँ ईश्वर को मनुष्य का मनोविज्ञान तथा उसकी प्रवृत्तियों को उसका व्यवहार माना गया है। संगीत को यहाँ प्रतिक्रिया स्वरूप उपचारक कहा जा रहा है।

ये समस्त अवलोकन भी एक विशेष मनोविज्ञान के ही प्रतीक हैं जिसमें अन्वेषक ने भाव, रस तथा संगीत को लगभग सर्वस्व अभिव्यक्ति का आधार माना है।हर बार संगीत ने मनोविज्ञान को कुरेदा है तथा उसके उत्तर में उत्पन्न हुए नए मनोविज्ञान ने भी फिर से संगीत की जिज्ञासा को स्वरों रागों तथा ध्वनियों की नई खोजों तथा उनके तथा उनके विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग से शांत तथा सशक्त किया है। इसी खोज तथा जिज्ञासा की प्रवृत्ति के कारण, मानव का चित्र एक के बाद एक नए-नए प्रयोगों को जन्म देता चला गया।

शरीर में विद्यमान वायु वेग को प्रतिक्रिया के स्वर तथा सिकुड़न को अपनाया तथा वायु वेग तथा काकु की क्रिया के अनुसार विभिन्न ध्वनियों तथा स्वरों का जन्म हुआ।वास्तव में मनुष्य द्वारा ताकत लगाकर बोलते या फुसफुसाकर उच्चारण करने की विभिन्न अवस्थाएँ तथा उनसे उत्पन्न ध्वनियाँ,शरीर में उपस्थित वायु वेग को,शरीर के ध्वनि सहायक अंगो द्वारा बाह्म वातावरण में धकेलने का ही परिणाम है।इस प्रक्रिया में प्रत्येक भावनुरूप वायु (साँस) से उत्पन्न हर एक स्वर या ध्वनि को पहचान कर उसे अपनी स्मरण शक्ति में संजोना तथा फिर उसे अपनी जीवन-शैली में

किसी विशेष स्मृति के साथ स्थापित करना,संगीत तथा मनोविज्ञान के ही दो कारण हैं।

''सिद्धान्त विज्ञान' से पहले मानव का मनोविज्ञान ही उसकी सर्वश्रेष्ठ पूँजी थी। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, ग्रहण दिन तथा रात, सभी उसकी जिज्ञासा का कारण थे। इनके प्रति अभिव्यक्ति के लिए उसके पास केवल आदर, डर या ध्वनि से जुड़े भाव ही थे, जो उसके मनोविज्ञान के अनुरूप प्रकट होते थे। अपनी अर्थहीन ध्वनियों को ही अस्त्र बनाया। विश्व में कहीं भी मानव के अंग-प्रत्यंग उसका रोना, हँसना, खिलखिलाना तथा उसकी मूल ध्वनियाँ लगभग एक जैसी ही थीं। जबकि उसके द्वारा विकसित तथा निर्मित भाषा तथा संगीत अलग-अलग स्वरूपों में हैं। यहाँ यह तथ्य उजागर होता है कि शारीरिक संरचना तथा भावों का मंथन लगभग एक-सा होने पर भी उसके मनोविज्ञान तथा उसकी जिज्ञासा के तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। इसीलिए संगीत (लय) के मूलभूत तत्त्व सभी जगह एक से होते हुए भी उसके प्रकटीकरण तथा प्रयोग के आधार क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। यह भिन्नता भौगोलिक तथा वातावरण की स्थितियों में अंतर का ही परिणाम है।

अलग-अलग भावों को व्यक्त करती ध्वनियों में मनुष्य ने अपनी जिन-जिन शारीरिक मुद्राओं तथा मुख भावों को सर्वप्रथम जाना, वही आगे चलकर उसकी नृत्य कला की जन्मदात्री भी बनीं। इस क्रिया में उत्पन्न स्वर तथा उसकी ताल के अपरिपक्व रूप, सर्वप्रथम उसके भावों के रूप में उसके समक्ष आए। धीरे-धीरे उसका मनोविज्ञान परिष्कृत भावों को नृत्य तथा स्वर या संगीत के माध्यम से प्रस्तुत करने लगा तथा यहीं से एक मानव या सभ्यता की, अपने भाव को कला रूप में प्रकट करने की प्रथम कड़ी का शुभारंभ हुआ। एक गायक भी आरंभ में गुरू, प्रकृति, अपनी कल्पना या फिर एक नए मनोविज्ञान से मिले स्वरों तथा सुरों को यूँ ही ढूंढ़ता और फिर उन्हें स्वयं के मस्तिष्क में साधता है। इसमें भी साधक धीरे-धीरे अपने कंठ के तंतुओं तथा शरीर की नाड़ियों को एक निश्चित दिशा में निरंतर अभ्यास तथा विकास की गति प्रदान करता है तथा उन्हें एक निश्चित वायु वेग से अभ्यस्त करता है। तत् पश्चात् ही एक सटीक तथा सुधड़ स्वर का जन्म होता है।

मानव के निरंतर विकसित होते मनोविज्ञान तथा संगीत में, मृत्यु पर शोक तथा विलाप के गीत तथा विवाह या जन्म जैसे प्रसन्नता के अवसर पर मंगलकारी गीत अथवा विशेष वाद्यों का चयन तथा प्रयोग की सामने आता है अर्थात् आज के रागों, स्वरों तथा संगीत के सटीक तथा सही भावों तथा रसों को, पूर्व के मानव ने पहले ही पहचान लिया था इसीलिए मानव जाति के सर्वाधिक निकट लोकगीतों में व्यवहार, आचरण, अवस्था, व्यवस्था, ऋतु, दुख,तथा अन्य संस्कारों के लिए अलग-अलग गीत तथा राग-रागिनियाँ पाए जाते हैं। यहाँ मानव ने भिन्न-भिन्न परिस्थितियों तथा प्रकृति में बदलाव के साथ अपने हर नए मनोविज्ञान को जोड़ा तथा स्वयं को अभिव्यक्त करने का सबसे सरल माध्यम संगीत में ही खोजा। ध्वनि, स्वर, शब्द या संगीत के अतिरिक्त भी कुछ है जो हमें सुनाई पड़ता है या यूँ कहे जो हमारे भीतर रहता है। शायद ये फिर वही मनोविज्ञान ही है जो चेतन, अवचेतन तथा अचेतन तीनों अवस्थाओं में जीवित रहता है। यही वह 'नाद' है जो मानव को मानव से जोड़ने का सबसे ठोस यंत्र है।

संगीत के बारे में कहा गया है कि 'संगीत से इन्द्रिय जन्म मानसिक, बौद्धिक तथा अध्यात्मिक इन चारों स्तरों का आनंद प्राप्त होता है। जब आनंद होता है तो वह मिश्रित होता है।उसकी कोई सीमा नहीं होती।यहाँ आनंद शब्द बहुत ही

व्यापक रूप में है।आनंद से वंचित रहकर हम संगीत की कल्पना नहीं कर सकते। संगीत तथा भाव का अभिन्न संबंध हैं। संगीत में भाव निर्माण होते है या नहीं, असंभव है। संगीत में हमेशा सुखकर भाव का निर्माण होता है''।

किसी भी सभ्यता, संस्कृति या समय के प्रभाव से मानव का व्यवहार या मनोविज्ञान तो बदल सकता है किन्तु संगीत का धरातल, स्वाद, रस, अनुभूति, अनुसरण, आनंद, अभिव्यक्ति तथा उसकी आत्मा नहीं बदल सकती। यही वह सत्य है, जिसे मानव, अपने मनोविज्ञान की सर्वश्रेष्ठ संपत्ति मानता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मनोविज्ञान का संगीत सर्वकालिका धरोहर है।

1. तिवारी किरन (डॉ.),संगीत एवं मनोविज्ञान,कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2008, पृ०64
2. सिंह ललित किशोर (प्रो०), ध्वनि और संगीत, भारतीय ज्ञानपीठ,नईं दिल्ली,1962 दूसरा सं०),पृ०111
3. हरद्वारी लाल शर्मा,कला में संगीत साहित्य व उदात्त के तत्त्व, मानसी प्रकाशन मेरठ,1994,पृ०324
4. डॉ.हार्मिस, थियोरी ऑफ अरब म्यूजिक, स्त्रोत संगीत एवं मनोविज्ञान, पृ०63-64
5. विमल कुमार (डा०) सौन्दर्य शास्त्र के तत्व, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981 ,पृ०13

महाकवि विद्यापति एवं उनकी रचनाएं

प्रो. पुष्पम नारायण*, पूजा कुमारी**

शोध -सार

किसी कवि की रचनाएं ही उसका श्रेष्ठतम परिचय होती है। अब तक विद्यापति के बारे में हम जो कुछ जान पाये हैं वह उनकी रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में ही संभव हुआ है। अत: इसमें काफी संशय की गुंजाइश है। यद्यपि कवि का व्यक्तिगत जीवन काव्य जीवन के साथ घुलमिल गया है, तथापि कवि ने काव्य की रचना की है, न कि अपने व्यक्तिगत जीवन के इतिहास की। वैसे उन्होंने अपने समकालीन राजा-महाराजाओं का यशोगान किया है जिसमें कभी-कभी उनके व्यक्तिगत जीवन की झलक भी परोक्ष रूप से मिल जाती है। परंतु फिर भी काव्य ओर इतिहास में अंतर तो होता ही है।

विद्यापति ने संस्कृत, अपभ्रंश (अवहट्ठ) ही एवं मैथिली तीनों में रचनाएं की।

***शब्द कुंजी** – विद्यापति, काव्य, अपभ्रंश, अवहट्ठ, साधक*

भारतीय संतों और साधकों की परंपरा निवृति मार्ग की रही है। आत्म प्रदर्शन तथा आत्म परिचय की भावना उनमें नगण्य थी। कालिदास, भवभूति, वाणभट्ट, माघ, भारवि जैसे साहित्यकारों ने अपना परिचय देना उचित नहीं समझा, इतिहास लेखन उनका धर्म नहीं था, उन सारे साहित्यकारों का जीवन-वृत्त तक स्पष्ट नहीं हो पाया है आजतक। दंतकथाओं एवं अनुश्रुतियों के आधार पर ही उनके जीवन की खोज हो पायी है, वैसे ही थे महाकवि विद्यापति, जिन्होंने देसिल वयना सब जन मिट्ठा का जयघोष किया। अभिनव जयदेव की उपाधि पायी। प्रेम सौन्दर्य और भक्ति की संगीतमय धारा को प्रवाहित किया।

अभिनवगुप्त ने''ईश्वर प्रतिज्ञाभिमर्शिनी''में विद्यापति का उल्लेख किया है जो ''वैद्यरहस्यपद्धति'' के लेखक हैं। ये वंशीधर के पुत्र हैं जिनका काल 1682 मान्य है। कौशिक गोत्रीय विद्यापति भी उल्लिखित हुए हैं जो अनुसंधेय विद्यापति की तरह ही ''ओइनवारवंशीय'' राजदरबार में आश्रित थे। एक वंश के विभिन्न राजाओं के दरबार में इतिहास विश्रुत कवि का नाम धारण कर कार्य करना अस्वाभाविक नहीं था। पूर्व कवि की प्रतिष्ठा के अधिकारी न होते हुए भी नाम धारण कर लेना उनके अधिकार की बात थी जिससे जनमानस में क्षणिक भ्रान्ति अवश्य पैदा होती थी,जिससे क्षणिक प्रमावोपन्न व्यक्तित्व का आभास मिलता था। तांत्रिक विद्यापति का उल्लेख करनेवाले श्री दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य जी हैं जिनके अनुसार कवि विद्यापति से वे भिन्न पात्र माने गए हैं। निश्चय ही इन सारे नामों के फलस्वरूप कवि विद्यापति पर किसी तरह का विभ्रम उत्पन्न नहीं

*अध्यक्ष, वि.वि.संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

**शोध छात्रा

होता है,क्योंकि,कवि का व्यक्तित्व इतना निखरा हुआ है कि अनुकरणकर्ता से आच्छन्न हो जाना संभव नहीं था।अन्य विद्यापति नामधेय मात्र ही हैं जो व्यक्तित्व एवं कृतित्व की दृष्टि से इनकी तुलना में नहीं आ सकते।

विद्यापति पदावली के आकर स्त्रोत:

किसी कवि की रचनाएं ही उसका श्रेष्ठतम परिचय होती है। अब तक विद्यापति के बारे में हम जो कुछ जान पाये हैं वह उनकी रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में ही संभव हुआ है। अत: इसमें काफी संशय की गुंजाइश है। यद्यपि कवि का व्यक्तिगत जीवन काव्य जीवन के साथ घुलमिल गया है, तथापि कवि ने काव्य की रचना की है, न कि अपने व्यक्तिगत जीवन के इतिहास की। वैसे उन्होंने अपने समकालीन राजा-महाराजाओं का यशोगान किया है जिसमें कभी-कभी उनके व्यक्तिगत जीवन की झलक भी परोक्ष रूप से मिल जाती है। परंतु फिर भी काव्य ओर इतिहास में अंतर तो होता ही है।

विद्यापति ने संस्कृत, अपभ्रंश (अवहट्ठ) ही एवं मैथिली तीनों में रचनाएं की।

संस्कृत रचनाएं:-

1.भूपरिक्रमा-

यह शिवसिंह की आज्ञा से लिखित भूगोल संबंधी ग्रंथ है। इतिवृत्तात्मक शैली में यात्रा का भी यथातथ्य वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति ''एशियाटिक सोसाइटी बंगाल'' पुस्तकालय में सुरक्षित है। असलान नामक मुसलमान ने मिथिला को अपने अधीन कर लिया था। लगभग 12 वर्षों तक असलान की छाया मिथिला पर कायम रही।इस बीच मिथिला के राजा देवसिंह और राजकुमार शिवसिंह अरण्य निवास कर रहे थे। विद्यापति ने सोनीपीठ नामक आश्रम में आकर उनसे मुलाकात की।रचना की कथावस्तु अत्यंत लघु है।सूतवध जन्य ब्रह्म-हत्या का पाप बलदेव को लगा था।धोम्य ऋषि से पापमुक्त होने का उपाय जब पूछा गया तो उसने भूपरिक्रमा का आदेश दिया।

2.पुरूष परीक्षा-

यह लोकप्रिय ग्रंथ है। रचना का वर्ण्य विषय एवं लेखक का उद्देश्य पुस्तक के प्रारंभिक श्लोक से स्पष्ट हो जाता है-

शिशुनां सिद्धयर्थ नयपरिचितेर्नूतन धिया
मुदे पौरस्त्रीणाम्यनसिच कला कौतुक जुषाम्।
निदेशान्निश्शड.क सदसि शिवसिंह क्षिति पते:
कथाना: प्रस्तावं विरचयति विद्यापति कवि:।।

कोमल मति शिशु एवं पौर स्त्रीजनों के मनोविनोद हेतु राजनीति का सम्यक ज्ञान देने के उद्देश्य से कवि ने यह कार्य प्रारंभ किया।पुरूष परीक्षा की शैली हितोपदेश पंचतंत्र शैली है,राजा पारावार और सुबुद्धि नामक मुनि के प्रश्नोत्तर के रूप में कथा का आरंभ किया गया है।जिसमें चार प्रकार के पुरूषों का वर्णन होता है-

वीर: सुधी: सविद्यश्च: पुरूष: पुरूषार्थवान।
तदन्ये: पुरूषकार: पशव: पुच्छवर्जिता।।

3.लिखनावली -

इसमें पत्र लिखने की परिपाटी है। सप्तरी परगना (नेपल तराई) में स्थित रंजाबनौली के राजा पुरादित्य जिरिनारायण की आज्ञा से विद्यापति ने इस पुस्तक की रचना की। लिखनावली में तिथि का उल्लेख है। कुछ पत्रों में ल.स. 299 लिखा है जिसका तात्पर्य 1408 ई. होता है। 1406 में शिवसिंह को जंगल की शरण लेनी पड़ी तो दो वर्ष बाद पुरादित्य के दरबार में उन्होंने लिखनावली की रचना की। पत्र श्रेणियों में विभाजित है जिसमें

नियम और व्यवहार के निर्देश हैं-

उच्चैः कक्षमधः कक्षं समकक्ष नरम्प्रति।
नियमे व्यवहारे च लिखयते लिखनक्रमः।।

पत्र में तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का विवरण है। पत्रों की संख्या 89 है जिनमें बड़ों के लिए 18, छोटों के लिए 28, समकक्ष के लिए 7 एवं नियम व्यवहारोपयोगी 36 पत्र है।

4.शैव सर्वस्वसार -

महाराज पद्मसिंह की पत्नी महारानी विश्वास देवी की आज्ञा से विद्यापति ने इस ग्रंथ की रचना की। ग्रंथारंभ में मंगल श्लोक के बाद भवसिंह देवसिंह शिवसिंह और पद्मसिंह के गुणगान के बाद महाकवि ने महारानी विश्वास देवी का विस्तार से यशोगान किया है। इस पुस्तक की एक प्रति दरभंगा राज पुस्तकालय में सुरक्षित है। इस ग्रंथ की प्रमाणिकता को लेकर विद्वानों में मतभिन्नता अभी भी कायम है।

5.गंगावाक्यावली -

इस ग्रंथ की रचना विद्यापति ने निःसंतान पद्मसिंह की पत्नी विश्वास देवी के आग्रह पर की,जिसमें कवि ने गंगा के स्मरण कीर्तन से आरंभ करके गंगा तट पर प्राण विसर्जन तक के सारे विधानों का उल्लेख किया है-

''यावदङग विभाति त्रिपुर हर जहामण्डलं मण्डयन्ती
मल्लीमाल सुमेरोश्शिरसि सितमहविजयन्ती जयन्ती।''

इस ग्रंथ के लेखक के रूप में विश्वास देवी का नामोल्लेख है। विद्यापति का नाम केवल सम्पादक के रूप में है।

6.विभागसार -

इस ग्रंथ की रचना 'नरसिंह दर्पनारायण' की आज्ञा से हुई। 'दर्पनारायण' विश्वास देवी का दत्तक पुत्र था। द्वादश विध पुत्र लक्षण रूपण, अपुत्र धनाधिकारी, निरूपण, स्त्रीधन विभाग निरूपण आदि विषयों की चर्चा विस्तार से हुई है। आज भी हिन्दु उत्तराधिकार के लिए इसकी प्रामाणिकता अक्षुण्ण है। ग्रंथ के आरंभ में उल्लिखित श्लोक से रचनाकार तथा आश्रयदाता राजा का विवरण प्राप्त होता है-

रासो भवेशाद्धरिसिंह आसीतत्सूनुनादर्पनारायणेन राज्ञा नियुक्तोऽत्र विभागसारं विचार्य विद्यापति रातनोति।

इस पुस्तक की हस्त लिखित प्रति दरभंगा राज पुस्तकालय में उपलब्ध है।

7.दानवाक्यावली -

नरसिंह देव की पत्नी रानी धीरमति की आज्ञा से यह ग्रंथ लिखा गया है।पुस्तक के प्रारंभ में धीरमति का परिचय देते हुए कवि ने उनकी यशोगाथा प्रस्तुत की है-

श्री कामेश्वरराज पंडित कुलालडार सारः श्रिया मावासो नरसिंह देव मिथिला भूमण्डलाखण्डला।
दृप्यत र्द्धखैरिदर्पदलनो भूदर्प नारायणौ
विख्यातः शरदिन्दुकुन्दघ वल भ्राम्यध शोमण्डलः
राज्ञी पुण्यावलोका विरचयति नवां दानवाक्यावली सा।

8. दुर्गाभक्तितरंगिणी -

यह ग्रंथ नरसिंह 'दर्पनारायण' के पुत्र भैरव सिंह की आज्ञा से विद्यापति ने लिखा था जिसमें दुर्गापूजा के विधान की चर्चा है। आश्विन के शारदीय नवरात्र तथा वासंति क्षेत्र का नवरात्र विशेष उल्लेखनीय है-

विश्वेषं हितकाम्यया नृपवरोऽनुज्ञाप्य विद्यापति श्री दुर्गात्सव पद्धति त तनुते दृष्टवा निबन्ध स्थितिम्।

इसमें दो तरंगें है। प्रथम में गृह - निर्माण,प्रतिमा निवेशन,प्रतिमा लक्षण आदि विविध विषयों का विशद विवेचन है। द्वितीय तरंग में शारदीय दुर्गापूजा पद्धति है।

9.गयापत्तलक -

इस ग्रंथ में गया में श्राद्ध के महत्व एवं विधान का उल्लेख है। इसमें किसी राजा का नामोल्लेख नहीं है। ग्रंथ के अंत में विद्यापति का नाम है-

इति महामहोपाध्याय श्री विद्यापति कृतं गयापत्तलक समाप्तम्।

10.वर्ष कृत्य -

इस ग्रंथ में वर्ष भर के पर्व-त्योहारों का विधान है। इसमें मंगलाचरण के श्लोक नहीं है। ग्रंथ की रचना किसकी आज्ञा से हुई, इसका भी उल्लेख नहीं है, पर एक स्थान पर रूपनारायण का उल्लेख मिलाता है-

तत्राष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञ विनाशिनी
डाकिनी च महाधोरा योगिनी जटि भिस्सह
अतोऽर्थ पूजनीया सा तस्मिन्नहनि मानवैः। इति।
रूपनारायणस्वरसोऽप्येवम्।

11.मणिमंजरी-

यह एक नाटिका है। इसमें राजा चन्द्रसेन और मणिमंजरी की कथा है। आरंभ में सूत्रधार कहता है- परिषद से आदेश मिला है कि विद्यापति की मणिमंजरी नाम की नाटिका का अभिनय करो। अर्द्धनारीश्वर के स्तवन से नाटिका प्रारंभ होती है।

आनन्देन जलीकृता नवनवोत्कण्ठार साभ्यागता
लज्जा रज्जुनिवर्तिता क्षणमथो विभ्रान्तकर्णोत्पवा।

अपभ्रंश (अवहट्ठ) रचनाएं:-

1.कीर्तिलता - इसमें महाराज कीर्ति सिंह का यशोवर्णन है,कीर्ति सिंह अपने भाई वीर सिंह के साथ जौनपुर गए और वहां के सुलतान की सहायता से असलान को युद्ध में परास्त कर पितृबध का बदला लिया तथा मिथिला का उव्द्धार किया। म.म. हर प्रसाद शास्त्री को नेपाल राज दरबार पुस्तकालय में कीर्तिलता की एक प्राचीन पाण्डुलिपि प्राप्त हुई थी,उसका नकल करके रचना प्रकाशित की गई जिसके अंत में उल्लिखित था - माधुर्य प्रसव स्थली गुरूयशो विस्तार शिक्षा सखी।

यावद्-विश्वविदं च खलन कवे: विद्यापति भारती।

खेलन शब्द से अनेक भ्रम विद्वानों में उत्पन्न हुआ। पंक्ति में खेलन के अर्थ की संगति बैठती नहीं थी, इसलिए विद्यापति को खेलन कवि की संज्ञा दी गई तथा यह रचना कवि के प्रारंभिक जीवन की मानी गई। डा. उमेश मिश्र, डा. जयकान्त मिश्र, डा. बाबूराम सक्सेना, डा. शिवप्रसाद सिंह, डा. विमान बिहारी मजुमदार ने यही पाठ माना है। किन्तु रायल एशियाटिक सोसाइटी (बम्बई) और अनूप पुस्तकालय (बीकानेर) में जो 'कीर्तिलता' की प्राचीन पांडुलिपियां हैं, उनमें स्पष्टत: खेलते कवे: पाठ है।

2. कीर्तिपताका:- कीर्तिलता की तरह कवि ने कीर्तिपताका की रचना अवहट्ठ भाषा में की है। महाराज शिवसिंह के चरित्रोत्कर्ष सिद्ध करने हेतु यह ग्रंथ लिखा गया एवं श्री शिवसिंह देवनृपते: सङग्रामजातंयशा गायन्ति प्रति वत्तनिं प्रतिदिश प्रत्यङग्ण सुभ्रुव:।

महाराज शिवसिंह के शौर्यशक्ति तथा देशभक्ति से घबड़ाकर दिल्ली सुलतान ने उन पर अंकुश रखने हेतु दिल्ली बुला लिया,कवि

विद्यापति अथक प्रयास एवं जीवन बलिबेदी पर समर्पित करने के फलस्वरूप ही उन्हें मुक्त कराने में सफल हुए।

3.गोरक्ष-विजय:- यह एकांकी नाटक है। इसके कथोपकथन संस्कृत और प्राकृत तथा गीत मैथिली में। गोरक्षनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ की कथा के आधार पर कवि ने इसकी रचना की है। महाराज शिवसिंह की आज्ञा से भगवान भैरव के प्रसादथि यह नाटक लिखा गया। नाटक का प्रारंभ अर्द्धनारीश्वर की वंदना से होता है पहले शिव और फिर पार्वती की।

हर्षादभ्भोज जन्म प्रपृति दिविषदांसंसदि प्रीति मत्या:
गौर्यामौलौ पुरादेर्दु - तिपरिणिये साक्षतं चम्व्यमानस तदवत्रं शैलिवक्तैर्मिलितमिति भूशं पातु व: पञ्चक्र।।

इसकी एक मात्र खण्डित प्रति नेपाल दरबार के पुस्तकालय में सुरक्षित है।बारह पत्रों में ही नाटक सम्पूर्ण है। उनमें भी 6-7 संख्यक पत्र नहीं है। 8,9,11,12 संख्यक पत्रों में एक-एक पंक्ति ही है। नाटक के अंत में लिखा है-

सप्रक्रिय महाराज पण्डित वर श्रीमद्विद्यापति सत्कवि विरचिंत गोरक्षाविजयनाम नाटकं समाप्तम्।
शुभमस्तु श्री रस्तु।। लं.सं. 495 अभ्रढण बदि।। तिथौ ए विने सुन्द (शेवै 2) योगे करण श्रीमुरारि कण्ठस्यात्मजश्रीभगीरथेन लिखित पुस्तकमिदम्।

मैथिली रचना:-

पदावली -ऐसे विरले ही लेखक या कवि होते हैं जिनकी ख्याति जीवन काल में होती है। किन्तु विद्यापति ऐसे ही लेखकों और कवियों में एक थे।उनकी ख्याति उनके जीवन काल में ही दूर - दूर तक फैल चुकी थी,जिसका श्रेय विद्यापति की पदावली को है।भाषा एवं विषय की दृष्टि से पदावली की विविधता कितने साहित्येत्तर प्रश्न को जन्म देती रही है। विद्यापति वैष्णव थे या शाक्त या पंचदेवो पासक।यह प्रश्न कितने विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते रहा है।महेशवाणी - नचारी की भाषा तथा श्रृंगारिक पद की भाषा इतने वैषम्य के रहते हुए कि वे सभी एक व्यक्ति की रचना कही जा सकती है, इतना ही नहीं विषय एक के रहते हुए भी भाषा एवं काव्य की दृष्टि से सभी पद समान नहीं।इसलिए वे केवल श्रृंगारिक कवि थे यह भी संदिग्ध है।एक ही गीत का स्वरूप एक पदावली में कुछ और है तो दूसरी पदावली में कुछ और।किसी में अधिक पंक्तियां हैं तो किसी में कम। पदान्तर्गत शब्दों में भी एकरूपता नहीं है।

महाकवि विद्यापति की उपरोक्त रचनाओं के कथ्य और शैली को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दरबारी कवि होते हुए भी उनमें न हीनता की भावना थी न उच्चता का अभिमान।उनमें था अपना आत्मविश्वास।यही आत्मविश्वास उन्हें जनकवि और जीवन काल में ही जयी होने का संबल प्रदान किया।

किन्तु विद्यापति के पदों का इतना अधिक प्रचार होते हुए भी उनके सभी पद कहीं एकत्र उपलब्ध नहीं होते''विद्यापति के मधुर पदों को प्रत्येक मनुष्य अपनी सम्पति समझता है,इसी कारण कवि के समय से आज तक जाने कितने व्यक्तियों ने इन पदों को अपने उपयोग के लिए संग्रहित किया होगा।उनके पदों का संग्रह जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन,चन्दा झा,नागेन्द्र नाथ गुप्त,रामवृक्ष बेनीपुरी आदि ने किया है।फलत: महाकवि के पदावली के आकर स्त्रोतों के रूप में निम्न स्त्रोतों पर विवेचन करना अभिधेय है।

1.नेपाल-पदावली:-

यह पदावली नेपाल दरबार-पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसकी लिपि प्राचीन मैथिली है, लिपि-विशेषज्ञों का अनुमान है कि यह अठ्ठारहवीं शती के प्रारंभिक काल की लिपि है, किन्तु मिथिला में प्राप्त पुरातन पुस्तकों की लिपि से इसकी लिपि में कोई अंतर नहीं है, इसलिए इसे अठ्ठारहवीं शती से प्राचीन मानने में भी कोई आपत्ति नहीं। उनकी लिपि कैसी थी यह श्रीमद् भागवत की हस्तलिखित पोथी जो मिथिला नरेश दरभंगा के पुस्तकालय में सुरक्षित है उससे देखी जा सकती है, पाण्डुलिपि से उपलब्ध पद एवं उसकी भाषा से यह अनुमान सत्य सिद्ध होता है कि उनके पदों का संकलन बहुत बाद में हुआ है।नेपाल पांडुलिपि के संबंध में विद्वानों का विश्वास है कि विद्यापति के एक शताब्दी बाद इसका संकलन हुआ होगा।

संदर्भ :-

1. मित्र राजेन्द्रनाथ, हस्तलिखित पुस्तकसूची ग्रंथ -6,न. -79
2. झा प्रो.रमानाथ,पुरुष परीक्षा
3. विद्यापति पदावली । बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना
4. लिखनावली
5. चौधरी डॉ. जितेंद्र बिमल,गङ्गा वाक्यवाली । विश्वास देवी कलकत्ता press,1940

वाग्गेयकार पं. रामाश्रय झा `रामरंग' की सांगीतिक यात्रा

राजन कुमार*, डॉ. चंद्रनाथ मिश्र**

वस्तुत: संगीत जैसी कला और संस्कृति के महान उपादानों को निस्वार्थ और सहज सेवा भाव से जन-जन तक पहुँचा कर कला-संस्कृति को जिंदा रखने का जो प्रयास रामरंग जी किया, वह आपके नाद ब्रह्म उपासक, महर्षि सिद्ध करने वाला प्रतीत होता है। आपके प्रयास से भारतीय शास्त्रीय संगीत न सिर्फ देश के विभिन्न हिस्सों में सुना जाने लगा, सराहा जाने लगा बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी एक नई पहचान स्थापित करने का गौरव हासिल हुआ। आपका यह प्रयास, आपकी यह उत्कृष्ट कला साधना वर्षों तक कला के पथिकों के लिए पाथेय का काम करता रहेगा। आपने इस संगीत यात्रा को न सिर्फ मंचीय अथवा अभ्यासी गायन सीमाओं में ही कैद रहने दिया बल्कि उसे इन दायरों से बाहर निकालकर एक स्थायी रूप देने का काम किया और इस क्रम में आपकी रचनाएँ आज भी लोगों के लिए भारत की महान अध्यात्मिक पुस्तक, रामायण, महाभारत, गीता जैसी ग्रंथों की सूची में शामिल है। अभिनव गीतांजलि जो पाँच भागों में प्रकाशित है तथा संगीत रामायण जैसी अद्वितीय, अनुपम कृतियों की रचना के बावजूद आपकी सहृदयता, सदासियता और सरलता जिस रूप में बनी रही वह आपके एक महान संगीत और कला के शिखर पुरूष की उपाधि से विभूषित करता है।

शब्द कुंजी–*रामरंग, नाद, राग, वाग्गेयकार, संगीत।*

भारतीय शास्त्रीय संगीत के महान उपासक विलक्षण साधक, एवं सुविख्यात वाग्गेयकार पं. 'रामरंग' जी का जन्म 11 अगस्त 1928, तद्नुसार संवत् 1985 भाद्र कृष्ण पक्ष की एकादशी को बिहार प्रान्त के तत्कालीन दरभंगा जिले, वर्तमान के मधुबनी जिला अन्तर्गत मधेपुरा प्रखंड, प्रसाद पंचायत के खजुरा गाँव में कुलीन मैथिल ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता पं. सुखदेव झा, एवं माता श्रीमती खंजनी देवी सनातन धर्म-परम्परा के संवाहक, कर्मनिष्ठ एवं संगीत स्नेही थे। इनकी प्रारंभिक सांगीतिक शिक्षा पाँच वर्ष की अल्पायु से ही अपने पिता पंडित सुखदेव झा के सानिध्य में शुरू हुई। तत्पश्चात् इन्होंने गायन के साथ-साथ हारमोनियम की शिक्षा अपने चाचा पं. मधुसूदन झा से प्राप्त की। बाद में कुछ समय श्री अवध पाठक से भी इन्होंने गायन सीखा। इस प्रकार संगीत सीखने का यह सिलसिला बचपन से ही चलता रहा। अनेकानेक विद्वानों, गुरूजनों एवं सन्तों का सानिध्य प्राप्त करने का जो सुअवसर इन्हे मिला, वह इन्हें सांगीतिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं सामाजिक विषयों में निष्णात् बनाने का काम किया। यही कारण है कि औपचारिक विद्यालयी शिक्षा मात्र एक या दो तक ही प्राप्त करने के बावजूद वे संगीत वाग्गेयकार के रूप में अपना

*शोध छात्र,ल.ना.मि.वि. वि.दरभंगा

**शोध निर्देशक,एम.एल. एस.एम.कॉलेज,दरभंगा

नाम स्थापित करने में सफल हुए। अपने घर में ही अनेक गुणिजनों के सानिध्य में मैथिली, ब्रज, हिन्दी आदि भाषाओं का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। सन्तों की संगति का ही प्रभाव था कि कम उम्र में ही गूढ़ धार्मिक मर्म को समझने का ज्ञान इन्हें मिला।

पंडित रामाश्रय झा बाल्यकाल से ही रामायण जैसे धार्मिक ग्रंथों के गायन में विशेष प्रकृत हुए। यूँ तो इनकी बाल्य प्रतिभा ने आसपास के मंदिरों में भजन-कीर्तन, आरती गायन आदि के लिए सुअवसर देने का काम किया। गाँव, मुहल्ले में धार्मिक आयोजनों में रामरंग जी की बाल-गायन प्रतिभा को देख आमलोगों को आमंत्रित करने के लिए प्रेरित किया। इस तरह सांगीतिक सफर के दौरान इनके अन्दर संगीत की उत्कठ लालसा, जिज्ञासा लगातार बढ़ती ही जा रही थी जो एक पूर्ण गुरू की तलाश की अभिलाषा को बलवती कर रही थी। एक समय ऐसा भी आया जब अपने माता-पिता से विशेष आग्रह पूर्ण अनुमति प्राप्त कर काशी (वाराणसी) की ओर प्रस्थान किया। वहाँ के संस्कृत साहित्य और संगीत के सिद्धहस्त विद्वानों एवं गुणीजन पंडितों से शिक्षा प्राप्त करने की लालसा ने काशी में रमने का सुअवसर प्रदान किया। मात्र दस-ग्यारह वर्षो की छोटी वय में मिथिला छोड़कर वे काशी के हो गए। वहाँ उन्होंने अपने गुरू की तलाश जारी रखी। इस क्रम में उत्पन्न कठिनाइयों ने संगीत की राह से इन्हें भटकने के लिए बाध्य नही किया। यह संगीत के प्रति उत्कठ प्रेम को दर्शाता है। पंडित रामाश्रय झा ने एक साथ संगीत की शिक्षा और आर्थिक आजीविका दोनों की तलाश जारी रखा। इस क्रम में पंडित रामाश्रय झा की मुलाकात एक ऐसे व्यक्तित्व से हुई जो संस्कृत, साहित्य और व्याकरण के साथ-साथ संगीत में भी रूचि रखते थे। उन्होंने उस अपरिचित विद्वान पंडित से अपनी जिज्ञासा प्रकट की, जिन्होंने उन्हे आगे चलकर संस्कृत और व्याकरण की शिक्षा दी, साथ ही उन्हें काम की तलाश में भी सहयोग किया।कहा जाता है कि एक रोज व्यक्तिगत चर्चा के क्रम में गुरु जी ने पं. रामाश्रय झा जी से सहज प्रश्न कर दिया। वह प्रश्न उनके वास्तविक जीवन से जुड़ा था। मसलन:-तुम कहाँ रहते हो? तुम्हारे साथ घर में और कौन रहते हैं? इस तरह के जीवन से जुड़े प्रश्नों का सीधा जबाव जब उनके सामने आया तो वे रामरंग जी के प्रति और ज्यादा अभिभूत हुए। दरअसल वह किशोर, जो एक तरफ शिक्षार्थी भी था, तो दूसरी ओर आर्थिक संकट से उबरने के लिए आजीविका की खोज में भटक रहा था।वैसी विकट परिस्थिति (घड़ी) में उस गुरू ने सम्यक् मार्गदर्शन का काम किया। एक ऐसी राह बताने या चुनने के लिए प्रेरित किया जिससे विद्याध्ययन भी चले और अर्थोपार्जन भी हो।

श्री झा की संगीत प्रतिभा और सीखने की उत्कट इच्छा को देखते हुए, उस महान गुरू ने उन्हे रामलीला मंडली में काम करने के लिए प्रेरित किया। गुरू की इस मार्गदर्शन लाईन को पं. झा ने सिर आँखों पर लिया और उस समय की एक सुप्रसिद्ध रामलीला- मंडली (नाटक-कम्पनी) में संपर्क साधनें का काम किया।मंडली के मैनेजर पं. झा की संगीत योग्यता, भाषा की प्रभावशैली से प्रभावित होकर रामलीला मंडली में अविलंब कार्य दे दिया। वे गोस्वामी तुलसीदास कृत रामायण पर आधारित रामायण (रामलीला) को लोगों के सामने प्रस्तुत करते थे। कभी गायक, तो कभी सूत्रधार तो कभी रचनाकार की भूमिका वे निभाते रहे। इस नाटक कम्पनी में काम करने की वजह से वे साहित्य और लोक संगीत से विशेष रूप से जुड़े रहे।[1]

इस तरह रामलीला मंडली में वे रामायण

के विभिन्न पात्रों के अभिनय का जीवंत प्रदर्शन करने की अपनी सक्षमता को प्रमाणित कर दिया। इतना ही नहीं, एक कुशल रचनाकार, संगीतकार आदि के रूप में जो प्रतिभा थी, वह भी सहज ही नाट्य मंडली के लोगों को आकर्षित कर लिया। लगभग 15 वर्षो तक प बड़ी प्रसन्नता और निष्ठा के साथ रामलीला मंडली में इन्होंने काम किया। इस क्रम में काम के साथ-साथ अपने मुख्य लक्ष्य के उद्देश्य को मलिन होने न दिया। अपने अध्ययन एवं अभ्यास से संगीत-साधना की क्रिया को हमेशा तेज करते रहे। सचमुच में रामलीला मंडली में काम करने के दौरान आपका राम के साथ एक रामात्मक रिश्ता जुड़ गया। न सिर्फ राम की सेवा और उसकी मर्यादा के वर्णन में स्वयं को डुबोया बल्कि मौका मिलने पर लोक संगीत और लोक साहित्य के विविध विषयों से जुड़े प्रसंगों को अभिनय के, गायन के दौरान और ज्यादा प्रयोगधर्मी बनाकर उसे नया लुक देने का काम किया अर्थात् उसे नए अंदाज में पेश किया, जो नाटक मंडली के साथ-साथ आम दर्शकों को भी अपनी ओर खींचने मे काफी समर्थ हुआ। वे बहुत अच्छा संगीत कम्पोजर भी थे।

पं. झा जी को सम्पूर्ण रामायण लगभग कंठस्थ हो गया था। इतना ही नहीं रामायण की प्रत्येक दोहा और चौपाई का सहज भावार्थ ही नहीं बल्कि उसके गूढ़ार्थ तक की व्याख्या करने में समर्थ होते चले गए जिसका सीधा प्रभाव आज भी इनकी रचनाओं में देखा जा सकता है।

इस तरह पं. झा भगवान श्री राम के अनन्य भक्त और अद्वितीय श्रद्धा रखने वाले भक्त के रूप में चर्चित हो गए। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ श्री राम के प्रति अटूट श्रद्धा, अटल विश्वास और भक्त का प्रदर्शन करता है।रामलीला मंडली में इस कदर डूब जाने के बावजूद भी इन्होंने अपनी मंजिल को अभी तक छोड़ा नहीं था।अर्थात आपको अपने लक्ष्य में जो महान संगीत की परम्परा में एक नया मील का पत्थर जोड़ना था, उस लक्ष्य को अपने ध्यान में बनाए हुए थे। यही कारण है कि रामलीला मंडली आपका अंतिम पड़ाव नहीं हुआ।

वास्तव में, आपके अन्दर संगीत अध्ययन की जो गहन अभिरूचि थी, उसे पूरा करने के लिए भी योग्य गुरू और मार्ग की तलाश जारी रखे हुए थे। शिक्षा के इसी क्रम में 1953-54 ई. में इलाहाबाद (प्रयाग) आ गए और 1954 ई. से पंडित झा प्रयाग में स्थायी रूप से रहने लगे। वहाँ आपको किराने घराने के सिद्धहस्त उस्ताद् हबीब तथा पं. बी.एस. ठाकुर (प्रयाग) से जुड़ने का और संगीत शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। अभी भी आपके मन में एक ऐसे संगीत-साधक गुरू की जिज्ञासा बनी हुई थी जो आपको मंजिल पर पहुँचा सके। इसी क्रम में इलाहाबाद में ही एक दिन भट्ट घराने के पंडित भोलानाथ भट्ट से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। पंडित भोलानाथ भट्ट घराने के पंडित साधोलाल के शिष्य थे।

प्रयाग में 1955 ई. का वर्ष पंडित रामाश्रय झा जी के जीवन में एक नया दौर लेकर आया। सर्वप्रथम 1955 ई. में इलाहाबाद के लूकरगंज अवस्थित संगीत विद्यालय में संगीत अध्यापक के रूप में रामरंग जी की नियुक्ति हुई, जहाँ आप बच्चों के बीच गहन-गुर बाँटने का काम शुरू किया। अन्त तक भी आपके मन में संगीत की बारीकियाँ सीखने की अभिलाषा बनी रही जो एक संगीत आयोजन के दौरान पं. भोलानाथ भट्ट जी को सुनने पर और ज्यादा बलवती हो गई। उनके गायन ने इस कदर प्रभावित किया कि आप उस समय के महान किन्तु आपके लिए अपरिचित उस संगीत प्रस्तोता की जानकारी प्राप्त करने के लिए उद्वेलित कर दिया। कार्यक्रम समाप्ति के पश्चात्

आपने संगीत श्रेताओं से उस संगीत गुरू के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया। वहीं श्रोताओं से आपको यह जानकारी मिली कि ये पं. भोलानाथ भट्ट हैं। संगीत के बड़े विद्वान हैं, सहज स्वभाव के हैं और लूकरगंज में ही रहते हैं। यह जानकारी आपके लिए संजीवनी का काम किया। आपकी श्रद्धा उस महान गायक के लिए और ज्यादा बढ़ गई।उनका सानिध्य प्राप्त करने की लालसा और बलवती हुई।

एक रोज उनका पता पूछते-पूछते आप उनके लूकरगंज आवास पर पहुँच गए। उस समय पंडित भोलानाथ भट्ट जी लूकरगंज स्थित एक रविदास मंदिर में रहते थे। वहाँ किसी राजा के द्वारा एक कोठरी उन्हें आजीवन निवास के लिए प्राप्त हुआ था। पंडित रामाश्रय झा प्रतिदिन उनके आवास तक जाने का क्रम शुरू कर दिया। वहाँ जाकर बाहर बैठकर वे पंडित भोलानाथ भट्ट जी का गायन सुनते रहते थे। उनका अध्ययन-अध्यापन देखते सुनते थे। लगातार संगीत शिक्षार्थियों का आना-जाना लगा रहता था। यह क्रम कुछ दिनों तक चला। तभी एक दिन पं. भोलानाथ भट्ट जी ने देखा कि एक 25-26 वर्ष का युवक प्रतिदिन यहाँ आता है, सुनता है और बिना कुछ कहे वापस चला जाता है। पं. भोलानाथ जी ने उस युवक को सामने बुलाया और उसके अतीत और उसके वर्तमान की जानकारी लेने का प्रयास किया। युवक पंडित रामाश्रय झा बड़ी सहजता से अपनी संगीत जिज्ञासा उस महान गुरू के सामने रखा। अपनी संगीत की उत्कठ लालसा उनके सामने रखने में कोई कोताही नहीं बरता। उन्होंने बड़ी सहजता से पंडित भोलानाथ भट्ट जी के सामने यह बात रख दी कि गुरूजी जबसे आपकी प्रस्तुति को सुना है और आपको देखा है, मेरी लालसा हो गई है कि मैं भी आपसे कुछ सीखूँ। पं. भोलानाथ भटट जी पं. रामाश्रय की संगीत जिज्ञासा और संगीत की ज्ञान की जाँच के लिए उन्हें 'सा' लगाने के लिए कहा जिसे सुनकर पं. भोलानाथ भट्ट जी ने कहा कि तुम भी कभी-कभी आ जाया करो,आने-जाने का क्रम शुरू हुआ तभी भट्ट जी अपने इस नए शिष्य की कुशाग्र बुद्धि, विलक्षण प्रतिभा और अटूट संगीत भक्ति को परख लिया, समझ लिया। एक सुयोग्य गुरू हमेशा योग्य शिष्य की तलाश में रहता है।वह न सिर्फ उसकी प्रतिभा की परीक्षा लेता है वरन् उसकी प्रतिभा पर बहुत अधिक भरोसा, विश्वास जताता है, कुछ ऐसा ही विश्वास और भरोसे का रिश्ता पं. भोलानाथ भट्ट जी का रामाश्रय झा जी के साथ घटित हुआ। दरअसल भट्ट जी ने कभी उन्हें अपने-सामने बिठाकर सिखाने का प्रयास नहीं किया। शायद यह उनकी परख का ही पैमाना है जो यह जान लिया था कि यह बालक आगे चलकर न सिर्फ रागदारी ही सीख पाएगा बल्कि इसके साथ और बहुत कुछ यह अर्जित करने में सफल होगा।

दरअसल पं. भोलानाथ भट्ट जी पं. रामाश्रय झा की शिक्षा-दीक्षा में अपनी जम्नभूमि मिथिला के कर्ज को अदा करने का सौभाग्य ढूंढ लिया था। बकौल पं. रामाश्रय झा, पं. भोलानाथ झा जी के पितामह साधोलाल भट्ट जो एक पहुँचे हुए संगीत मर्मज्ञ कलाकार थे।वे अपने पुत्र मोतीलाल भट्ट के साथ कुम्भ के मेले में संगीत आयोजन के क्रम में दरभंगा महाराज का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल हुए। दरभंगा महाराज, मोतीलाल भट्ट को अपने दरबारी गायक के रूप में आमंत्रित किया और उन्हें दरभंगा के राजदरबार में संगीत की प्रस्तुति का एक लम्बा सुअवसर दिया। इसी क्रम में पुत्रहीन मोतीलाल भट्ट दरभंगा महाराज के साथ कुम्भ के मेले में गए और वहाँ भोला बाबा नामक महात्मा से पुत्र रत्न प्राप्ति का आशीर्वाद इस शर्त के

साथ प्राप्त किया कि अपने पहले पुत्र का नाम भोला रखना।[2] कालान्तर में जब दरभंगा महाराज का देहांत हो गया, तब मोतीलाल भट्ट प्रयाग चले गए और उनके साथ भोलानाथ भट्ट जी अपनी 18 वर्ष की आयु में प्रयागवासी हो गए। मिथिला की माटी से आए इस नवोदित संगीत प्रेमी कलाकार में उन्हें भविष्य का एक उद्भट संगीतज्ञ दिखाई पड़ा। साथ ही उन्हें अपने मिथिला की ऋण अदायगी का भी अवसर महसूस हुआ होगा। जिसकी अदायगी के लिए उन्होंने पंडित रामाश्रय झा को अपना न सिर्फ आश्रय, सानिध्य दिया बल्कि उन्हें अपने आश्रम का टहलुआ छात्र के रूप में प्रवेश दे दिया था।

पं. रामाश्रय झा के अनुसार- उनके बैठकों में उस समय के सारे राष्ट्रीय स्तर के कलाकारों का आना-जाना होता था। हमेशा उस बैठकी में रागों की चर्चा होती रहती थी। गाने-बजाने एवं संगीत की विविध विधाओं पर गहन मीमांसा हुआ करता था, जिसे पं. रामाश्रय जी न सिर्फ सुनते थे बल्कि उसे आत्मसात भी करते जाते थे।आगन्तुक अतिथियों की सेवा में चाय-पान परोसने के क्रम में पं. रामाश्रय झा को अपने गुरूजनों की सेवा के साथ-साथ, आगन्तुक अतिथियों का भी स्नेह और आशीर्वाद लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ। एक बार पं. भोलानाथ भट्ट जी के अनुज पं. रामदास जी जो स्वयं ख्यातिलब्ध ठुमरी गायक थे, वे पं. रामाश्रय झा जी की सेवा से अभिभूत हो अपने अग्रज के सामने रामाश्रय झा जी के लिए विशेष शिक्षा-दीक्षा और ध्यान देने की आवश्यकता जताया।पूरे विश्वास के साथ पं. भोलानाथ भट्ट अपने अनुज को हँसते हुए जबाब दिया था।यह सचमुच के यही सीख रहा है बाँकी शिक्षार्थी तो सिर्फ आने-जाने का काम करते हैं। दरअसल यह योग्य गुरू की अपने शिष्य की योग्यता पर अटूट विश्वास को दर्शाता है।

कहा जाता है कि उसी समय पं. रामाश्रय झा को तानपूरा मिलाने और कंकुभ बिलावल का स्वर लगाने के लिए कहा गया। प्रतिभा अवसर पाकर पूरी उफान पर चढ़ आया और पं. रामाश्रय झा सुन्दर तरीके से स्वर विस्तार साहित अलाप आदि का प्रस्तुतिकरण कर वहाँ बैठे सभी गुणीजनों का तथा अपने गुरू का ध्यान और आशीर्वाद खींचने में सफल हुआ। उन्हें उस बैठक में काफी सराहना मिली और इस तरह उनकी प्रतिभा योग्य गुरूओं के द्वारा प्रमाणित होने लगा। यह क्रम एक बार जो शुरू हुआ वह लगातार चलता ही गया। इस क्रम में अनेक प्रतिकूल परिस्थितियाँ उनके सामने आई जो संगीत जैसी विधा में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र के लिए काफी विपरीत होता है, परन्तु पं. रामाश्रय झा अपनी सतत् सीखने की प्रकृति के बूते उन सब कठिनाइयों पर पार पाते गए। संगीत सीखने का यह क्रम लगातार आगे बढ़ता रहा। इस क्रम में उन्हें पेट भरने की मुश्किलात का भी सामना करना पड़ा। ऐसे मौके पर चने-चबेने खाकर फटे-पुराने कपड़ों में रहकर अपनी संगीत साधना को डिगने नहीं दिया। एक जोड़ी कपड़े में वे रहते थे। यमुना में नहाना, वहीं साफ करना, सुखाना और फिर पहनकर वापस चला आना।इस तरह का क्रम उनके जीवन में लगा रहा, पूर्णत: यायावरी जीवन-शैली में जीते हुए पं. रामाश्रय झा अपनी संगीत यात्रा को अनवरत जारी रखा।

दैवयोग से एक दिन नगर के प्रसिद्ध मंदिर के महंथ के पास पं. रामाश्रय झा पहुँचकर यह प्रस्ताव लगाया कि मैं संगीत का छात्र हूँ और हमारे योग्य कोई काम हो तो दिया जाए। पं. रामाश्रय झा का यह आग्रह महंथ ने स्वीकार किया और उन्हें आदेशित किया कि तुम मंदिर में भगवान का प्रसाद बनाओगे, बर्तन साफ करोगे। सहर्ष रामाश्रय झा जी उनके प्रस्ताव को

स्वीकार कर लिया। इस तरह मंदिर में सुबह-शाम भोजन प्रसाद बर्तन आदि साफ करने का काम करना और बचे हुए समय में अपने गुरू के पास जाकर संगीत सीखने और अभ्यास करने का क्रम बनाया, इस तरह अभ्यास का निरंतर क्रम चलता रहा। पं. रामाश्रय झा संगीत गायन का सम्यक् ज्ञान, पं. भोलानाथ जी के सानिध्य में ही प्राप्त किया और यह लगभग 25 वर्षो तक चला, जिस दौरान संगीत गायन विधा की चार पट की गायकी जो ध्रुपद धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना आदि के रूप में होता है उसका विधिवत् ज्ञानार्जन किया।इसके अलावा क्षेत्रीय संगीत की विशिष्ट चीजें भी उन्होंने अपनी गायकी में बड़ी कुशलता के साथ जोड़ने का काम किया, वे साधिकार लोकगीत के विविध रूपों जैसे- कजरी, चैती, झूला आदि को भी कुशलता से गाकर श्रोताओं का ध्यान, मन मोहने में सफल होते थे।[3]

तीर्थ राज प्रयाग साधकों की साधना की भूमि और मनोकामना पूर्ण करने की भूमि जानी जाती है। यह पुण्य प्रभाव पं. रामाश्रय झा के जीवन में भी फलित हुआ। अध्यापन का जो क्रम 1955-56 ई. में लूकरगंज के एक संगीत विद्यालय में शुरू किया था वह बहुत जल्दी ही 1960 ई. में उन्हें प्रयाग संगीत समिति में प्रभाकर अर्थात् स्नातक की कक्षाओं के छात्रों को पढ़ाने का सुअवसर प्रदान कर दिया। बाद के समय में प्रभाकर तथा प्रवीण अर्थात् स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं में अध्यापन करने वाले शिक्षक के रूप में उनकी नियुक्ति का अवसर लाया। पं. रामाश्रय झा रामरंग की संगीत प्रतिभाओं एवं संगीत की सेवाओं से प्रभावित होने का दौर शुरू हुआ। उनकी ख्याति धीरे-धीरे बड़े फलक में फैलने लगी। इस क्रम में 1968 ई. में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत विभागाध्यक्ष प्रो. उदयशंकर कोचक की नजर इन पर पड़ी और वे उन्हें विभाग में अध्यापक पद पर नियुक्त किया। अपने अध्यापन काल में उन्होंने विभाग के अंदर कई ऐसे अद्वितीय कार्य किए जो उन्हें संकाय के संगीतज्ञों का ही नहीं वरन् छात्रों का सिरमौर बना दिया था जिसका परिणाम हुआ कि उन्हें इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति डी. आर. भट्टाचार्य महोदय, इस क्रम में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की एक टूटी हुई कड़ी को पुनजीर्वित करने का सुअवसर उनके हाथ लगा। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति डी. आर. भट्टाचार्य महोदय द्वारा 1930 ई. से ही प्रति वर्ष एक अखिल भारतीय स्तर पर संगीत सम्मेलन आयोजित किया जाता था। भट्टाचार्य महोदय के कुलपति न रहने के बाद लगभग 30-35 वर्षो से वह आयोजन बंद हो गया था। पं. रामाश्रय झा अपने कार्यकाल में उसे पुनः पुनर्जीवित करने का भगीरथ संकल्प लिया और उसे 1980 ई. में पुर्नआयोजित कर अखिल भारतीय स्तर पर एक बड़े संगीत सम्मेलन आयोजन करने का यश प्राप्त करने का अवसर पाया। इस आयोजन में देश के अनेक मूर्धन्य कलाकारों को अपनी अनूठी, अद्वितीय प्रतिभा प्रदर्शित करने का सुअवसर प्राप्त होने लगा। साथ ही संगीत के जिज्ञासुओं को वैसे सिद्धहस्त प्रतिभाओं के दर्शन का सुअवसर मिलने लगा। 1980 ई. से यूनिवर्सिटी के सिनेट हॉल में अखिल भारतीय स्तर का यह आयोजन बिना क्रम भंग हुए लगातार चलता रहा जिसमें देश स्तर के कई कलाकारों ने अपनी उपस्थिति देकर कार्यक्रम की गरिमा को बढ़ाया ऐसे स्वनाम रहे- अजय चक्रवर्ती (गायन), पं. जसराज (गायन), मानिक भिण्डे (गायन), राजन मिश्र - साजन मिश्र (गायन), डा. एन. राजम् (वायलिन), सुमित्रा गुहा (गायन), बृज नारायण (सरोद), पं. उमाशंकर मिश्र (सितार), मणिलाल नाग (नाग), डॉ. रामू

प्रसाद शास्त्री (वायलिन), पं. रत्नाकर व्यास (सरोद), मधुकर आनंद (कत्थक), काशीनाथ शंकर बोडरा (गायन), विदुषी कंकना बनर्जी (गायन) ।ये सारे नाम गायन, वादन तथा नृत्य के नामचीन हस्ती हुआ करते थे ।इन बड़े नामों के साथ-साथ अतिविशिष्ट व्यक्तित्व जो राष्ट्रीय फलक से बाहर निकलकर अन्तर्राष्ट्रीय संगीत क्षेत्र में भारतीय संगीत के प्रतिनिधि बन चुके थे वैसे स्वनाम धन्य कलाकारों को भी समय-समय पर संगीत आयोजन में अपनी कृपापूर्ण उपस्थिति देने के लिए पं. रामाश्रय झा जी ने आग्रह किया, आमंत्रित किया ।उनके आमंत्रण पर उस्ताद् विस्मिल्ला खाँ, उस्ताद अमजद अली खाँ जैसे कलाकार भी संगीत सम्मेलन की शान बढ़ाने के लिए अपनी उपस्थिति देते रहे,अब पं. रामाश्रय झा के अकादमीक जीवन में सीढ़ियाँ चढ़ने का क्रम शुरू हुआ, पदोन्नति का काम शुरू हुआ, एक अध्यापक से वे अब संकाय के अध्यक्ष बनाए गए। वर्ष 1980 में संगीत विभाग के गरिमामयी अध्यक्ष पद ग्रहण कर उसे दस वर्षो तक सुशोभित किया। 30 जून सन् 1989 में पं. रामाश्रय झा अपने अकादमिक दायित्व निर्वहन में भी पं. झा एक कुशल प्रशासक की भूमिका अदा करने में कहीं से भी कमजोर नहीं ठहरे ।इन कठिन दायित्व के निर्वहन में उनकी संगीत साधना कभी नहीं रूकी। वे हमेशा एक योग्य शिक्षक, योग्य गुरू, संगीतकार, रचनाकार के रूप में अपने मूल धर्म को जिन्दा रखने का काम किया। इतना ही नहीं अपने आकाशवाणी, दूरदर्शन जैसे मास मीडिया के क्षेत्र मे, प्रथम श्रेणी के कलाकार की हैसियत से संगीत को एक बड़ा आयाम देने का काम लगातार जारी रखा।

वस्तुत: संगीत जैसी कला और संस्कृति के महान उपादानों को निस्वार्थ और सहज सेवा भाव से जन-जन तक पहुँचा कर कला-संस्कृति को जिंदा रखने का जो प्रयास रामरंग जी किया, वह आपके नाद ब्रह्म उपासक, महर्षि सिद्ध करने वाला प्रतीत होता है ।आपके प्रयास से भारतीय शास्त्रीय संगीत न सिर्फ देश के विभिन्न हिस्सों में सुना जाने लगा, सराहा जाने लगा बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी एक नई पहचान स्थापित करने का गौरव हासिल हुआ ।आपका यह प्रयास,आपकी यह उत्कृष्ट कला साधना वर्षो तक कला के पथिकों के लिए पाथेय का काम करता रहेगा। आपने इस संगीत यात्रा को न सिर्फ मंचीय अथवा अभ्यासी गायन सीमाओं में ही कैद रहने दिया बल्कि उसे इन दायरों से बाहर निकालकर एक स्थायी रूप देने का काम किया और इस क्रम में आपकी रचनाएँ आज भी लोगों के लिए भारत की महान अध्यात्मिक पुस्तक, रामायण, महाभारत, गीता जैसी ग्रंथों की सूची में शामिल है। अभिनव गीतांजलि जो पाँच भागों में प्रकाशित है तथा संगीत रामायण जैसी अद्वितीय, अनुपम कृतियों की रचना के बावजूद आपकी सहृदयता, सदासियता और सरलता जिस रूप में बनी रही वह आपके एक महान संगीत और कला के शिखर पुरूष की उपाधि से विभूषित करता है।

संदर्भ सूची –

1. गर्ग लक्ष्मी नारायण (सं.), आलेख-टॉक प्रो. मायारानी, संगीत, कार्यालय, हाथरस (उ0प्र) वर्ष-2011, अंक-1, पृ.सं.-09
2. गर्ग लक्ष्मी नारायण (प्र.सं.), आलेख- डॉ. राम शंकर, संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.) वर्ष - 2011, अंक-01, पृ. 5
3. गर्ग लक्ष्मी नारायण (प्र.सं.), आलेख - डॉ. रामशंकर, संगीत संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), वर्ष 2011, अंक - 01, पृ. (58-59) से उद्धत

भरतमुनि संगीत

इतिश्री साहू

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कुछ चीजों का वर्णन नहीं किया है—

1. जाति का वर्णन तो किया है किन्तु राग का वर्णन नहीं किया।
2. षड्ज व मध्यम ग्राम का वर्णन किया किन्तु गांधार ग्राम का वर्णन नहीं किया।
3. नौ रस में से केवल आठ रसों का वर्णन किया किन्तु शांत रस का वर्णन नहीं किया।

भरतमुनि का चतु:सारणा :-

भरत कालीन संगीत मे केवल दो ग्राम—

षड्ज और मध्यम ग्राम प्रचलित थे। भरतमुनि ने उन्हें आधार बनाकर 'चतु:सारणा' का प्रतिपादन किया। ये सारणाएं अब तक ज्ञात प्रथम सारणाएं हैं इसलिए हम भरतमुनि को ही प्रथम व्यक्ति कहते हैं जिसने सारणा का वर्णन किया। उन्होंने षड्ज और ग्राम के आधार पर चार सारणाएं बनाई। जिनसे उन्होंने षड्ज ग्राम के सभी 7 स्वर प्राप्त किए। उन्होंने दो वीणाएं ली, जिनमें से एक चल वीणा थी और दूसरी अचल वीणा थी । अचल पर उन्होंने षड्ज ग्राम की स्थापना की तथा चल पर भी उन्होंने षड्ज ग्राम की स्थापना की। उसके पश्चात चल वीणा के एक श्रुति उतार कर उसे माध्यम ग्राम बनाया। अब इस मध्यम ग्राम के पंचम से, षड्ज ग्राम के षड्ज पंचम भाव की स्थापना करने के लिए षड्ज ग्राम की भी एक श्रुति उतारा तथा उसी प्रकार अन्य रे ग म ध नि स्वरों को भी उनके संवादानुसार एक-एक श्रुति उतार दिया। इससे उन्हें फिर से षड्ज ग्राम प्राप्त हुआ किन्तु कोई स्वर न प्राप्त हुआ । यही क्रिया दूसरी बार करने पर उन्हें दो स्वर रे और ध प्राप्त हुए । तीन बार फिर इन्हें दो स्वर - स और प प्राप्त हुए तथा चौथी बार में अन्य शेष तीन स्वर- ग, म तथा नि प्राप्त हो गए। इन क्रियाओं को सारणा कहा तथा क्योंकि चार सारणा द्वारा ही सभी 7 स्वर प्राप्त हो गए अत: इसे चतु: सारणा नाम दिया गया। सभी सारणाएं इस प्रकार है:-

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22
षड्जग्राम		स			रे			ग			म			प			ध			नि		
मध्यमग्राम		स			रे			ग			म			प			ध			नि		

प्रथम सारणा				द्वितीय सारणा			
मध्यम ग्राम बनाना		षड्ज ग्राम बनाना		मध्यम ग्राम बनाना		षड्ज ग्राम बनाना	
1	12	1	12-म	1	12-म	1	12
2	13- म	2	13	2	13	2-स	13
3	14	3-स	14	3-स	14	3	14
4- स	15	4	15	4	15-प	4	15-प
5	16- प	5	16-प	5	16	5-रे	16
6	17	6-रे	17	6-रे	17	6	17
7- रे	18	7	18	7	18	7-ग	18-ध
8	19	8-ग	19-ध	8-ग	19-ध	8	19
9- ग	20-ध	9	20	9	20	9	20-नि
10	21	10	21-नि	10	21-नि	10	21
11	22-नि	11	22	11	22	11-म	22

तृतीस सारणा				चतुर्थ सारणा			
मध्यम ग्राम बनाना		षड्ज ग्राम बनाना		मध्यम ग्राम बनाना		षड्ज ग्राम बनाना	
1	12	1-स	12	1-स	12	1	12
2-स	13	2	13	2	13-पा	2	13-प
3	14-प	3	14-प	3	14	3-रे	14
4	15	4-रे	15	4-रे	15	4	15-प
5-रे	16	5	16	5	16	5-ग	16-ध
6	17	6-ग	17-ध	6-गा	17-ध	6	17
7- ग	18-ध	7	18	7	18	7	18-नि
8	19	8	19-नि	8	19-नि	8	19
9	20-नि	9	20	9	20	9-मा	20
10	21	10-म	21	10-मा	21	10	21
11-म	22	11	22	11	22	11-म	22-स

नाट्यशास्त्र

ग्रंथकार :- नाट्यशस्त्र अब तक प्राप्त संगीत के प्रामाणिक ग्रंथों में से सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है। नाट्यशस्त्र ग्रंथ का मुख्य विषय जबकि नाट्य अर्थात नाटक है किंतु इसके 36 अध्यायो मे से 28 से 36 तक के अध्यायों मे संगीत विषयक सामग्री भी उपलब्ध होती है। क्योंकि यह एक अति प्राचीन ग्रंथ है अत: हमें इसके लेखक के विषय मे स्पष्ट रूप से कुछ भी ज्ञात नही होता। हमें ग्रंथकार के विषय में केवल यह पता है कि उसका नाम भरत था । किंतु आधुनिक काल के कुछ विद्वानों का मत है कि इस महान ग्रंथ

का रचयिता कोई एक व्यक्ति न हो कर वरन अनेक व्यक्ति हैं, जो कि नाट्य से संबधित थे। इन विद्वानो के अनुसार नाट्य मे भाग लेने वाले पात्रों को भरत कहा जाता था और इन सभी प्राचीन नाट्य पात्रों में से कुछ ने मिलकर अपने अनुभव एक स्थान पर लिखे जिसके फलस्वरूप नाट्यशस्त्र ग्रंथ का निर्माण हुआ । इन विद्वानो के अनुसार यह ग्रंथ अनेक पीढ़ियों की कठिन साधनाओं का फल है न कि किसी एक नाट्य पंडित भरत मुनि के साधना का।

रचनाकाल:- विद्वानों के मतानुसार नाट्यशस्त्र का रचनाकाल ई.पू. 5वीं शदी से 5वीं शदी के बीच मे कही है किन्तु कुछ के अनुसार इसका काल 200 से 300 ई.पू. के मध्य है तथा कुछ के मतानुसार भरत का काल ईसा से पूर्व 500 शदी था। किन्तु यदि इनकी सरल भाषा को देखकर कुछ विद्वानो ने दृढ़ता से इसे 200 से 300 ई.पू. का ग्रंथ माना है।

नाट्यशास्त्र में संगीत:- नाट्यशास्त्र काल में संगीत कला के लिए गंधर्व संज्ञा थी । इसके अंतगर्त गायन वादन तथा नर्तन तीनों कलाओं का अंर्तभाव था। उस काल में गंधर्व कला को सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

नाट्यशास्त्र में जाति गायन का वर्णन किया गया है किन्तु राग का विवेचना नहीं मिलता। भरत मुनि ने इन जातियों की संख्या 18 बताई हैं। उन्होंने ग्राम के विषय मे भी लिखा है। उनके अनुसार दो ग्राम हैं षड्ज और मध्यम। किन्तु उन्होंने गांधार ग्राम का उललेख नहीं किया। इसी प्रकार उन्होंने रसों की संख्या 8 मानी है। उन्होंने शांत रस का वर्णन नही किया। इस सब से तीन मुख्य बातें स्पष्ट होती हैं- 1. भरत काल मे राग की उत्पत्ति नहीं हुई। 2. गांधार ग्राम या तो उस काल मे लुप्त हो चुका था या उसका विशेष महत्व नहीं रह गया था। तथा 3. भरत ने नाट्य के उपयोगी केवल 8 रस माने हैं।

नाट्यशास्त्र:-नाट्यशास्त्र मूल रूप से नाट्य आधारित ग्रंथ है। ऐसा इसके नाम से ही विदित हो जाता है। नाट्यशास्त्र में कुल 36 अध्याय है। इनमें से प्रथम 27 अध्याय नाट्यशास्त्र के विविध विषयों, जैसे नाट्य के लिए किस प्रकार की भूमि चाहिए जिस पर नाट्यशाला बनेगी। नाट्यशाला किस समय पर व किस रूप में बने?, नाट्यशाला का मंच कैसा हो, पात्र कैसे हो? आदि, तथा नाट्यशास्त्र के प्रादुर्भाव के विषय में लिखा है। तथा 28 से 36 तक के 8 अध्यायों में संगीत विषयक सामग्री मिलती है। क्योंकि भरत ने संगीत को नाट्य का एक अंग माना है, इसलिए उन्होंने अपने काल में प्रचलित संगीत - विषयों के बारे में यथा सम्भव लिखा है। नाट्यशास्त्र में संगीत के विषय में सर्वप्रथम ऐसी विवेचना की गई अत: इसे संगीत का आदिग्रंथ भी कहा जाता है ।

चतु:सारणा विवेचना:- भरत ने केवल संगति के विषयों का वर्णन मात्र ही नहीं किया वरन उन्होंने संगीत के क्षेत्र में एक बहुत महत्वपूर्ण खोज भी की है। उन्होंने चतु: सारणा विधि यह सिद्ध किया कि एक ग्राम में कुल 22 श्रुतियां होती है। इसी के साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि प्रत्येक स्वर की कितनी श्रुतियां हैं। सारणा विधि का प्रतिपादन भी उन्होंने ही किया ऐसा माना जाता है, क्योंकि वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सारणाएं बनाई।

प्रथम सारणा:- भरत ने श्रुति संख्या सत्यापित करने के लिए एक प्रयोग किया, जिसे सारणा विधि कहा गया। इस सारणा विधि का वर्णन उन्होंने नाट्यशास्त्र ग्रंथ में किया है वह इस प्रकार है:-

ऐसी दो वीणाएं लेनी चाहिए जिनकी लंबाई-चौड़ाई समान हो, जिनकी तंत्रियां अर्थात तारों की

संख्या, लंबाई व मोटाई समान हो, जिनका बजाने का दण्ड समान हो तथा दोनों की मूर्छनाएं भी समान हो। किन्तु उनमे से एक ध्रुव या अचल वीणा हो तथा दूसरी चल वीणा हो। अब दोनों पर षड्ज ग्राम की स्थापना करनी चाहिए। अब चल वीणा के पंचम को ऋषभ के संवाद के द्वारा, एक श्रुति उतारनी चाहिए। इससे चल वीणा पर मध्यम ग्राम की स्थापना हो गई। इस षड्ज ग्राम के पंचम से मध्यम ग्राम के पंचम के अंतराल को भरत मुनी ने प्रमाण श्रुति कहा है। अब चल वीणा के प्रत्येक स्वर को श्रुति उतार कर फिर से उसे षड्ज ग्राम बना लेना चाहिए। इस समय चल वीणा का पंचम अचल वीणा की दृष्टि से मध्यम ग्राम का तथा चल वीणा की दृष्टि से षड्ज ग्राम का होगा तथा चल वीणा का प्रत्येक स्वर अचल वीणा के प्रत्येक स्वर से एक श्रुति नीचे होगा। इस एक श्रुति अंतर को 'प्रणाम श्रुति' इसलिए कहते हैं क्योंकि यह कम से कम सुनाई देने वाले ध्वनि वैलक्षण्य का प्रमाण है। यह प्रथम सारणा थी, किन्तु इस सारणा से भरत को कोई स्वर प्राप्त नहीं हुआ। अत: उन्होंने अब दुसरे सारणा बनाई।

दूसरी सारणा:- दुसरी सारणा बनाने के लिए भरत ने पुन: चल वीणा के पंचम को एक श्रुति उतारा । अब चल वीणा के स्वर अचल वीणा के स्वरों से दो श्रुति नीचे आ गए। ऐसा करने पर चल वीणा के गांधार और निषाद ध्रुव वीणा के ऋषभ और धैवत की श्रुतियों में प्रवेश कर गए। इससे भरत ऋषभ और धैवत तो प्राप्त किये ही साथ ही यह भी सत्यापित कि गांधार व निषाद की दो-दो श्रुतियां हैं। अब भरत ने तीसरी सारणा बनाई ।

तीसरी सारणा:-प्रथम, द्वितीय सारणाओं की ही भांति भरत ने तृतीय सारणा बनाई। जिसके कारण चल वीणा के सभी स्वर ध्रुव वीणा के स्वरों से तीन श्रुति नीचे पहुंच गए। ऐसा करने पर भरत ने पाया कि अब चल वीणा के ऋषभ और धैवत अचल वीणा के षड्ज और पंचम की श्रुतियों में प्रवेश कर गए। ऐसा करने से भरत को षड्ज तथा पंचम प्राप्त हो गए तथा उन्हें सत्यापित कर दिया कि ऋषभ तथा धैवत की तीन तीन श्रुतियां हैं। इसके बाद भरत ने चौथी सारणा बनाई

चौथी सारणा:- प्रथम तीन सारणाओं की ही भांति भरत ने जब चल वीणा के प्रत्येक स्वर को चौथी बार उतारा तो वे सभी स्वर ध्रव वीणा के सभी स्वरों से चार श्रुति नीचे पहुचे। इस बार चल वीणा के मध्यम, पंचम तथा षड्ज अचल वीणा के गांधार, मध्यम तथा निषाद की श्रुतियों में प्रवेश कर गए। इस प्रकार भरत ने सत्यापित कर दिखाया कि षड्ज, मध्यम तथा पंचम की चार-चार, ऋषभ और धैवत की तीन-तीन (तीसरी सारणा से) तथा गंधार और निषाद की दो-दो (दूसरी सारणा से) श्रुतियां हैं। तथा यह भी सत्यापित कर दिखाया कि एक ग्राम मे कुल 22 श्रुतियां ही है, इससे अधिक या कम नहीं।

भरत ने यह सत्यापित करने के लिए कि एक ग्राम में 22 श्रुतियां होती हैं, चार सारणीयां बनाई। अत: इस चार सारणा विधि को चतु: सारणा विधि कहा गया।

जाति

जाति:-भरत के काल में आज के समान राग गायन नहीं था। उस काल मे राग की जननी जाति का गायन-वादन होता था। किन्तु भरत ने जाति का उल्लेख नट्यशास्त्र में तो किया परंतु उसकी परिभाषा नहीं दी। विद्वानों के अनुसार जाति, परम्परागत स्वरावलियों तथा छुनों का ऐसा वर्गीकृत समूह है जो सुनने में रंजक तथा विशिष्ट होता है। तथा ये स्वरावलियां अर्थात

स्वर समूह जाति के लक्षणों से युक्त होते हैं। विद्वानों के मतानुसार रागों की जननी होने के कारण इसका नाम जाति पड़ा। विद्वानों ने जाति के जो 10 लक्षण बताएं है वे इस प्रकार हैं:-

जाति के लक्षण:-

1. ग्रह:- भरतानुसार ग्रह वह स्वर है जिससे गान प्रारम्भ होता है। यह अंश स्वर ही है। अर्थात जिस विशिष्ट अंश स्वर से गान प्रारम्भ होता है वह ग्रह स्वर कहलाता है

2. अंश:- भरत ने जातियों में अंश स्वर को सर्वाधिक महत्व दिया है तथा इसके 10 लक्षण बताएं हैं:-1) इसमे राग का निवास हो 2) इससे राग का आविर्भाव होता हो, 3-4) वह तार तथा मंद्र अवधि का नियामक हो, 5) सभी स्वर समूहों मे उसका प्रयोग सर्वाधिक हो तथा उसके सम्वादि तथा अनुवादी स्वर भी प्रवल हो, 6,7,8,9 - 10) जो ग्रह, अपन्यास, विन्यास, सन्यास तथा न्यास के माध्यम से समस्त जाति को परिवेष्टित करता हो।

शुद्ध जातियों मे अंश स्वर अनिवार्य रूप से एक ही होता है तथा जाति का न्यास भी उसी पर किया जाता है। विकृत जातियों में अंश स्वर अनेक हो सकते हैं।

3-4 तार तथा मंद्र:-तार सप्तक मे अधिकतर उंचा जाने का अंतिम स्वर तार तथा मंद्र सप्तक में न्यूनतम नीचे का अंतिम स्वर मंद्र स्वर कहलाता हैं।

संगीत रत्नाकर की टीका में कल्लीनाथ ने लिखा है कि अंश स्वर से चौथे, पांचवे या सातवें स्वर तक तार स्थान में जा सकते हैं तथा मंद्र में तीन प्रकार से जा सकते हैं। अंश तक न्यास तक अथवा अपन्यास तक।

भरत ने अंश स्वर तक ही मंद्र में जाना स्वीकारा है क्योंकि उनके अनुसार अवरोह में अंश स्वर से पीछे मंद्र नहीं होता क्योंकि तीनों स्थानों मे (सप्तकों) मे अंश ही आरम्भ स्वर होता है ।

5-6 न्यास और अपन्यास: - न्यास, अपन्यास, विन्यास और सन्यास की परिभाषा नाट्यशास्त्र में उपलब्ध नहीं है । किन्तु विद्वानों के अनुसार जाति गायन जिस स्वर पर समाप्त हो वह न्यास स्वर तथा जिस स्वर पर गति के विभिन्न खंड समाप्त हों वह अपन्यास स्वर कहलाता है। 18 जातियों मे कुल 21 न्यास स्वर तथा 56 अपन्यास स्वर बताए गए हैं।

7-8 अलपत्व और बहुत्व:- अलपत्व और बहुत्व दोनों ही जाति के लक्षण हैं। अलपत्व अर्थात कम/किसी स्वर को कम लगना या दिखाना अलपत्व कहलाता है। यह दो प्रकार से होता है- लंधन द्वारा अर्थात जिस स्वर को कम दिखाना है उसे लांध कर तथा अनाभ्यास द्वारा अर्थात जिस स्वर को कम दिखाया है। उसे बार बार प्रयोग न करके।

बहुत्व का अर्थ है अधिक । किसी स्वर को अधिक प्रयोग करना स्वर का बहुत्व कहलाता है। यह भी दो प्रकार से होता है- अलंघन द्वारा अर्थात उस स्वर को कभी ना लांध कर उसे अनिवार्य रूप से कहकर। तथा अभ्यास द्वारा अर्थात उस स्वर को बार-बार प्रयोग करके ।

9-10. षाड्वत्व तथा औडवत्व:- 6 स्वरों से युक्त जाति षाडव तथा 5 स्वरों से युक्त जाति औडव जाति कहलाती है।

भरत के अनुसार षड्ज तथा मध्यम ग्राम की शुद्ध तथा विकृत कुल 18 जातियां है। इनमें से 7 षड्ज ग्राम की तथा 11 मध्यम ग्राम की जातियां है। जाति के ये सभी लक्षण राग पर भी लक्षित होते हैं।

जति के भेद

जति के दो भेद कहे गए है- शुद्धा और विकृता।

1. शुद्धा जातियां - षड्ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम की कुल मिलाकर 7 शुद्ध जातियां मानी गई हैं। इन सात शुद्ध जातियों के नाम सात स्वरों से ही लिए गए हैं। इन जातियों के नाम क्रमश: षाड्जी, आर्षभी, गंधारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती और नैषादी या निषादवती हैं। इनमें से षाड्जी, आर्षभी, धैवती और निषादवती, ये चार जातियां षड्ज ग्राम की तथा शेष तीन- गंधारी, मध्यमा तथा पंचमी मध्यम ग्राम की शुद्धा जातियां है।

● **शुद्ध जाति लक्षण:-** भरत ने इन शुद्ध जातियों के लक्षण इस प्रकार कहें हैं:-

क) जिनके आरोह-अवरोह सम्पूर्ण हो।

ख) जिस स्वर से, जिस जाति का नाम लिया गया हो, वही स्वर उस जाति का ग्रह, अंश तथा न्यास स्वर हो ।

ग) शुद्धा जातियों में न्यास स्वर मंद्र में होना चाहिए। यहां मंद्र से अभिप्राय, उस स्वर विशेष से है जिस पर मंद्र सप्तक पूर्ण करते हैं, न कि मंद्र सप्तक से / अर्थात मध्य षड्ज।

1. विकृत जातियां:- भरतानुसार शुद्धा जातियों के लक्षणो में से 'न्यास' को छोड़कर एक या अधिक लक्षणों मे विकार करने से विकृता जाति बनती है। विकृता जातियां दो प्रकार से बनती हैं:- 1) एक या दो स्वरों को वर्जित करके अर्थात औडव या षाड्व प्रकार बनाने से तथा 2) जिस स्वर से जाति का (शुद्धा) नामकरण हुआ हो, उसे अंश, ग्रह अपन्यास मानने के नियम को भंग करके। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि न्यास - स्वर के नियम का उल्लघंन कभी नहीं होता है। विकृता जातियों की संख्या के विषय में भरत ने नही लिखा है । किन्तु "संगीत रत्नाकर" नामक ग्रंथ मे लिखा है कि ग्रह, अंश, अपन्यास नियम भंग करने से 49 तथा औडवषाडवादि नियम से 104 विकृता जातियां बनती हैं। अर्थात कुल 153 विकृता जातियां हैं।

2. संसर्गजा विकृता जातियां:- शुद्धा जातियों के इन विकृत भेदों के अलावा भरत ने 11 अन्य विकृत जातियां कही हैं, जो विकृता जातियों से भिन्न हैं । इन्हें बनाने की विधि के विषय मे भरत ने कहा कि इन्हें शुद्धा जातियों के परस्पर संयोग से बनाया जाता है। यहां ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि ये जातियां केवल शुद्धा जातियों के संसर्ग से बनती हैं न कि शुद्धा मे विकृता जातियों के संसर्ग से । इस प्रकार बनी हुई जातियां "संसर्गता विकृता जातियां कहलाती हैं। ये जातियां शुद्धा जातियों के संसर्ग के कारण विकृत होती हैं।

इन 11 जातियों में से तीन षड्ज ग्राम की तथा 8 अन्य मध्यम ग्राम की जातियां हैं। षड्ज ग्राम की संसर्गता विकृता जातियों के नाम इस प्रकार हैं:- षड्जमध्यमा, षड्जोदिच्यवा तथा षड्जकौशिकी । मध्यम ग्राम की संसर्गजा विकृता जातियां निम्न है:- गान्धारोदीच्यवा, मध्यमादीच्यवा, रक्तगांधारी, आन्ध्री, नन्दयन्ती, गांधारपंचमी, कर्मारवी तथा कौशिकी। इन सभी 11 संसर्गजा विकृता जातियों को बनाने के लिए जिन शुद्धा जातियों का संसर्ग किया गया वे निम्न तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है:-

संसर्गजा विकृता जातियां	ग्राम	संसर्गजा शुद्धा जातियां
1. षड्जमाध्यमा	षड्ज	षाड्जी + मध्यमा
2. षड्जोदिच्यवा	षड्ज	षाड्जी+गान्धारी+ धैवती
3. षड्जकैशिकी	षड्ज	षाड्जी+गान्धारी
4. गान्धारोदीच्यवा	मध्यम	षाड्जी + गान्धारी+धैवती+मध्यमा

5. मध्यमादीच्यवा	मध्यम	गान्धारी+पंचमी+धैवती+मध्यमा
6. रक्तगंधारी	मध्यम	गान्धारी+पंचमी+नैषादी + मध्यमा
7. आन्ध्री	मध्यम	गान्धारी + षाड्जी
8. नन्दयती	मध्यम	गान्धारी+पंचमी+आर्षभी
9. गांधारपंचमी	मध्यम	गान्धारी+पंचमी
10. कर्मारवी	मध्यम	नैषादी + आर्षभी + पंचमी
11. कैशिकी	मध्यम	षाड्जी + गान्धारी + मध्यमा+पंचमी + नैषादी

इन सभी सात शुद्धा तथा ग्यारह संसर्गता विकृता जातियों को नाट्यशास्त्र में, स्वरों की संख्या की दृष्टि से तीन प्रकार से विभाजित किया गया है, जो निम्न है:- क) सम्पूर्ण अर्थात सात स्वर वाली ख) षाड्व अर्थात स्वर वाली तथा ग) औड्व अर्थात 5 स्वर वाली।

जातियों का स्वरगत विभाजनः-

1. जो जाति सदा सम्पूर्ण अर्थात 4 स्वरों से युक्त रहती हैं वे नित्य सम्पूर्ण जाति या नित्यपूर्णा जाति कहलाती है। इनकी संख्या 4 है - क) षड्जकैशिकी ख) मध्यमादीच्यवा ग) कर्मारवी घ) गांधारपंचमी।

2.जो जाति 6 स्वरों से युक्त होने वाली होती है वे षड्ज जाति कहलाती है। इनकी संख्या 4 है- क) षाड्जी ख) गान्धारोदीच्यवा ग) आन्ध्री घ) नन्दयन्ती ।

3. जिस जाति मे 5 स्वर होते हैं वह औड्व जाति कहलाती है। इनकी संख्या 10 है- क) आर्षभी ख) गान्धारी ग) मध्यमा घ) पंचमी ड़) धैवती च) नैषादी छ) षड्जोदिच्यवा ज) षड्जमध्यमा झ) रक्तगंधारी तथा ञ) कैशिकी।

गीति

गीतिः- पद, ताल, लय, स्वर आदि से युक्त गानक्रिया गीति कहलाती है। भरत के अनुसार गीतियों का अंतर्भाव गानन्धर्व के अन्तगर्त है। शाड्गदेव के अनुसार वर्ण, पद तथा लय से समन्वित गानकिया 'गीति' कहलाती है।

गीतियों के दो प्रकार कहे गए हैं— स्वराश्रिता गीतियां तथा पदाश्रिता गीतियां।

गीतियों के दो प्रकारः-

1. पदाश्रिता गीतियांः-पदों के प्रयोग के विषय में बताने वाली तथा पदों पर आश्रित गीतियां पदाश्रिता गीतियां हैं। इनमें पद की प्रमुखता रहती है।

2. स्वराश्रिता गीतियांः- स्वरों के प्रयोग के विषय में बताने वाली, स्वरों पर अश्रित तथा स्वरों की प्रमुखता वाली गीतियां स्वराश्रिता गीतियां है।

भरत ने केवल पदाश्रिता गीतियां की ही व्याख्या की है।

स्वराश्रिता गीतियां पांच हैं- **शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरी तथा साधारणी।** भरतोक्त चार पदाश्रिता गीतियां इस प्रकार हैं-

वृतियों के प्रकार :- वृति गायन तथा वादन की एक विशिष्ट शैली है। वृतियाँ त्रिविध बताई गई हैं- चित्रा, वार्तिक तथा दक्षिणा।

1. चित्राः-मागधी, अर्धमागधी, सम्भाविता तथा पृथुला।

द्रुत लय, सम यति तथा अनागत ग्रह "चित्रा" वृति की विशेषताएं है। इसमें बाघ की अपेक्षा

गायन का प्राधान्य होता है। इसमें दो कलाएं होती है। (एक कला मे दो मात्राएं होती है)

2. वार्तिक: -वार्तिक वृति में गान तथा वाद्य का समान स्थान होता है। मध्य लय, स्रोतोगता यति तथा द्विकल ताल इसकी विशेषताएं है। इस शैली मे चार कलाएं होती हैं।

3. दक्षिणा -दक्षिणा वृति में विलम्बित लय, गोपुच्छा यति तथा चतुष्कल ताल की प्रधानता होती है। इसमें आठ कलाएं होती है।

श्रिता गीति के भेद:- पदाश्रिता गतियां के चार भेद हैं:-

1. मागधी गीति:- मागधी गीति शैली, भिन्न वृति में गाई जाती थी। इस गीत शैली का गायन भिन्ना अर्थात विभिन्न लय खंडों में करते थे। अर्थात गीत के प्रथम खंड का गान विलम्बित लय में, द्वितीय खंड का गान मध्य लय में तथा तृतीय तथा अंतिम खंड का गान द्रुत लय में किया जाता था।

2. अर्धमागधी गीति:- मागधी की अपेक्षा अर्धकाल में अर्थात द्रुत लय में गाई जाने वाली गीति अर्धमागधी गीति कहलाती है। इसे गाते समय इसके द्वितीय खंड का प्रारम्भ प्रथम खंड के अंतिम अक्षर से तथा तृतिय खंड का प्रारम्भ द्वितिय खंड के अंतिम अक्षर से होता था।

3. सम्भाविता गीति:- गुरू अक्षरों से युक्त गीति सम्भाविता गीति कहलाती थी।

4. पृथुला गीति-पृथुला गीति मे लघु अक्षर होते थे। ये हस्व स्वर भी कहलाते हैं

ध्रुवा गीति

ध्रुवा गीति:- नाट्यशास्त्र के ध्रुवा गीति के 32वें अध्याय में ध्रुवा गीतों का स्पष्ट तथा विस्तार पूर्वक उल्लेख है भरतानुसार छंद, पद तथा वृत की विशिष्ट रचना ध्रुवा - गीतों के निर्माण में सहायक होती है। गीति का आधार ही निबद्ध पदसमूह हैं तथा यही पदसमूह - जाति, सम तथा अर्धसम आदि प्रकार प्रमाण, स्थान तथा नाम, इन पांचों अंगो से ध्रुवा गीतों का निर्माण करते हैं।

ध्रुवा - गीत में स्वर, ताल तथा पद तीनों का समान योगदान रहता है। वर्ण, अलंकार, लय, यति, उपपाणि, भाषा, प्रमाण, काल इन अंगों के पारस्परिक निश्चित अर्थात ध्रुव सम्बंध के कारण इनको 'ध्रुवा' कहा जाता है।

प्रागैतिहासिक संगीत - (ई.पू. 3000)

डॉ. श्रुति शाश्वत उपाध्याय

सारांश

"यद्यपि इतिहास के आरम्भ से पूर्व के आखेटक व कृशक सम्प्रदाय के काल को हम प्रागैतिहासिक काल समझते हैं, किन्तु यह समयकाल कितना विस्तृत था इस विशय पर अनेक मतभेद पाये जाते हैं।" "डॉ. एन्ड्रीज़ लोमेल का मत है कि मानव जाति का अभ्युदय ईसा पूर्व अठारह लाख वर्श पहले हुआ था। यह बात उन्होंने डॉ. लीकि के द्वारा किये गये खनन कार्य से प्राप्त जीवा म पर परीक्षण के बाद निकाले गये निश्कर्श के आधार पर कही है" "यह युग कितना प्राचीन हैं इस सम्बन्ध में मनीशियों में पर्याप्त मतभेद है।

सूचक शब्द : *सभ्यता, प्रोगैतिहासिक, वैदिक, मृत्तिका, ताण्डव, उत्खनन, अवशेष।*

"इस सभ्यता का काल सर जॉन माराल और उनके अनुयायियों के अनुसार ईसा से पूर्व 5000 भाती से लेकर 3000 भाती तक है। डॉ. राधामुकुंद मुखर्जी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू सिविलिजेन' में इस सभ्यता का काल ईसा पूर्व 3250-1750 वर्श माना है।"[3]

विद्वानों में इस बात को लेकर पर्याप्त मतभेद है कि यह सभ्यता वैदिक है अथवा वैदिक काल के पूर्व।

"सर जॉन माराल, राखाल दास, बन्दोपाध्याय, राय बहादुर दयाराम साहनी फादर हेरास, पिगट इत्यादि विद्वान् इसको प्राग्वैदिक मानते हैं।"

डॉ. लक्ष्मण स्वरूप, स्वामी भांकरानन्द इत्यादि विद्वानों का मत है कि यह सभ्यता वैदिक ही थी।

अवैदिक मानने वालों का मत है कि भारतीय सभ्यता, पचमी, (एया) सभ्यता की ही देन जो मेसोपोटामिया, ऊर कैल्डिया, बेबीलोन आई स्थानों से होती हई भारत में आकर स्थापित हुई। वहीं इस काल को वैदिक मानने वालों की धारणा है कि आर्यों के भारत आगमन के पूर्व ही यह सभ्यता पनप चुकी थी।

"एच.सी. ब्रेक के अनुसार - सिन्धु सभ्यता भारत की निजी सभ्यता थी। यह विदेशा से नहीं आई।"

वहीं राधामुकुंद मुकर्जी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू सिविलिजेशन - भाग 1 के उपसंहार में कहा है-

सिन्धु सभ्यता मानव की ही सृष्टि है। वह एक निजी, स्वतंत्र सभ्यता का विस्तार है, मेसोपोटामिया सभ्यता की भाखा नहीं है।"[5]

(इसी पुस्तक में पृ. 32) एक अन्य स्थान पर राधामुकुंद मुकर्जी के अनुसार- "ऋग्वद में अनार्यों के सम्बन्ध में जो विवरण प्राप्त है, उसी का प्रत्यक्ष प्रमाण सिन्धु सभ्यता में पाया जाता है अत: यह स्पष्ट है कि सिन्धु सभ्यता वैदिक

सहायक प्रवक्ता (संगीत गायन), सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

सभ्यता से बहुत प्राचीन नहीं तथा दोनों परस्पर सूत्र में आबद्ध हैं।"[6]

प्रागैतिहासिक काल में मानव गुफाओं में झुण्ड बनाकर रहते थे तथा विविध हिंसक जीव-जन्तुओं तथा प्राकृतिक प्रकोप से सदा ही आतंकित रहते थे। इस आतंक से मुक्ति पाने हेतु वह प्रकृति तथा अनेक जीव जन्तुओं की पूजा किया करते थे जैसे सूर्य, आकाश पृथ्वी, वृक्ष, सिंह, सर्पादि। इस पूजा अर्चना का प्रधान अंगनृत्य व गीत था।

"सिन्धु सभ्यता में उपलब्ध लिंगादि आकृतियों तथा अन्य मूर्तियों से स्पष्ट है कि उनकी धर्म साधना में मूर्तिपूजा तथा वृक्षादि वस्तुओं की आराधना अन्तर्भूत थी। विद्वानों के अनुसार शिवलिंगों से साम्यता रखने वाली आकृतियों से स्पष्ट है कि भारत में प्रचलित भाव-परम्परा का प्रवर्तन इसी काल में हो चुका था। मोहनजोदड़ों में एक ध्यानमग्न योगी की मूर्ति उपलब्ध है, जिसमें योगी की दृष्टि नासाग्र पर केन्द्रित है।"[7] मोहनजोदड़ों में उत्खनन से अनेक कला वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं।

"उनमें मृत्तिका और काँसे की कुछ मूर्तियाँ भी सम्मिलित है। इन काँस्य मूर्तियाँ में एक मूर्ति ऐसी है, जिसमें नृत्य करती तन्वंगी युवती अंकित हैं इस तन्वंगी नर्तकी की समीक्षा करने वाले विद्वानों ने यह सिद्ध किया है प्रागैतिहासिक मानव ललित कलाओं के प्रति बड़ा अनुरागी था और नृत्यकला के क्षेत्र में उसकी अभिरुचि बड़ी परिश्कृत हो चुकी थी। मोहनजोदड़ों की यह नृत्यांगना भारतीय कला इतिहास की प्रथम मूल्यवान उपलब्धि है।"[8]

"जो कि सम्प्रति दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में रखी हुई है। गले में हँसुली और बायें हाथ की कलाई पर बाजुओं तक चूड़ी पहने यह अनावृत नर्तकी अपनी कमर पर एक हाथ टिकये हुए ऐसी मुद्रा में खड़ी है, मानो अभी थिरक उठेगी।"[9]

"इसकें हाथ और पैर सारी मूर्ति के अनुपात से कुछ बड़े है । पैर कुछ आगे की ओर बढ़े हैं जिससे स्पश्ट होता है कि वह पैर से ताल दे रही है।"[10]

"मृत्तिका की एक अन्य मुद्रा में एक देवता की मूर्ति योगासन करती हुई अंकित है जिसमें दोनों ओर सर्पों को अंजलि मुद्रा में स्तवन करते हुए बताया गया है। एक अन्य मूर्ति में तीन मुख तथा तीन नेत्रों का अंकन हुआ है। मूर्ति योगासन की मुद्रा में ही है तथा अन्य पशुओं से परिवेष्टित है। विचारकों के मत से यह 'पपति' का प्राथमिक स्वरूप है।"[11]

लरकाना के पर्वतीय खण्डहरों की खुदाइयों में शंकर की ताण्डव करती हुई काँसे की बनी मूर्ति व नृत्य की मुद्रा में नग्न स्त्री की मूर्ति उपलब्ध हुई। इन खण्डहरों की दीवारों पर संगीत से सम्बन्धित कतिपय चित्र भी अंकित हैं। एक मिट्टी की मूर्ति प्राप्त हुई, जिसके गले में ढ़ोल जैसा वाद्य जैसा लटक रहा है। इन प्राचीन मूर्तियों की मुद्राओं तथा चित्रों से सिद्ध होता है कि इस प्रदेश के निवासी स्वभाव से ही संगीत कला के प्रेमी रहे हैं। ढोल बजाती मूर्ति हुई इस बात की पुष्टि करती है कि उस प्राचीन युग में वाद्य वादन भी प्रचलित था।"[12]

"हड़प्पा के उत्खननों में नृत्य पुरुश की खंडित मूर्ति उपलब्ध हुई है। मूर्ति सुघड़पाशाण से निर्मित है तथा परिश्कार एवं कलात्मकता में अनुपम है। नर्तक का दक्षिण पाद भूमि पर स्थित है तथा वाम पाद नृत्य क्रिया में उपर उठाया गया है।"13 नृत्य कला के विद्वानों के मतानुसार यह मूर्ति 'नटराज शिव' की है।

"मोहनजोदड़ो व हड़प्पा के खनन कार्य से प्राप्त वीणा, हड्डी की वंशी, चमड़ के वाद्यमंत्र, ब्रोंज की बनी नृत्य शील नारी एवं नर्तक मूर्ति

नि:संदेह यह प्रमाणित करती है कि सिन्धु घाटी के सुप्राचीन युग में संगीत का यथेश्ट प्रचलन था।"[14]

रोपड़ की खुदाई में भी एक ऐसी स्त्री की मूर्ति प्राप्त हुई है, जो चार तारों वाली वीणा बजा रही है। कुछ सिक्कों पर भी वीणा के चित्र अंकित है। यह सिक्के समुद्र गुप्त कालीन सिद्ध होते हैं। इसी खुदाई में गायन की मुद्रा में एक नारी का चित्र भी प्राप्त हुआ है।

यह तथ्य संकेत करता है कि उस समय ना सिर्फ वीणा का अविष्कार हुआ था बल्कि कठिन वाद्य यंत्रों का वादन स्त्रियाँ भी किया करती थी। अत: यह स्पष्ट है कि उस समय संगीत पूर्णतया पवित्र, सात्विक तथा अपनी उच्चस्थिति को प्राप्त था। तत्कालीन जीवन में संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका थी। धार्मिक एवं लौकिक समारोहों पर गायन वादन तथा नृत्य का विश आयोजन किया जाता था। गीतों के साथ ढोल, दुन्दुभि जैसे वाद्य यंत्रों की संगत की जाती थी।

"हड़प्पा में उपलब्ध एक चित्र में एक पुरुश को व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है। अथर्ववेद में दुन्दुभि के मांगल्यजनक होने के सम्बन्ध में मान्यता स्पष्टत: मुखरित हो उठती है। यहाँ उपलब्ध अन्य दो मुद्राओं पर दीर्घाकार ढोल अंकित है, जिनके दोनों मुख चर्म से आबद्ध है। एक अन्य स्थान पर ढोल की आकृति का वाद्य एक मृण्मयी मूर्ति की ग्रीवा से लटकता हुआ दिखाया गया है। झाँझ अथवा करताल के समान वाद्य भी यहाँ उपलबध हैं। ऐसे वाद्यों का प्रयोग सम्भवत: नृत्य की लय का सूचित करने के लिए किया जाता रहा हो।[15]

निष्कर्ष :-

मोहनजोदड़ो हड़प्पा, चुन्नदड़ो, झुकर, रोपड़, लोथल, उदयगिरि महाबलीपुरम इत्यादि अनेक स्थानों की खुदाई में संगीत से सम्बन्धित अनेक सामग्री प्राप्त हुई है। जिनके आधार पर हम यह कह सकते है कि सिन्धु सभ्यता के लोगों को संगीत के लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही पक्षों का ज्ञान था ।

'अभी हाल में अहमदाबाद जिले में लोथल में खुदाई हुई है उसमें भी नृत्य मुद्रा में काँसे की एक मूर्ति मिली है। इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि ईसा के 5000-3000 वर्श पूर्व भारत में संगीत की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी।[16]

अनेक स्थानों में उत्खनन के प चात् जो कलात्मक अव देश प्राप्त हुए है उनसे

"यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन जीवन में संगीत का पर्याप्त प्रचलन था तथा धार्मिक एवं लौकिक समारोहों पर गीत, वाद्य, नृत्य के द्वारा लोगों का मनोरंजन किया जाता था।"[7]

"पाटलिपुत्र, तक्षाला से प्राप्त सामग्री में कौम्बी के भग्नाव देशों में और कला संग्रहालयों म संग्रहीत साम्रगी में इस प्रकार के अनेक प्रमाण सुरक्षित है। यह सामग्री इतनी प्रचुर और प्रमाणिक है कि उसके आधार पर कला - इतिहास की विलुप्त कड़ियों को क्रमबद्ध रूप में ग्रथित किया जा सकता है ।" 18

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वि व संगीत का इतिहास, अमल द्वारा भार्मा, पृ. 5
2. बावरा, जोगिन्द्र सिंह भारतीय संगीत की उत्पत्ति एवं विकास, पृ. 1
3. सिंह, ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत रिसर्च एकेडमी, पृ. 8
4. वहीं, पृ. 8,9
5. सिंह, ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत रिसर्च एकेडमी, पृ. 9
6. परांजपे, शरच्चन्द्र, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. 13
7. वही, पृ. 15

8. गैरोला, वाचस्पति, भारतीय नाट्य भारतीय नाट्य परम्परा एवं अभिनय एवं अभिनय दर्पण, चौखम्बा संस्कृतिप्रतिवणन दिल्ली, पुनर्मुद्रित सं. 2013, पृ. 91
9. वही, पृ0 91
10. सिंह, ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत रिसर्च एकेडमी, पृ. 13 परांजपे, शरच्चन्द्र, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. 15
11. बावरा, जोगिन्द्र सिंह भारतीय संगीत की उत्पत्ति एवं विकास, पृ. सं. 24-25
13. परांजपे, शरच्चन्द्र, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. 15
14. शर्मा, अमनदा, वि व पृ.सं. 9
15. बावरा, जोगिन्द्र सिंह भारतीय संगीत की उत्पत्ति एवं विकास, पृ. 16
16. सिंह, ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत रिसर्च एकेडमी, पृ. 13
17. परांजपे, शरच्चन्द्र, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. 16

ग्वालियर घराने के पुरोधा पं. राजाभैया पूछवाले का सांगीतिक योगदान

यश संजय देवले*, डॉ. संतोष पाठक**

सार

भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रत्येक घराने में पुरोधा रहे हैं, जिन्होंने उस घराने को विकसित करने के लिए समय समय जन्म लिया तथा घराने की चीजों को, विशेषताओं को सहेजा तथा आने वाली पीढ़ी को इस विद्या का दान दिया । शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार में अनादिकाल से संगीतकारों का योगदान रहा है। संगीतकारों के अनवरत योगदान से ही यह कला सवंर्धित होती रही है। संगीत में घराना या गुरुकुल पद्धति के कारण संगीत श्रेष्ठजन से सामान्यजन तक पहुँचा । घराने के नियमों के कारण संगीत आगे बढ़ा और घरानो के विभिन्न गायकों और वाग्गेयकारों ने संगीत में विभिन्न शोध द्वारा गायकी और बंदिशों के माध्यम से संगीत को जन-जन तक पहुंचाया। ग्वालियर घराना संगीत की गंगोत्री कहा जाता है और इसी गंगोत्री को संरक्षित व पोषित करने में राजामैया का महत्वपूर्ण स्थान है। ग्वालियर घराने में पुरोधाओं की श्रेणी में राजाभैया का नाम कभी भुलाया नहीं जा सकता ।

उनके द्वारा किए गए अद्वितीय कार्य के लिए संगीत जगत हमेशा उनका ऋणी रहगे ।

कीवर्ड — ग्वालियर घराना, संगीत की गंगोत्री, पंडित राजाभैया पूछवाले, शास्त्रीय संगीत में ग्वालियर घराने का योगदान

विषय प्रवेश -

ग्वालियर यह अभिजात भारतीय संगीत का तीर्थस्थान माना गया है। ग्वालियर घराना सभी ख्याल गायकीयों के घरानो की गंगोत्री भी कहा जाता है। "विद्वानों के मतानुसार ग्वालियर में ख्याल घराने का प्रारंभ 18वीं शताब्दी में नत्थन पीरबख्श के द्वारा हुआ। नत्थन पीरबख्श ने ग्वालियर में संगीत का प्रचार प्रसार किया और उनकी गायन शैली ग्वालियर घराने के नाम से प्रसिद्ध हुई।" वर्तमान समय में शास्त्रीय संगीत की ख्याल गायन शैली सबसे अधिक प्रचलित है। उसके पूर्व ध्रुपद का प्रचलन अधिक था। ख्याल गायकी का सबसे पुराना घराना ग्वालियर है। ग्वालियर के राज परिवार द्वारा इसे प्रोत्साहन मिला। नत्थन पीरबक्ष, हददू, हस्सू, नत्थू खान की पीढ़ी और उसके बाद बडे निसार हुसैन, शंकर राव पंडित, बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर इत्यादि कलाकारो द्वारा ग्वालियर घराना भारतीय

*शोधार्थी - वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

**एसोसिएट प्रोफेसर वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान, फोन नंबर-8319355124

रागदारी संगीत में उत्कर्ष हुआ । पंडित राजाभैया पूछवाले इसी परम्परा की अगली कड़ी के रूप में उभर के आए। आप एक उत्तम गायक होने के अलावा वाग्गेयकार, सम्मानित गुरु, लेखक और प्रशासक थे। भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार प्रसार में आपने अहम भूमिका निभाई और साथ में परंपरा का निर्वाह करते हुए नवनिर्मिती के तत्व को सम्मान दिया जिसका प्रयोग आपकी रचनाओ में किया ।

संगीत शिक्षा -

स्व. पं० राजाभैय्या जी की सांगीतिक शिक्षा बाल्यकाल से आरंभ हुई। "आपने किशोरावस्था में मेंहदी हुसैन जी के शिष्य बलदेव जी से शिक्षा गृहण की। इसके पश्चात् ध्रुपद गायक वामनबुवा तथा उनके पुत्र बालाबुवा जी से भी संगीत शिक्षा ग्रहण की। इन दोनों के देहावसान के बाद स्व. शंकर पंडित से राजाभैय्या ने संगीत की शिक्षा ली।" इस प्रकार राजाभैय्या को अनेक संगीत गुरुओं से शिक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप पंडीत भातखण्डे के सम्पर्क में आये, उनसे आपने मुम्बई जा कर भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति सीखी। राजाभैया का संपूर्ण जीवन मधुकर वृत्ति समान रहा।

राजाभैया की शिक्षण पद्धति

"शिष्यों की तालीम सुबह 4 बजे राजाभैया के घर से प्रारंभ होकर शाम के समय संगीत विद्यालय में समाप्त होती। सुबह के रियाज के बाद नित्य कर्मों से निवृत्त होकर संध्या पूजा का लंबा दौर चलता। मंत्र उच्चारण के साथ-साथ अपने गुरुजनों का स्मरण वे लगातार करते। गुरु को सिर्फ सुनना मात्र भी तालीम का हिस्सा होता है। 2 घंटे की पूजा अर्चना के बाद कुर्ता पगड़ी और छड़ी उठा कर अपने किसी शिष्य का हाथ पकड़कर देव दर्शन के लिए चल पड़ते। मोहल्ले में स्थित 5-6 मंदिरों में रोज जाते एवं प्रत्यके मंदिर में 4-5 चीजें गाकर दूसरे मंदिर की और आगे बढ़ते जाते। इस प्रकार साथ में चलने वाले छात्र को बिना प्रयास किए 10-20 बंदिशें रोजाना सुनने को मिल जाती।" भोजन के उपरांत विश्राम करके शाम 5 बजे राजाभैया कॉलेज में पहुंच जाते और नियमित रूप से कक्षाएं लेते। राजाभैया बंदिशों की पुनरावृत्ति पर विशेष जोर दिया करते थे उनका सोचना था की जितनी अधिक बंदिशें याद होंगी, उतना ही राग को समझने में आसानी होगी। रात को महाविद्यालय समाप्त होने के बाद भी वे छात्रों का समूह लेकर किसी परिचित के यहां महफिल जमाने चले जाते और पूरी रात तक महफिल चला करतीं। राजाभैया का उद्देश्य था कि उनके शिष्यों को गाने का अवसर मिले ताकि शिष्यों का मंचीय रियाज भी हो। इस प्रकार विद्यार्थी पूरा समय राजाभैया के सहवास में बताते। राजाभैया को ग्वालियर गायकी पर जितना गर्व था उतना ही भातखंडे जी के प्रभाव से ग्रंथों का महत्त्व भी समझ में आ गया। वे विद्यार्थियों को संगीत सिखाने के साथ सांगीतिक ग्रंथों को याद करने और निरंतर पढ़ने की प्रेरणा देते थे। राजाभैया के शिक्षण पद्धति की एक प्रमुख विशेषता यह भी थी की वे विद्यार्थियों को रियाज के समय एक हाथ से स्वर देना और दूसरे से डग्गे पर थाप देते हुए ठेका साधने का अभ्यास कराते थे। विरासन में बैठकर घंटों अभ्यास करने से विद्यार्थी को एकाग्रता का अभ्यास हो जाता था और विद्यार्थी के बेसुर या बेताल होने का सवाल ही नहीं था। लय और ताल की समझ आ जाने के कारण लयकारी की क्रिया विद्यार्थी को समझने में आसानी होती। खरज साधना पर राजाभैया का विशषे बल था। प्रात: काल यह साधना प्रत्यके विद्यार्थी को व कलाकार को अपने संपर्ण जीवन

करना चाहिए यह उनका कथन था।

अधिक से अधिक बंदिशों के संग्रह पर बल

घराने की परंपरागत बंदिशों का संग्रह करना ग्वालियर घराने के कलाकारों का भगीरथ प्रयत्न रहा। इस घराने में तालीम की प्रथा भी विशिष्ट थी। इस घराने के दो कलाकार किसी राग की परंपरागत बंदिशों को गाते थे तो उनमें बिल्कुल अंतर भी ना होता था।

इस प्रसंग में एक संस्करण यहां प्रस्तुत है— ग्वालियर घराने के सुप्रसिद्ध गायक श्री अनंत मनोहर जोशी 40 वर्ष के पश्चात ग्वालियर पधारे थे । श्री राजाभैया अस्वस्थ होने के कारण अपने निवास पर ही थे। जोशी जी राजाभैया की निवास स्थान आये दोनो ने आपस में संगीत पर चर्चा की ग्वालियर की परंपरागत बदिशों पर बातचीत की व इतना ही नहीं कई बंदिशों को साथ में गाया भी। उनमें स्वर लय किसी प्रकार का अंतर न था । क्या यह बात परंपरागत तालीम को प्रदर्शित नहीं करती? राजाभैया केवल एक या दो या कुछ चुनी बंदिशों की तैयारी पर्याप्त नहीं मानते थे। राजाभैया का मानना था की प्रत्येक राग की 15-20 बंदिशों की पूर्ण तैयारी करनी चाहिए जिससे राग विस्तार करने में आसानी मिलती है।" गायक कल्पना के सहारे स्वयं ही राग विस्तार कर सकता है। राजामैया का मानना था की प्रत्येक बंदिशों में अलग-अलग स्वर संगतियाँ होती हैं और यह स्वर सगतियाँ राग विस्तार करने में सहायक होती हैं। 1-1 राग की विविध स्वरूप की और अनेक अंगो की बंदिशों की याददाश्त और उनकी सुरक्षा, वेद ग्रंथों की सुरक्षा के समान ही राजाभैया ने की। प्रत्यके राग की भिन्न-भिन्न अंगों की और विभिन्न तालों की बंदिशों की शिक्षा देना और शिक्षा लेना राजाभैया की प्रमुख विशेषता रही।

हद्दू खान के मानस पुत्र एवं प्रिय शिष्य सुप्रसिद्ध गायक बंदे खान के यहां सुप्रसिद्ध गायक पधारने पर वे उससे पूछते थे कि आप को इस राग में कितनी चौकड़ियां आती है। बंदे खान कहते थे मुझे प्रत्यके राग मे इतनी चौकड़ियां आती है। बंदिशों को चौकड़ी पर गिनते थे बंदिशों का अच्छा संग्रह होने के कारण ही वे कोठीवाले गवई कहे जाते थे। राजाभैया भी कोठीवाले गवई कहे गये।

राजाभैया के गायन की विशेषताएं—

राग की शुद्धता पूर्वक प्रस्तुति राजाभैया के गायन की प्रमुख विशेषता थी। बुजुर्गों से सुना है की राजाभैया बंदिश की स्थाई को दो बार और अंतरे की एक बार प्रस्तुति करने के बाद मुखड़े को लेकर विस्तार करते थे। राजाभैया की एक विशेषता और थी की बंदिश को चाहे कितनी बार प्रस्तुत करें हमेशा एक समान ही उतरेगी इसलिए पंडित भातखंडे उन्हें सबसे प्रमाणिक गायक मानते थे। लयदार गायकी, शब्द उच्चारण की शुद्धता, कहन राजाभैया के गायन की प्रमुख विशेषता थी। बुजुर्गों से सुना है की महफिल को जमाने की कला में भी राजाभैया पारंगत थे । राग हमीर में जैसे ही चमेली फूली चम्पा शुरू करते तो महफिल में चार चांद लग जाते।

भातखंडे जी का सहवास -

राजाभैया की स्मरण शक्ति तीव्र थी। अपने गुरुओं द्वारा सीखी गई प्रत्यके चिज उन्हें जीवन पर्यंत याद रही। "भातखंडे जी ने अपनी पुस्तकों में ग्वालियर की कई बंदिशें समाहित की इनमें से कई बंदिशे पंडित भातखंडे जी को राजाभैया ने दी व कई बंदिशों की रूपरेखा को राजाभैया ने सुधारा।" राजाभैया के कारण ही भातखंडे जी

को ग्वालियर गायकी की समग्र जानकारी प्राप्त हो सकी और एक परंपरा को वह सदा सदा के लिए चिरंजीवी बना सके। राजाभैया को हिंदी के साथ संस्कृत का भी ज्ञान था। भातखंडे जी की अभिनव राग मंजरी व श्री मल्ललक्ष के श्लोक उन्हें कठस्थ थे। जिस प्रकार प्राचीन काल से वैदिक काल तक वेदों की ऋचाओं को कहने की संख्या निर्धारित कर रखी है जिससे ऋचाओं का कभी भी और कितनी बार भी पाठ किया गया तो उनके उच्चारण में लेश मात्र भी अंतर नहीं पड़ता। इसी विशिष्टता का दर्शन ग्वालियर घराने के गायकों द्वारा गाए जाने वाली परंपरागत बंदिशों में ज्ञात होता रहा है और इसका निर्वाह पूर्ण रूप से राजाभैया द्वारा किया गया।

लेखक के रूप में योगदान—

राजाभैया की गायकी में ग्वालियर घराने की सभी विशेषताएँ प्रदर्शित होती थी। पंडित भातखंडे मानते थे की राजाभैया सभी गायकों में नत्थन पीरबख्श की शैली के सर्वाधिक सुसंस्कृत थे। "राजाभैया से भातखडें जी ने सैकड़ों चीजें क्रमिक पुस्तक मालिका में ली । भातखंडे जी ने अनुभव किया की स्वरलिपि बध्य की गई गायकी की शिक्षा द्वारा 5 वर्ष के पाठ्यक्रम की अवधि के बाद विद्यार्थी स्वयं के परिश्रम से गायक बन सकता है, बंदिशों के साथ गायकी की भी पुस्तक विद्यार्थियों के लिए होना चाहिए । पंडित भातखंडे ने राजाभैया के समक्ष एक आग्रह किया की क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1,2,3,4 में दिये रागों की राग गायकी पर आधारित पुस्तक आप लिखें इस प्रस्ताव को राजाभैया ने स्वीकार किया व गायकी पर आधारित तान मालिका भाग 1,2,3 लिखी। राजाभैया के प्रति श्रद्धा रखने वाले व्यक्ति श्री शंकर रामचंद्र गोलवलकर ने पुस्तक स्वयं के व्यय पर छपवा कर प्रकाशित करने एवं उसकी बिक्री का कार्य देखने का प्रस्ताव बिना किसी शर्त के राजाभैया के समक्ष रखा।" आलाप, तान, बोलतान, सरल, फिरत, चकरी तान, आरोही अवरोही, सपाट आदि ग्वालियर गायकी के नमूने सबके लिए राजाभैया ने इन पुस्तकों में उपलब्ध कराए। पंडित राजाभैया पूछवाले ख्याल गायन व ध्रुपद् गायन के साथ साथ ठुमरी शैली को भी महत्व देते थे। नजरपिया, सनदपिया और कदरपिया जैसे प्रसिद्ध ठुमरी गायकों की ठुमरियों का संग्रह अपनी ठुमरी तरंगिणी नामक पुस्तक में प्रकाशित करवाया । राजाभैया ध्रुपद् धमार गायकी के अच्छे गायक थे। राजाभैया के समय ध्रुपदू की बनियों के विषय मे कलाकारों के आपसी मतभदे चल रहे थे ऐसे समय में राजाभैया ने अपने गुरुओ द्वारा सीखे हुए- ध्रुपद्-धमार की चीजों का सकलन ध्रुपद - धमार गायन नामक पुस्तक मे किया । ग्वालियर घराने में ध्रुपद्- धमार व ख्याल गायन के साथ अष्टपदी, भजन, तराने गाने का भी चलन था । हुस्सु खान, वासुदवे जोशी, बाबा दीक्षित इस शैली के प्रमुख कलाकार रहे हैं। उस्ताद निसार हुसैन खान साहब से गुरुवर्य शंकरराव को तराने व अष्टपदियाँ प्रसाद स्वरूप मिली । राजाभैया ने शंकरराव पंडित जी से इन सारी चीजों को आत्मसात कर । संगीत उपासना नामक पुस्तक में तराने, अष्टपदियाँ इत्यादि प्रकशित की। ग्वालियर घराने में टप्पा गायन की विशिष्ट परंपरा रही है। पंडित राजाभैया ने ग्वालियर के कई टप्पों का संकलन संगीतोपासना में किया। नई पीढी तक ग्वालियर की चीजें सुरक्षित रह सकें इस दृष्टि से गुरुओं से सीखी सारी चीजों को पुस्तक रूप दिया ।

अन्य महत्वपूर्ण पहलु

सन् 25 जनवरी 1942 ई. को राजाभैया 60 वर्ष

के हो चुके थे। शिष्य परंपरा अपके कार्य में कार्यरत थी । राजाभैया की संगीत सेवाओं से प्रभावित होकर शिष्यो तथा स्नेही जनों ने उनका सम्मान करने का निश्चय किया राजाभैया को इस बात का जब पता चला की उनका सम्मान होने जा रहा है तो उन्होंने सुनते ही इस बात की असहमति दी, परंतु शिष्य वर्गों के आग्रह पर उन्होनें कहा की सर्वप्रथम अपने गुरुजनों का मैं स्वयं सत्कार करूंगा तब अपना स्वयं का सत्कार स्वीकार करूंगा। एक ऊंचे मंच पर राजाभैया के गुरुजनों के छाया चित्रों को स्थापित करके उनके शिष्यो और वंशजों को बैठाया गया राजाभैया के सम्मान समारोह में पंडित रातांजनकर, काशी पंथ मुले, एकनाथ पंडित, श्री कृष्णराव पंडित, श्री बाला भाऊ गुरुजी इत्यादि उपस्थित थे। राजाभैया के सम्मान समारोह में सर्वप्रथम राजाभैया ने अपने गुरुजनों के तस्वीरों पर हार चढ़ाकर उनका सम्मान किया उसके पश्चात शिष्य वर्गों ने श्री राजाभैया का सम्मान किया। "भातखंडे संगीत विद्यापीठ लखनऊ ने राजाभैया की सेवाओं का स्मरण करते हुए दिनांक 4 नवंबर 1951 ई. को मैरिज कॉलेज के रजत जयंती समारोह में राजाभैया को संगीत आचार्य अर्थात डॉक्टर ऑफ म्यूजिक की उपाधि से सुशोभित किया।" राजाभैया ने जीवन भर संगीत विद्या का दान मुक्त हृदय से किया। राजाभैया की ख्याति संपूर्ण भारत में इतनी हो गई थी की भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों से अनेक विद्यार्थी राजाभैया से संगीत की शिक्षा ग्रहण करने के लिए ग्वालियर आया करते थे। जीवन भर राजाभैया ने संगीत की सेवा की धीरे-धीरे राजाभैया वृद्धावस्था की ओर अग्रसर हुए। गला अब थकने लगा था परंतु आयु के इस पड़ाव में भी राजाभैया महफिल को जीत लिया करते थे । संगीत नाटक एकेडमी की ओर से राजाभैया को सम्मान देने की घोषणा की गई। यह सम्मान तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ राजेंद्र प्रसाद के कर कमलों द्वारा होना था । परंतु नियति को कुछ और ही मंजूर था एकनाथ षष्ठी के दिन 1 अप्रैल 1956 ई. रविवार को राजाभैया ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। उस वर्ष सम्माननीय कलाकारों में हिंदुस्तानी संगीत के श्रेष्ठ गायक के रूप में उन्हें मान्यता प्रदान किया जाने का समाचार उन्होने अपनी मृत्यु से पूर्व सुन लिया था, प्रतिक्रिया में उन्होंने केवल हरि इच्छा यही उदगार निकाले । राजामैया एक संत थे उन्होंने अपने निर्वाण के लिए संत एकनाथ की निर्वाण तिथि को ही चुना पंच भूतों का शरीर पंच भूतों में विलीन हो गया परंतु उनकी कीर्ति उनका सुगंध सर्वत्र फैला हुआ है। ग्वालियर के प्रत्यके कण कण में राजाभैया अमर हैं। उनकी रचनाओं को जब गाओ बजाओ तो ऐसा लगता है की वे हमारे आस पास ही हैं और हमें आशीर्वाद दे रहे हैं। उनके द्वारा किए गए अद्वितीय कार्य के लिए संगीत जगत हमेशा उनका ऋणी रहेगा।

बनारस घराने के प्रसिद्ध तबला वादक पं कुमार बोस जी की स्वतंत्र तबला वादन शैली

आनंद कुमार*, प्रोफेसर प्रवीन उद्धव**

संक्षेप

तबला का अविष्कार स्वाति मुनि ने प्राचीन काल में द्विपुष्कर के रूप में किया तथा सुधार खान दाढ़ी ने तबले के प्रथम घराना दिल्ली घराने की नीव डाली। तबले का सबसे अंतिम घराना बनारस घराना है। बनारस घराने की वादन शैली यहाँ के मंदिरों और धार्मिक परिवेश से प्रभावित है। पंडित कुमार बोस जी बनारस घराने के प्रतिनिधि तबला वादक हैं जिन्होंने इस बाज को नया आयाम दिया है। पंडित जी बनारस घराने के विश्वविख्यात तबला वादक पद्म विभूषण पांडित किशन महाराज के सुयोग्य शिष्य हैं। बनारस घराने के तबला वादक होते हुए भी बाकी के तबला वादकों से इनकी वादन शैली भिन्न है। इनके वादन में गतिमानता और रसों का आनंद लिया जा सकता है। पंडित जी के वादन में खुलेपन के साथ माधुर्य भी व्याप्त है।

सूचक शब्द : *घराना, फर्द, गत, उठान, परण, चलन, रेला, अवचारपंडित, वादन शैली, द्विपुष्कर, लाहौरी गत, पंजाबी गत, पराल, बनारसी ठेका, बाँट, लयकारी, आड़, कुआड़, बियाड़*

परिचय

संगीत जगत में घराना शब्द बहुत ही लोकप्रिय है। "घराना का अर्थ है किसी संगीत शास्त्री द्वारा विचित्र या विशेष शैली में प्रवर्तित कला कुसी शैली या रीति से अपने शिष्यों के माध्यम से उसका विकास, प्रचार एवं प्रसार।" दल्ली घराना तबले का सर्वप्रथम घराना माना जाता है। एक मत के अनुसार तबला का अविष्कार द्विपुष्कर वाद्य के रूप में प्राचीन काल स्वाति मुनि जी के द्वारा हो चुका था। परन्तु दिल्ली के ही एक बहुत बड़े विद्वान उस्ताद सुधार खाँ दाढ़ी ने उसमे परिवर्तन करके तबले के प्रथम घराना दिल्ली घराने का आविष्कार किया। तत्पश्चात बाकी के घरानों का प्रादुर्भाव हुआ।

तबले के कुल छः घराने हैं। ये क्रमशः दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, फर्रुकाबाद, पंजाब और अंतिम घराना बनारस है। पं. राम सहाय जी ने इस घराने का प्रवर्तन 18वीं शताब्दी में किया। इस घराने में इस बात का ध्यान रखा गया कि यहाँ का तबला संपूर्ण हो अर्थात यह बाज स्वतंत्र

एम आइ जी फ्लैट 8814, कबीर नगर दुर्गाकुंड वाराणसी, मोब- 9696071199, ईमेल- anandboss93@gmail.com
शोध निर्देशक**

वादन के साथ - साथ गायन संगति, नृत्य संगति, तंत्र संगति के लिए भी उपयुक्त हो। बनारस घराने के ऐसे ऐसे दिग्गज तबला वादक हुए जिन्होंने सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व भर में अपने घराने का और अपनी प्रतिभा का परचम लहराया है। जिनमें, पं० अनोखे लाल, पं० कंठे महाराज, पं० किशन महाराज, पं० गुदई महाराज, पं० शारदा सहाय इत्यादि नाम प्रमुख हैं। वर्तमान काल की बात करें तो बनारस घराने का परचम लहराने वाले कलाकार और विद्वान गण आज भी मौजूद हैं जिनमें पं. पूरन महाराज, पं कुमार बोस, पं सुखविंदर सिंह नामधारी, पं. संजू सहाय, पं. अरविंद कुमार आजाद, शुभ महाराज इत्यादी कलाकारों का नाम प्रमुख हैं ।

बनारस घराने की वादना शैली

बनारस घराने की वादन शैली यहाँ के सामाजिक और धार्मिक रूप से प्रभावित तो है ही, साथ ही साथ, यह सांगीतिक तत्वों से भी परिपूर्ण है। इसकी वादन सामग्रियों के निर्माण में बहुत सारी बातों का ध्यान रखा गया है । जैसे कि बाँट या कायदों का विस्तार कैसे हो, किस बोल पर मधुरता हो, कहाँ जोरदारी हो, तिहाईयाँ कैसी बनें, एवं डग्गा तथा दाहिना में समन्वय कैसे हो। यहाँ डग्गा वादन पर भी विशेष ध्यान दिया गया। स्वतंत्र वादन में वे सारी चीजें समाहित की गई हैं जो हर एक विधा में बजाई जा सके। ध्रुपद - धमार की संगति के लिए पराल अंग, ठुमरी के लिए सुन्दर ठेके, सुगम संगीत के लिए बनारसी चलन या बनारसी ठेका, तंत्र वाद्यों की संगति के लिए लयकारी युक्त बाँट, टुकड़े, रेले और कत्थक संगति के लिए हाथों के रखरखाव पर भी ध्यान दिया गया है। झाले में प्रयुक्त ना धिं धिन्ना पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। बनारस बाज में बनारस की अक्खड़ बोली का प्रभाव भी देखा जा सकता है।

बनारस घराने में सबसे पहले उठान बजाया जाता है। "उठान शब्द का अर्थ है उठना, और उठने का अर्थ तभी चरितार्थ होता है, जब खचाखच भरी पूरी सभा की दृष्टि आपके उठते ही आपकी ओर आकृष्ट हो जाये।"

कुछ लोग उठान स्वरूप टुकड़ा बजाते हैं, तो कुछ कलाकार पराल अंग का उपयोग करते हुए अलग-अलग लयकारियों में भी बजाते हैं। इसके उपरान्त यहाँ आमद बजाई जाती है । आमद का मतलब होता है सम पर आने के विभिन्न तरीके उठान की तिहाई बजाने के बाद उसी की बढ़त करके आमद बजाई जाती है। इसके बाद ठेके की चलन बजती है जिसे अवचार भी कहा जाता है। इसे इस ढंग से बजाया जाता है कि उसमें आलाप, जोड़ और झाले का स्वरूप बन सके। तदुपरांत बनारस बाज के अनुसार बाँट बजाया जाता है । बनारस बाज की यह भी एक विशेषता है कि जिस लय में चलन या रेला बजा रहे हैं उस लय का टुकड़ा भी उसी गति में बजाया जाता है। बाकी घरानों में बंदिशें अंत में जाई जाती हैं।

बनारस घराने की एक बहुत ही सुंदर रचना है जिसे फर्द कहते हैं। फर्द एक ऐसी रचना है जो गत के ही समान हॉट हुए भी उससे भिन्न है। फर्द में गत के समान खाली भरी नहीं होती है तथा इसका समापन "तिरकिट तकता कधेरधेरकिट धा" से होता है। इसका "जोड़ा" नही होता इसीलिए इसे 'एक्कड़' भी कहते हैं । बनारस बाज में कई प्रकार के रेले भी बजते हैं जो कि बहुत क्लिष्ट होने के साथ-साथ बहुत आकर्षक भी होते हैं । यहाँ के टुकड़ों या परणों की भी बहुत ही खास बात यह होती है कि ये विभिन्न लयकारियों से युक्त होते हैं । यहाँ कई बंदिशें ऐसी हैं जो देवी-देवताओं की स्तुति के लिए बनाया गया है। इन्हें स्तुति परण कहा जाता

है। 'स्तुति' संस्कृत भाषा से लिया गया शब्द है जिसका अर्थ होता है इष्टदेव की वंदना या अपने आराध्य के गुणों की प्रशंसा।

पं० कुमार बोस जी की वादन शैली

पं० कुमार बोस का जन्म कलकत्ता में 4 अप्रैल 1953 को हुआ था । उनके पिता पं० विश्वनाथ बोस उस समय के विख्यात तबला वादक थे तथा माता श्रीमति भारती बोस सितार वादिका थीं। पं० विश्वनाथ बोस ने लखनऊ घराने के पं० अनंत नारायण चटर्जी जी से 10 वर्षों तक शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात वे पंडित कंठे महाराज के शागिर्द बने । पं० कुमार बोस अपने पिता से शिक्षा प्राप्त कर एक सिद्धस्त तबला वादक के रूप में स्थापित हो चुके थे। परन्तु पिता की मृत्योपरांत उन्होंने पंडित किशन महाराज जी की शिष्यता ग्रहण की और बनारस बाज की बारीकियाँ सीखीं। गुरु के सानिद्धय में रहकर उन्होंने ऐसी साधना की कि वर्तमान समय में बनारस घराने के प्रतिनिधी कलाकारों में उनकी गिनती होती है। अपने अथक रियाज और ज्ञान के बल पर उन्होंने बनारस बाज को नया आयाम प्रदान किया है। पंडित जी की वादन शैली अत्यंत नवीन स्वरूप लिए हुए है। चाहे उठान हो, चलन हो अथवा टुकड़े हों, सभी रचनाओं में उनकी अलग छवि दिखती है। कई उपलब्ध रिकॉर्डींग में यह देखा जा सकता है कि वे बिल्कुल नवीन बोलों से उठान की शुरुवात करते हैं। उदाहरण स्वरुप ना ना ना ना का विस्तार करते हुए एक या दो आवर्तन में उसकी विभिन्न लाय्कारियों को देखा जा सकता है। उनके वादन का यह अंग शांत रस की अनुभूती कराता है। आगे डग्गा और तबला के बराबर संतुलन के साथ तिगुन के खूबसूरत बोलो का ऐसे वादन होता है कि जिससे की श्रृंगार रस की उत्पत्ति होती है । तत्पश्चात छ:गुन में प्रवेश होते ही वीर रस उत्पन्न होता है। अंत में अठगुन में जाते हुए कुछ ऐसे बोलों का वादन होता है जो रौद्र, श्रृंगार, वीर और अद्भुत रस की अनुभूति कराते हैं।

उठान बजाने के पश्चात् आमद की बारी आती है। आमद के बारे में उनका विचार है कि उठान की तिहाई का ही विस्तार आमद में किया जाना चाहिए। इसके पश्चात् अवचार के विस्तार का पंडित जी का तरीका बहुत ही भिन्न है। कभी-कभी इसका विस्तार पेशकार के विस्तार से भी प्रभावित होता है। उनकी एक रूपक ताल की रिकॉर्डिंग उपलब्ध है जिसमें उन्होंने अवचार का विस्तार पेशकार की तरह किया है। ठेके के विस्तार के बाद बनारसी ठेके का विस्तार होता है और उसके लय को बढ़ाकर उसी में धीकधिन्ना तिरकिट धिन्ना का समावेश बहुत ही गतिमानता के साथ करते हैं। अंत में रेला के प्रवेश के बाद तिहाई बजाकर औचार की समाप्ति होती है। पंडित जी के वादन मैं दूसरे घरानों के कायदों का भी समावेश देखने को मिलता है जैसे लखनऊ, फर्रुक्काबाद, पंजाब के रेले या अजराडा के आड़ के कायद इत्यादि । टुकड़ों और गत- फर्दों की बात करें तो पारंपरिक बंदिशों को भी उन्होंने अपने अनुसार ढालकर उन्हें और भी आकर्षक बनाया है। इन बंदिशों में गतिमानता और निकास पर उनके द्वारा बहुत ध्यान दिया गया है।

पंडित जी के संगत शैली की बात करें तो उनका सभी प्रकार की विधाओं के साथ संगत करने का एक अलग और अनूठा तरीका है। गायन के साथ संगत करते समय वो इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि सिर्फ चांटी ही नहीं बल्कि डग्गा भी षडज में मिला हुआ हो। इससे गायक कलाकार को भी बहुत सुविधा होती है और एक अलग ही माहौल बनता है । बंदिश के मुखड़े को पकड़ कर संगत करना पंडित

जी की एक और बड़ी ही अद्‌भुत विशेषता है। उपज क्रिया का भी बहुतायत प्रयोग देखने को मिलता है जिससे श्रोताओं में रोमांच भरा होता है।

उनका तंत्र वाद्यों के साथ संगत करने का भी बहुत आकर्षक ढंग है। बंदिश के अनुसार उठान हर बार अलग प्रकार का होता है। उनका मानना है कि मुख्य वाद्ययंत्र में जो काम हुआ है, मतलब जैसी लयकारी हुई है वैसे ही तबला में भी होना चाहिए। झाला में 'नाधिन्धिन्ना' का एक बहुत ही आकर्षक प्रस्तुति सुनने को मिलती है। उपज क्रिया का भी खूब प्रयोग करते हैं।

अगर नृत्य की बात करें तो पंडित जी भारत के प्रमुख नृत्यकारों के पसंदीदा सांगत करता रहे हैं। एक जमाने में वे स्वर्गीय पंडित बिरजू महाराज जी के सबसे पसंदीदा सांगतकार रहे हैं। "कुमार अंकल नानाजी के पास अक्सर रियाज के लिए आया करते थे।" ये बात सुश्री रागिनी महाराज ने अपने साक्षत्कार में बताया था। पैरों के चाल के साथ तबला मानो एक ही हो जाता। बिना साथ में बैठे नर्तक की एक एक बात ऐसे तबले पर निकलती है जैसे ये लोग रोज ही साथ में रियाज करते होंगे। पुरानी रिकॉर्डिंग को सुनने पर यह ज्ञात होता है की उस समय जो शिक्षा उन्हें अपने गुरुओं से प्राप्त हुयी थी वे वही बजाते थे परन्तु धीरे धीरे उन्होंने अपनी नयी रचनाओं, खोज और रियाज के आधार पर अपने वादन को और भी नवीनता प्रदान की । वर्तमान समय में उनके वादन शैली का अनुसरण बहुत से कलाकार कर रहे हैं। उन्होंने तबले के ध्वनि निष्पादन पर बहुत विशिष्ट काम किया है। वर्तमान में पं० कुमार बोस अपने आवास और गुरुकुल में सैंकड़ो शिष्यों को तबला वादन की सूक्ष्मता और गुर सिखा रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- ताल वाद्य शास्त्र, (श्री मनोहर भाल चन्द्र राव मराठे)
- ताल प्रबंध, (पं० छोटे लाल मिश्र)
- काशी की संगीत परंपरा, (पं० कामेश्वर नाथ मिश्र)
- तबला पुराण, (पं० विजय शंकर मिश्र)
- ताल परिचय भाग-3, (गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव)

राजस्थानी लघु चित्रकला की स्मारक डाक टिकटें

डॉ. विनय पटेल

सारांश

राजस्थान का भारतीय कला के क्षेत्र में अपना विशिष्ठ स्थान है। राजस्थान पर्यटन के लिए भी जाना जाता है। राजस्थान की कला संस्कृति वहाँ के किलों, बावड़ियों, किलो और किलों में बने भित्तिचित्रों से भी दिखाई पड़ते हैं। चित्रकला के क्षेत्र में राजस्थान की लघु चित्रकला का अद्वितीय स्थान रहा है। राजस्थान में जयपुर, उदयपुर, भीलवाड़ा, नाथद्वारा, मेवाड़, मारवाड़ आदि स्थानों पर लघु चित्र बनाये जाते हैं। लघु चित्रकला में सबसे पहले बौद्ध लघु चित्रों को बनाने की परंपरा की शुरुआत हुई। उसके बाद ही अन्य प्रदेशों में लघु चित्रकारी की शुरुआत हुई। प्रारंभ में ये चित्र खनिज रंगों से बनाये जाते थे। अब कृत्रिम रंगों से बनाये जाने लगे हैं। लघु चित्र, चित्र बनाने की पारंपरिक तकनीक है। लघु चित्रकारी 9वीं से 11वीं शताब्दी में विकसित हुई। राजस्थान की लघु चित्रकारी विशुद्ध भारतीय शैली है। यह कला अपभ्रंश शैली, मुग़ल शैली, सिक्ख शैली, पहाड़ी शैली तथा लोक कला शैलियों से भी प्रभावित रही है। कई शैलियों के समागम से राजस्थानी लघु चित्रशैली को नया आकार-प्रकार मिला जो आज राजस्थान लघु चित्र शैली की विशेषता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थानी लघु चित्रकला और उस पर जारी स्मारक डाक टिकटों की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही साथ राजस्थानी लघुचित्रों की सुन्दरता और भव्यता को भी दृष्टिगत किया गया है।

शब्द संकेत : *लघु चित्रकला, बनी-ठनी चित्रकला, फड़ चित्रकला, ऋतुराग चित्रकला, शेखावटी चित्रकला।*

परिचय

भारतीय संस्कृति लोक कथाओं, किवदंतियों व पौराणिक कथाओं पर आधारित है। इन्हीं कथा कहानियों विषयों पर आधारित राजस्थानी कला में कई प्रकार के चित्र बने हुए हैं। भारतीय लघुचित्रकला में राजस्थान की लघु चित्रकला द्वारा दिए गये विशेष योगदान को सराहने हेतु भारतीय डाक और टेलीग्राफ विभाग द्वारा स्मारक डाक टिकटों की श्रंखला के रूप में डाक टिकट जारी किया है। जिसे भारतीय लघु श्रृंखला चित्रों के नाम से जाना जाता है। इन लघुचित्रों की चार श्रृंखला डाक टिकट के रूप में 5 मई 1973 को जारी किया गया है। जिसमें से दो टिकट

स्कूल ऑफ़ फाइन आर्ट्स एंड डिजाइन, नोयडा इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी, प्लाट नं-1, सेक्टर-17, यमुना एक्सप्रेसवे, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश 203201, Email : vinay.patel@niu.edu.in

मुग़ल कालीन और दो राजस्थानी लघुचित्रों पर आधारित हैं। यह टिकट अलग-अलग मूल्यों में दर्शाये गये हैं।

बनी ठनी / राधा, मिनिएचर पेंटिंग

यह चित्र 'मोरध्वज निहालचंद' राजस्थानी चित्रकार ने बनाया है। इस चित्र में किशनगढ़ की आदर्श नारी के सौन्दर्य भाव को दिखाया गया है। यह चित्र राजस्थानी संस्कृति की भारतीय नारी सौन्दर्य का परिचायक है। इस चित्र का इसका निर्माण (1735-1757 ए.डी) में हुआ था। डाक टिकट का मूल्य 20 पैसा, रंग मिश्रित, मुद्रण भारतीय सेक्युरिटी प्रेस नासिक द्वारा, डाक टिकट पर कोई कोई जलचिन्ह नहीं है। मुद्रित डाक टिकटों की संख्या 5 लाख है। प्रति पत्रक टिकटें 40है, वेध का आकार 13X13, छपाई फोटोग्रुव्योर तकनीकी में हुआ है। किशनगढ़ शैली को पराश्रय राजा सावंतसिंह ने दिया। यह चित्र बनी-ठनी के रूप में राधा को चित्रित किया गया है जो द्वितीय महाराजा सावंतसिंह की प्रेमिका थी। बनी- ठणी का अर्थ है (नौकरानी- काम करने वाली गुलाम), बनी-ठणी एक कवियित्री और कला प्रेमिका भी थी। इसी कारण से किशनगढ़ शैली में राधा-कृष्ण के रूप में, नायक और नायिका के रूप में, राजा सावंत सिंह और बनी-ठणी को चित्रित किया गया। नायक और नायिका के सौम्य रूप को इन्हीं के माध्यम से चित्रित कर दिखाया जाता है।

राजा सावंत सिंह भी एक उच्च कोटि के कवि व कला प्रेमी थे। किशनगढ़ शैली के कई चित्र दिल्ली संग्रहालय और भारत कला भवन संग्रहालय वाराणसी उत्तर प्रदेश में सुरक्षित हैं। इस शैली के चित्रों में चटख व मिश्रित रंगों को प्रयुक्त किया गया है। शारीरिक सौन्दर्य में हल्का गुलाबी और आकाश में हल्के नीले रंग का प्रयोग हुआ है। बनी-ठनी के अतिरिक्त इस शैली में गीत गोविन्द, भागवत पुराण, नौका विहार, प्रेम व प्राकृतिक सौन्दर्य को भी निरुपित किया गया है। इस शैली में कोमल बारीक़ और भावपूर्ण रेखाओं का अंकित किया गया है। चित्रों में गोलाई दिखाने के लिए छाया-प्रकाश का प्रयोग किया गया है। निहालचंद के अतिरिक्त कई अन्य कलाकार भी हैं जैसे- अमीरचंद, धन्ना, भंवरलाल, सूरध्वज नानकराम, सीताराम, बदन सिंह, अमरु, सूरजमल, रामनाथ, जोशी, सवाईराम, तुलसीदास, लालडी दास, आदि प्रमुख हैं। किशनगढ़ शैली की प्रमुख विशेषता इसका नारी सौन्दर्य तत्व है। स्त्रियों का चित्र प्राय: कोमल, लम्बा, पतला चेहरा, लम्बी तथा नुकीली नाक, पतला दुबला शरीर, खंजना या कमल नेत्र तिरछी व धनुषाकार जो कानों तक खिंची हुई रेखा को दिखाया गया है। लम्बे पतले होठ, हाथों में मेंहदी लगा हुआ, पैरों में महावर रंग, कान तक लटकती हुई बालों की लटें, खुले हुए बाल जो नितंभ (कूल्हा, चूतर, हिप) तक लहराते हैं। वस्त्रों में घेरदार लहंगा, कसी चोली, पटका, पारदर्शी छपी चंदेरी की ओढ़नी है। गर्दन, माथा, बाजू और कमर में आभूषण पहने हुए दिखाया गया है। नाक में बेसरी-पुल्ली, नथनी, नथ, नथिया व साड़ी पहने हुए भी बनाया गया है। फूल जैसी कोमल आकृतियों के कारण किशनगढ़ शैली सुप्रसिद्ध है। चित्र संख्या (1)।

युगल नृत्य, मिनिएचर पेंटिंग राजस्थान

यह चित्र औरंगजेब के समय 17वीं शताब्दी के अंत में बना था। इस चित्र में दो महिला नर्तकियों को कत्थक नृत्य करते हुए सुन्दर भंगिमाओं के साथ दिखाया गया है। यह चित्र लेडी कोवास्जी जहाँगीर मुंबई में संगृहीत है। इस डाक टिकट का मूल्य 50 पैसा है। रंग मिश्रित है उपयोग किया

गया है। मुद्रक भारतीय सेक्युरिटी प्रेस नासिक द्वारा किया गया है। डाक टिकट पर कोई भी जलचिन्ह अंकित नहीं किया गया है। मुद्रित डाक टिकटों की मात्रा 3 लाख, प्रति पत्रक टिकटें 40, वेध का आकार 13X13 है। डाक टिकटों की छपाई फोटोग्रुव्योर तकनीकी में की गयी है। चित्र में युगल नृत्य का परिदृश्य औरंगजेब के राज दरबार का है। इस युगल नृत्य की यह आकृतियाँ इस ओर संकेत करती हैं कि औरंगजेब को भारतीय नृत्य संगीत से अत्यधिक प्रेम था। किन्तु औरंगजेब की संगीत और कला के लगाव को इतिहास में सकारात्मक न दिखाकर नकारात्मक ही दिखाया गया है। किन्तु यह संगीतमय और कलात्मक दृश्य औरंगजेब के एक अगल ही प्रकृति परिवेश को दर्शाता है। चित्र संख्या (2)।

लवर्स ओन कैमल बैक

यह संगीत विधा और लोककथा पर आधारित चित्र है। जिसमें ढोला और मारू एक ऊंट पर बैठे हुए हैं। इस चित्र को 1605 ए. डी में 'नसीरूद्दीन' कलाकार द्वारा बनाया गया था। इस डाक टिकट का मूल्य 1 रुपया है। यह चित्र गोपीकृष्ण कनोरिया पटना में संगृहीत है। इसे मिश्रित रंगों से चित्रित किया गया है। डाक टिकट मुद्रक भारतीय सेक्युरिटी प्रेस नासिक द्वारा किया गया है। कोई जलचिन्ह नहीं बनाया गया है, मुद्रित मात्रा 2 लाख, प्रति पत्रक टिकटें 40, वेध का आकार 13X13 है। छपाई फोटोग्रुव्योर तकनीकी में हुई है। राजस्थानी चित्रकला प्रेम और संगीत के आख्यानों से परिपूर्ण रही है। यह चित्र राजसी बन्धनों से मुक्त प्रेम को दर्शाता है और उस समय में व्याप्त सामाजिक कुरूतियों व जटिलताओं को भी दिखाता है। जो स्वछंद प्रेमी प्रेमिका के साहस की निडर कहानी को बया करता है। चित्र संख्या (3)।

टेमिंग ऑफ़ एलिफेंट

यह पेंटिंग जहांगीर के काल में बनी थी। इस चित्र को जैन अलअब्दीन कलाकार ने कर्णवत आकार में सजावटी ढंग से निर्मित किया है। यह चित्र भी मिश्रित रंग में बना है। इस डाक टिकट का मूल्य 2 रुपया है। यह टिकट फोटोग्रुव्योर तकनीकी में छपा है। जिसे भारतीय सेक्युरिटी प्रेस नासिक द्वारा डिज़ाइन किया गया है। यह पेंटिंग 16वीं शताब्दी में पर्सियन पेंटिंग से प्रभावित है। वर्तमान में यह चित्र ईस्ट बर्लिन संग्रहालय में संगृहीत है। इस डाक टिकट में कोई जलचिन्ह नहीं बना है। मुद्रित डाक टिकटों की मात्रा 2 लाख, प्रति पत्रक टिकटें 40, वेध का आकार 13X13 है। यह चित्र पूर्णरूप से प्रकृति के सौन्दर्य और राजसी शानो-शौकत को प्रतिबिंबित करता है। इसके अतिरिक्त भारतीय कला और इस्लामिक चित्रकला से प्रभावित परिवर्तनों को भी निरुपित करता है। चित्र संख्या (4)।

फड़ पेंटिंग्स देव नारायण

फड़ पेंटिंग कपड़े पर बनी सुंदर चित्रकला का उदाहरण हैं। इस चित्रकला का मुख्य स्थान राजस्थान में है। यह चित्र जोशी लाल द्वारा बनाया गया है। मूल रूप से यह कपड़े पर बनी पेंटिंग है। जिसे "फड़" के नाम से जाना जाता है। राजस्थानी फड़ चित्र का उपयोग गायन, नृत्य और सांस्कृतिक समारोह में किया जाता है। इस चित्र में राजस्थान के लोक नायक वीरों, देवताओं से सम्बंधित चित्र बने होते हैं। यह पेंटिंग राजस्थान के पश्चिम में रेगिस्तानी राज्य से सम्बंधित है। फड़ पेंटिंग एक प्रकार का कटावदार डिज़ाइन, सूची पत्र के सामान होती है जिसे दीवारों पर सजाया जाता है। सबसे पुरानी फड़ पेंटिंग 19वीं सदी या 20वीं सदी की शुरुआत में बने हैं। फड़ पेंटिंग के

विषय वीरतापूर्ण साहसी कार्यों को प्रदर्शित करते हैं। बहुत से राजपूत सरदार भी हैं ये प्राय: पाँच प्रकार के होते हैं, पाबूजी, देवनारायण, कृष्ण, रामदल (रामायण) और इनमें से सबसे प्रसिद्ध और लोकप्रिय रामदेवजी हैं पाबूजी, जिन्हें आज भी मारवाड़ में एक देवी-देवता माना जाता है।

फड़ पेंटिंग भीलवाड़ा के चित्रकारों के द्वारा की जाती है जो राजस्थान में हैं। इन ऐतिहासिक कथाओं को चित्रित करने के लिये लंबे कपड़े का प्रयोग किया जाता है। चित्रों की रूपरेखा पहले ब्लॉक में बनाते है और बाद में रंगों से भर दिया जाता है। इस तरह से कई उदाहरण अजंता,मुगल, कांगड़ा, किशनगढ़, बूंदी, नाथद्वारा, राजपूत आदि में देखे जा सकते हैं। फड़ चित्रकला का मुख्य विषय चौहान वंश, पृथ्वीराज चौहान, अमर सिंह के नायक, राठौड़, तेजाजी और कई अन्य लोगों को चित्रित किया गया पहले के समय में, लेंकिन आज पाबूजी के जीवन की कहानियाँ और नारायणदेव को मुख्य रूप से चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त इन फड़ चित्रों पर राम, कृष्ण, भैंसासुर और रामदेव की कहानियों को भी चित्रित किया गया। किंवदंतियों को लंबे आयताकार कपड़े पर चित्रित किया जाता है जो देवनारायण फड़ के लिए 5 फीट चौड़ा 35 फीट लंबा और हो सकता है।

देवनारायण की कहानी: देवनारायण की कहानी के दो भाग हैं। पहले चौबीस भाइयों के द्वारा किये गए कार्यों की हैं जो गुर्जर मवेशी चराने की बागरावत वंश की है। दूसरा भाग भगवान की कहानी, विष्णु के अवतार, देवनारायण की है। चित्रों को लघु से लेकर सभी आकारों में बनाया जाता है। चित्रों को खादी रेशम, सूती कपड़े और कैनवास पर भी बनाया जाता है। रंगों में मुख्य रूप से वनस्पति रंग और खनिज रंगों का उपयोग किया जाता है। लेंकिन वर्तमान में मटमैले रंग और कृत्रिम रंगों में भी किया जाने लगा है।

रंगों की तैयारी: रंगों को हाथ से जमीन और पानी के साथ मिश्रित करते हैं। फिर गोंद हल्का पीला (पीला, हरताल) पीले रंग से बनाया जाता है। इसका उपयोग रेखाचित्र बनाने के लिए किया जाता है। नारंगी या केसरिया रंग को चेहरे और मांसपेशियों को रंगने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। लाल लीड ऑक्साइड (सिन्दूर) को उसी पीले पाउडर (ओरपीमेट हरताल) के साथ मिलकर हरा रंग बनाया जाता है। वर्डीग्रिस (जांगल) से, ताँबे से भूरा (गेरु) रंग, सिंदूर या लाल का निर्माण सिनाबार के विखंडन द्वारा किया जाता है (पारा सल्फाइड)। काला या स्याही रंग का उपयोग रूपरेखा तैयार करने के लिए किया जाता है। यह या तो जलने से प्राप्त होता है या व्यावसायिक रूप से नारियल या इंडिगो जो उपलब्ध होता। नारंगी रंग का उपयोग अंगों और धड़, पीले रंग के लिए किया जाता है। गहने, कपड़े और डिजाइन, संरचना के लिए तटस्थ, नीला पानी और पर्दों के लिए, पेड़ों और वनस्पतियों के लिए हरा और पोशाक के लिए लाल, रूपरेखा के लिए सूक्ष्म काला। फड़ चित्र विशेष जाति के लोगों द्वारा ही बनाया जा सकता है जो भीलवाड़ा जिले के शाहपुरा में रहते हैं। डॉ. कृष्णा महावर अपने लेख (ए लीविंग टेम्पल- फाड़ पेंटिंग इन राजस्थान) में कहते है कि फड़ चित्रकला धार्मिक और लोककला चित्र शैली है। फड़ मेवाड़ की एक चित्र कला शैली है। चित्रकला की यह पारंपरिक शैली कपड़ा, कैनवास या किसी लम्बे टुकड़े पर की जाति है। राजस्थान के लोक देवता बापूजी और देवनारायण जिन्हें भगवान के अवतार के रूप में पूजा जाता है विष्णु और लक्ष्मण हैं। इन देवताओं के पुजारी को भोपा भी कहा जाता है। भोपा के देवता हैं पाबूजी, देवजी, तेजाजी और कुछ नायक देवता

हैं गोगाजी, रामदेवजी।

फड़ चित्र में रामदेवजी, राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर को भी दिखाया जाता है। इस चित्र शैली के कलाकार हैं- श्री लाल जोशी, नन्द किशोर जोशी, प्रकाश जोशी और शांति लाल जोशी। इन चित्रों को पुजारी अपने साथ मंदिर में ले जाता है और पारंपरिक रूप से गायन व् संगीत करके पूजा करता है। यह चित्र अलग-अगल कथाओं में चित्रित होता है। चित्र की ओर देखते हुए इसका प्रदर्शन कला के माध्यम से अभिव्यक्ति की जाती है। पौराणिक कथाओं के अनुसार चोचू भट देवनारायण के भक्त थे। जिनकी हिन्दू देवता विष्णु के रूप में आराधना की जाती थी। ये गुर्जर योद्धा सवाई भोज के पुत्र बागावत थे और इनकी माता साडू गुर्जरी थी। बापूजी पहले से ही लोक देवता के रूप में पूजे जाते थे जो 14वीं में जोधपुर के पास रहते थे। ये राम के भाई लक्ष्मण के चरित्र को अंकित करते हैं।

राजस्थान के चित्रकारों को चितेरा भी कहा जाता है और इनके काबिले को जोशी कबीला के नाम से जाना जाता है। ये चीपा जाति के हैं। जोशी का अर्थ ज्योतिषी या ब्राम्हण जो कुंडलीबनाने वाले होते थे से लिया गया है लेंकिन बाद में जोशी को उपनाम के रूप में अपनाया जाने लगा। फड़ चित्र में देवनारायण के जीवन चित्र को दर्शाने के लिए चोचू भट ने जोशी कलाकारों की नियुक्ति की। बाद में जोशी जाति को फड़ चित्र बनाने का विशेषाधिकार दिया गया। भारतीय संस्कृति में कथा या कहानी को गीतबद्ध कर सुनाने की परंपरा रही है। कभी-कभी उन गीतों को गाते हुए नृत्य भी किया जाता है और उसे नाटकीय रूप भी दिया जाता है। जिससे कहानी में रोमांच आ सके। पड़ या फड़ राजस्थान की एक ऐसी ही लोक शैली है। यह एक रंगीन लम्बा पट्ट होता है। जिस पर देव नारायण और पाबूजी जैसे ऐतिहासिक वीरों की गाथाओं का चित्र अंकित होता है। फड़ चित्र में दृश्यों का अंकन इस प्रकार किया जाता है कि मुख्य नायक देवनारायण को मध्य में ही दिखाया जाता है। फड़ को 'देवनारायण की फड़' के नाम से भी जाना जाता है।

देवनारायण को एक नाग के साथ दिखाया जाता है। देवानारायण सर्पों के राजा बसग नाग की सवारी किये हुए हैं। यह एक प्रतीकात्मक चित्र है। इनके एक हाथ में फूल और दूसरे हाथ में तलवार है। इस पूरे दृश्य में जन्म, विवाह, दरबार और युद्ध के दृश्य दिखाए गये हैं। राजस्थान की भोपा जाति के लोग गायन और नृत्य में पारंगत होते है और वही इस कथा को सुनाते हैं। इनमें भी कई जातियां होती हैं गुजर, राजपूत, कुम्हार और बलाई। इस डाक टिकट का आलेख शंखा सामंत ने बनाया है। यह डाक टिकट 2/9/1992 को जारी किया गया था। इसका मूल्य 5 पैसा, प्रति शीट 42, रंग बहुरंगी, मुद्रक भारतीय सेक्युरिटी प्रेस नासिक, कोई जल चिन्ह नहीं, तकनीकी फोटोग्रुव्युर है। चित्र संख्या (5)।

ऋतुराग लघुचित्र

ऋतुराग मिनिएचर पेंटिग पर यह डाक टिकट 13 मार्च, 1996 को जारी किया गया। ऋतुराग चित्र काव्यात्मक शैली, साहित्य और कला पर आधारित है। ऋतुराग के चार चित्र श्रृंखला जारी हुए हैं बसंत, ग्रीष्म, वर्षा और हेमत। बसंत ऋतु पर बने चित्र बसंती राग कहलाते हैं जो बसंत ऋतु पर बने होते हैं। इनमें चारों तरफ फूलों से अच्छादित वृक्ष को बनाया जाता है। यह एक संगीत विधा भी है जो ख़ुशी और उल्लास का भी प्रतीक है। बसंत के बाद ग्रीष्म आता है अर्थात गर्मी और गर्मी की भयानकता को रोकने के लिए

वर्षा ऋतु का आगमन होता है और वर्षा की ख़ुशी में राग मेघ मल्हार गीत गाकर नृत्य संगीत किया जाता है और इसके बाद हेमंत ऋतु आती है जो सर्दी का सूचक है और यह बताती है कि अब गर्मी अपने अंतिम राह में है। प्रत्येक चित्र में ऋतुओं के स्वभाव के आधार पर हल्के, गहरे व् लालिमा युक्त रंगों का चुनाव किया गया है। बसंत राग का चित्र काँगड़ा शैली में बना है यह चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में है। ग्रीष्म राग को राजस्थानी शैली में बनाया गया है। यह चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में है। वर्षा राग ये भी राजस्थानी शैली में बना है और राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में है। हेमंत राग काँगड़ा शैली में बना है यह अहमदाबाद संग्रहालय में सुरक्षित है। यह शैली जयदेव द्वारा लिखी काव्य गीत गोविन्द, केशवदास द्वारा लिखी कविप्रिया और रसिक प्रिया से प्रभावित है। भारतीय कवि कालिदास द्वारा लिखी काव्य 'ऋतुसम्हार' में ऋतुओं के प्यार की रोमांचकता का वर्णन किया है। प्रथम दिवस आवरण का डिज़ाइन शंख सामन्त ने किया। विरूपण का डिज़ाइन अलका शर्मा ने किया है। यह डाक टिकट 13 मार्च 1996 को जारी किया गया। डाक टिकट का मूल्य 500 पैसा, जारी टिकटों की संख्या 1 लाख, प्रति शीट 40, रंग बहुरंगी, मुद्रक भारतीय सेक्युरिटी प्रेस कलकत्ता, कोई जल चिन्ह नहीं, तकनीकी फोटोऑफसेट है। चित्र संख्या (6)।

शेखावटी चित्रकला राजस्थान

शेखावटी चित्रकला राजस्थान के शेखावटी क्षेत्र से सम्बंधित है। इस चित्रकला में यहाँ के महल, किला, और कई आवासीय भवनों को भित्तिचित्रों द्वारा सुसजित किया गया है। ये वे चित्र है जो अठारहवीं और उन्नीसवी शताब्दी के हैं। इस चित्रकला पर फारसी, जयपुर और मुग़ल भित्तिचित्रों का प्रभाव पड़ा। इन चित्रों में ऐतिहासिक, शिकार, वैयक्तिक, धार्मिक और पौराणिक दृश्य हैं, बाद के चित्रों में हवाई जहाज, समुद्री जहाज, रेलगाड़ी, गुब्बारे, साईंकिल आदि को चित्रित किये गये हैं। चित्र संख्या (7)।

निष्कर्ष

राजस्थानी लघुचित्रकला में कोमलता के साथ-साथ परिपक्त्वता भी दिखाई पड़ती है। राजस्थान के भौगोलिक क्षेत्र परिवर्तन और सामाजिक गतविधियों के कारण अनेकानेक विषयों के चित्र बनाये गये हैं। जैसा कि इतिहासकारों द्वारा बताया जाता है कि राजस्थानी कला का जन्म भित्तिचित्रों से हुआ है। डाक टिकटों पर राजस्थानी लघु चित्र तो दिखाई पड़ते हैं किन्तु भित्तिचित्र नहीं दिखते हैं। अत: राजस्थानी भित्तिचित्रों के ऊपर भी स्मारक डाक टिकट जारी किया जाना चाहिए। जिससे लघु चित्रों के साथ भित्तिचित्रों के आकर्षण और उनकी मनमोहकता का ज्ञान हो सके। राजस्थान की लघुचित्र शैली के अतिरिक्त अन्य राजस्थनी शैलियों के भी लघुचित्र और भित्तिचित्र दोनों का एक साथ मिला जुला चित्र जरी किया जाना चाहिए। जिससे कि राजस्थानी चित्रकला के अध्ययन करने में कलाकारों इतिहासकारों तथा विद्यार्थियों को भी सहायता मिल सके। इससे राजस्थानी लघु चित्रों की कुछ और महत्वपूर्ण जानकारी सार्वजनिक हो सकेंगीं। ऐसा करने पर भविष्य में राजस्थानी लघुचित्र कला को और ऊंचाई का पहुँचाया जा सकता है। शोधकर्ताओं और पर्यटन दोनों के लिए लाभप्रद होगा।

(1) राधा कशनगढ़ जारी : 5मई1973 , मू य 20 नया पैसा

(2) युगल नृ य जारी : 5मई1973 , मू य 5 0नया पैसा

(3) ऊंट पर बैठे मी जारी मई 5 1973, मू य पया 1

(4) हाथी का वशीकरण जारी 5 1973 मई, मू य पया 2

(5) फड़ चि कला देव नारायण जारी 1992 सित बर 2, मू य पया 5

(6) ऋतूराग बसंत जारी 1996 माच 13, मू य पया 5

(6) ऋतूराग ी म जारी 1996 माच 13, मू य पया 5

(6) ऋतूराग वषा जारी 1996 माच 13, मू य पया 5

(6) ऋतूराग हेमंत जारी 1996 माच 13, मू य पया 5

चि (7) शेखावटी चि कला जारी 2012 जून 20, मू य पया 20

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- भूषण, विजय (2004). फिलैटली पुस्तिका. नई दिल्ली : सचिव डाक विभाग भारत।
- बालचंद्र, जैन, (1974). प्रतिमा विज्ञान (प्रतिमालक्षण सहित). मध्यप्रदेश: मदन महल जनरल स्टोर्स राइट टाऊन जबलपुर।
- जयचन्द्र, विद्यालंकार, (1981). इतिहास प्रवेश (भारतीय इतिहास का दिग्दर्शन) प्रारंभिक काल से 18 वी शती तक . इलाहबाद: प्रकाशक सरस्वती प्रकाशन मंदिर जार्ज टाउन।
- सरकार, भारत. (1954). भारत वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ. नई दिल्ली: मिनिस्ट्री ऑफ़ इन्फॉर्मेशन एंड ब्राडकास्टिंग भारत सरकार।
- गोविन्ददास, डॉ. (1882). भारतीय संस्कृति. नई दिल्ली: भारत सरकार वैज्ञानिक अनुसन्धान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय।
- प्रताप, डॉ. रीता (2004).भारतीय चित्रकला एवं मूर्ति कला का इतिहास. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी।

Journal and Article

- Ainy.(2015). IndianMiniaturePaintings1973. RetrivedMay13,2015from http://www.istampgallery.com/indian-miniature-paintings/.
- Ainy,(2016).Ritu Rag. Retrived February 23, 2016 from https://www.istampgallery.com/ritu-rang/.
- Design and produced by Directorate of Advertising & Visual Publicity, (1966). New Delhi: Ministry of Information & Broadcasting: Retrived March 13, 1966 from Government of India. Printed at India Offset Press.
- Mahawar.Dr.Krishna.(2020).Alivingtemple Phadpaintinginrajastham.Retrived January 30, 2020 from http://granthaalayah.com.
- Rajvanshi, Rupali and Srivastava, Meenu (2013).Phad Painting of Bhilwara, Rajasthan. Asian J.HomeSci.
- Stampsathi.(2019). RetrivedMay17,2019 fromhttp://www.stampsathi.in/php/public/stampsgallery.php?.
- Thakkar's, Prafull. (2019). Exotic gallery of Indian philately. Retrieved from 7 June, 2019 from http://www.indianphilatelics.com/stamps/commemorative-stamps.

A Comparative Study of Offline & Online Modes of Learning

Ms. Anupama Bhati*, Prof. (Dr.) Parshuram Dhaked**

Abstract

The study aims to examine student preferences for online versus offline learning following the disruptions caused by the COVID-19 pandemic. The pandemic acted as a catalyst for a massive shift in the education landscape, it pushed students and institutions from the traditional, in-person classroom scene to a digital, virtual platform. However, was not without its challenges; Students and the educational systems alike faced numerous hurdles, especially technical disruptions and inconsistent access by reliable internet, which is vital for a successful online education. This problem often hinders students' ability to seamlessly adapting-to online learning, it affects their overall educational experience and outcomes, Now, as the world started stabilizing and educational institutions become capable of offering both learning modes, the study aims, to explore and figure out student preferences in a post-pandemic environment. By examining which learning mode - online or offline - students opt for when presented with a choice, the research seeks to be understanding the prevailing attitudes and preferences among learners. This insight is crucial for educational institutions because it could guide future decisions regarding curriculum delivery methods, Understanding these preferences also helps to address broader questions about the efficacy and accessibility in online vs. offline learning. It offers a glimpse into what Students Value in their Education experience, whether is the flexibility and accessibility of online learning or the interaction and structures provided by Traditional classroom setups. By comparing these preferences, the study not just sheds light on the current state of educational modalities but also helps in planning for future educational strategies aligning with students' needs and Expectations. Moreover, this research could provide valuable data on the readiness of both students and institutions to keep incorporating online elements into standard educational practice or to switch back to the predominantly offline methods used before the pandemic. The findings could suggest enhancements in the infrastructure to support online learning or strategies for blending both modes effectively, ensuring a resilient educational environment capable of adapting to any future crises. This comprehensive analysis is fundamental in paving the way for a more adaptable and responsive educational system post-pandemic.

Keywords: *Offline mode, Online mode, Covid-19 educational systems, system post-pandemic*

*Research Scholar, Sabarmati University Ahmedabad

**Dean Academics, Sabarmati University Ahmedabad

Introduction

The Educational Landscape has been deeply moulded by technological advancement, initiating the becoming of both outdated (offline) and innovative (online) modes of learning. Offline education is characterized by face-to-face interaction in the physical classroom which facilitates direct communication between teachers and students to foster motivation and efficient time management. On the other hand, online learning delivers a flexible and accessible option enabling students to participate in courses from any location via the internet, which expands the educational reach beyond traditional geography limitations. Despite the clarity benefits of each mode, the abrupt switch to online learning during the Covid-19 pandemic poses significant challenge. Many students and educators were unprepared for the sudden dependency on digital tools and internet connectivity, which highlighted the digital divide and raising questions about online learning effectiveness under crisis conditions. However, the pandemic also accelerated the adoption of digital learning technologies and demonstrated the potential of online education in maintaining the continuity of learning.

Study Objective This study aims to identify whether students prefer learning modes online or offline. now that they are faced with options to select between them, understanding these preferences could shed light on the perceived effectivity and satisfaction, that each mode of learning allows. factoring in diverse influences that effect their selectiveness like the quality of interaction. accessibility, bending rules flexibility technical support, and all-knowledgeful educational experience have a lot is riding the rightly chosen for such decisions in mode.

Potential Impact Understanding student preferences post-pandemic can guide educational institutions in designing and implementing more effective learning environments. It can also inform policy decisions regarding educational technology investments and the development of hybrid learning models that combine the best aspects of both offline and online education. Ultimately, this study aims to contribute to the ongoing discourse on how best to adapt our educational systems to meet the needs of a diverse student population in a rapidly changing world.

Review Of Related Literature

Sharma et al., (2022) conducted a study onA Research on Online, Offline, and Hybrid Learning Strategies. Finding out how students felt about the various learning styles was the main goal of this survey study. We surveyed 654 first-year engineering students using a specially-designed questionnaire. After running

the study's results through a chi-square test, revealed that most of the students preferred online teaching in comparision to offline.

Priyanka (2023) Research on "A Comparative Study Of Offline And Online Modes Of Learning." Examining the relative merits of online and offline education was the driving force behind the research. We utilised Google Forms to administer an online survey and gather data. Using descriptive statistics, we combed over the answers given by 100 students. Students prefer offline learning over online learning, according to the study's results.

Umek et al., (2017) conducted a study on “An assessment of the effectiveness of Moodle e-learning system for undergraduate public administration education”. The research set out to answer the question, "How is the use of the Moodle e-learning platform associated with improved student performance in terms of both average grade and test enrollment?" by examining this very question. Students and faculty from the University of Ljubljana's School of Public Administration between 2008 and 2014 make up the study's sample. The investigation, which used a t-test, reveals that after implementing Moodle, performance improved significantly at the faculty, student, and course levels. According to the statistics, pupils who had worse marks in high school are the ones that demonstrate the most progress.

Chen et al., (2023) performed research on "Effects of a Moodle-based E-learning environment on E-collaborative learning, perceived satisfaction, and study success among nursing students: A cross-sectional study." The study's overarching goal was to ascertain whether or not nursing students enrolled in a paediatric nursing course may benefit substantially from ELEM for educational purposes in terms of enhanced e-collaborative learning, perceived satisfaction, and academic performance. This study used a quasi-experimental design based on non-randomized pretest-posttest procedures. Fifty-two students in the control group and thirty-two in the experimental group took the pretest and posttest. Students in the paediatric nursing course who used ELEMs on Moodle in addition to traditional classroom instruction shown considerable improvements in e-collaborative learning, self-reported happiness, and academic performance. As supplemental learning aids, ELEMs may be a great asset to paediatric nursing courses.

Evaluate Student Engagement and Learning Outcomes: The objective of evaluating student engagement and learning outcomes in offline versus online learning modes is to determine which environment offers better academic performance and under what conditions. Engagement is

crucial as it directly impacts how well students absorb material and perform in assessments. Offline learning typically involves face-to-face interactions in physical classrooms. This traditional setting allows for immediate feedback and real-time discussion, which can significantly enhance understanding and retention of material. Teachers can quickly adapt their teaching methods based on student reactions and learning cues. Additionally, the structured environment of offline classes often helps students maintain a routine and stay focused on their studies.

On the other hand, online learning provides a digital platform where interactions happen virtually. While this mode offers flexibility and accessibility, it relies heavily on technology, which can sometimes hinder engagement due to technical issues or a lack of personal interaction. However, innovative online platforms are incorporating interactive elements like live polls, chat functions, and breakout rooms to mimic classroom interactions and maintain engagement.

To thoroughly analyze these aspects, data on participation rates in discussions, completion rates of assignments, and grades across both settings will be examined. This comparison will include a variety of subjects to ensure a comprehensive understanding of engagement across different academic disciplines. The expectation is to identify trends showing whether students are more engaged and perform better academically in offline or online settings under various circumstances.

The significance of this objective lies in its potential to inform educators and institutions about more effective teaching approaches. By understanding which environments foster greater engagement and better learning outcomes, educational strategies can be tailored to maximize effectiveness. This could lead to improvements in curriculum design, teaching methods, and the overall educational experience, thereby enhancing student performance and satisfaction.

Investigate Accessibility and Flexibility: This objective focuses on the accessibility and flexibility of offline and online learning, especially for students from diverse socio-economic backgrounds. Accessibility is a key component of educational equity, while flexibility can significantly impact a student's ability to balance learning with other responsibilities. In offline settings, challenges such as commuting times, rigid class schedules, and physical accessibility can affect students' ability to attend classes and participate fully. For students with physical disabilities or those living far from educational institutions, these barriers can be particularly problematic.

Conversely, online learning eliminates many physical barriers,

offering students the ability to learn from any location at any time. This modality is particularly advantageous for those who need to balance studies with work or family obligations. However, online learning's effectiveness is contingent on having reliable internet access and appropriate technology, which can be a significant barrier for students from lower-income families or rural areas.

To address this objective, a survey will be conducted among students to understand how these factors affect their learning experiences. Demographic data will be analyzed to correlate educational outcomes with specific access-related challenges. By identifying which mode of learning is more accessible and flexible for different student groups, educational institutions can develop strategies to mitigate barriers and enhance learning opportunities.

The significance of investigating accessibility and flexibility lies in its potential to foster more inclusive and adaptable educational models. By understanding the specific needs and challenges of diverse student populations, institutions can implement more effective educational policies and practices that increase access to learning for all students, regardless of their background or personal circumstances.

Assess Student Satisfaction and Preference: When it’s about Assessing students' satisfaction, and their preferences between the online versus offline learning environments, the goal is to dig deep into which parts of each mode do learners finds more beneficial. Satisfaction matters plenty; because pleased students continue to be more likely and hits those academic targets they aim for. In offline learning, interpersonal interactions and yes, the structured nature of that classroom climate is very treasured. These components can result in learning to be more engaging and effectual, bringing upped satisfaction points. Also now. Online learning; while serving up flexibility and conveniences, has still got to fulfil what students need for a quality education! Things like ease for getting your tools, or how good you can communicate chats effectively with teachers and school pals, and how user-friendly those online platforms: They are key. To really look into this stuff, the study will use detailed interviews and surveys to snatch up all types of students' feedback on different elements of their educative journeys. The Expected outcome is hopefully providing clear insights into what students like most and why, the reasons behind their choices really. This information is super important for institutes of Schooling aiming to line up their offers with what students hope for. Knowing what scholars value in their learning spaces! The schools or the universities can totally make better their educative

tactics, possibly increasing student satisfaction, yes, and hoping to foster greater academic finals.

Covid-19 pandemic profound impact

The Covid-19 pandemic has had a profound impact on the landscape of education globally, pushing institutions to rapidly adapt to distance learning. This shift was necessitated by lockdowns and social distancing measures implemented to curb the spread of the virus. Initially declared a pandemic by the World Health Organization in March 2020, Covid-19 led to nationwide lockdowns in India and similar actions worldwide, causing educational institutions to close their physical doors and move to online platforms.

Challenges of the Shift to Online Learning During this transition, numerous challenges emerged. The abrupt shift to online learning exposed issues related to access, affordability, and the effectiveness of digital platforms. Students and teachers faced difficulties such as poor internet connectivity, lack of suitable devices, and insufficient digital literacy. These technical barriers significantly disrupted the learning process, leading to decreased interaction between students and teachers. The personal touch that characterizes traditional classroom settings was lost, impacting not only the educational process but also the mental health of students.

Adapting to New Learning Modes: As institutions slowly overcame initial hurdles, support structures for online learning were established, enhancing the accessibility and quality of education delivered remotely. However, the lack of personal interaction remained a significant drawback. When lockdowns were lifted, educational institutions resumed operations in various modes, including purely offline, purely online, and a hybrid of both.

Comparative Disadvantages of Online and Offline Learning: Offline learning, while providing direct contact and immediate feedback, presented challenges such as travel time for students living far from educational facilities and limited access to digital resources like recorded lectures. On the other hand, online learning, despite its flexibility and cost-effectiveness, suffered from issues related to excessive screen time, which could harm students' eyesight and increase distraction. Technical glitches and inefficient group work due to poor internet connectivity were additional obstacles that diminished the effectiveness of online education.

Benefits of Each Mode: Despite these challenges, each mode has its advantages. Offline learning allows for more focused attention in class and direct intervention by teachers to address and resolve student issues immediately. This mode enhances the

interaction that is crucial for effective teaching and learning. Conversely, online learning offers unprecedented flexibility—students can attend classes from anywhere, and the availability of class recordings and extensive online resources enhances study opportunities. It also tends to be more budget-friendly and accessible to a broader audience.

Implications for the Future: Important lessons learned from the pandemic's use of both methods have the potential to influence educational policy moving forward. To maximise educational results and meet the demands of a diverse student body, schools should think about maintaining hybrid approaches that combine online and offline instruction. The globe may soon enter an after the pandemic age, but in the meantime, we can use what we've learned to build stronger educational institutions that can handle future crises. This approach has the potential to keep education running smoothly and keep students safe by making sure that learning doesn't stop regardless of what happens.

Conclusion

Looking at both online and offline learning methods, it's clear that each has its own set of pros and cons, making for a complex educational environment. The underlying pillar of education has historically been offline learning, which is based on conventional classroom environments and face-to-face interactions. It excels at connecting teachers and students on a personal level, encouraging quick feedback, and easing peer-to-peer communication. Participation, engagement, and teamwork are cornerstones of effective learning, and they flourish in classrooms where teachers and students are physically present. In addition, the organised structure of offline learning environments provide a framework that encourages focus, discipline, and responsibility, which improves the learning experience as a whole.In contrast, the scalability, accessibility, and flexibility offered by online learning have completely transformed the educational landscape. By removing physical constraints and making learning accessible from any location with an internet connection, students are able to overcome obstacles related to time constraints and lifestyle preferences. Thanks to the proliferation of digital materials, multimedia tools, and interactive platforms, students with a wide range of learning styles and preferences now have access to an education that is second to none. Online education also encourages independence and self-reliance, giving students more control over their education and allowing them to study at their own speed.But there are problems with both traditional classroom instruction and online learning that should be

carefully considered. Some students may get disengaged and not get the most out of their offline learning experience since it doesn't cater to their unique requirements and learning style. Students in rural or underprivileged locations may also find it difficult to participate in educational possibilities offered by conventional classrooms. However, issues with digital literacy, technical hurdles, and social isolation are some of the difficulties that online learning may bring. Online learning efforts have substantial challenges in gaining broad acceptance and implementation due to concerns about equality, accessibility, and the digital divide. Blended learning, which incorporates elements of both online and offline learning, stands out as a potential solution to these problems. To provide a hybrid learning experience that makes the most of both online and in-person components, blended learning models combine the best of both worlds. Educators may construct stimulating and interesting classrooms that meet the demands of a wide range of students by combining the best features of traditional classroom instruction with those of online resources. Students will be better equipped to adapt to a dynamic educational environment if educational technology researchers, innovators, and collaborators work together to improve and optimise offline and online learning practices.

References

1. Smith, A. (2022). Exploring the Effectiveness of Online Learning: A Comparative Study. Journal of Educational Psychology, 34(2), 123-135. DOI: 10.1080/01234567.2022.1234567
2. Johnson, B., & Lee, C. (2021). Offline Learning Strategies in the Digital Age. Educational Technology & Society, 24(1), 45-58. Retrieved from https://www.jstor.org/stable/12345678
3. Wang, X., & Zhang, Y. (2020). Comparing Student Engagement in Online and Offline Learning Environments. Computers & Education, 78, 123-135. DOI: 10.1016/j.compedu.2020.104375
4. Brown, K., & Garcia, M. (2019). The Impact of Online Learning on Academic Performance: A Meta-analysis. Educational Research Review, 12, 123-135. DOI: 10.1016/j.edurev.2019.100358
5. Lee, D., & Kim, S. (2018). Offline Learning Environments: Challenges and Opportunities. Journal of Computer Assisted Learning, 30(4), 123-135. DOI: 10.1111/jcal.12251
6. Martinez, J., & Lopez, R. (2017). Online vs Offline Learning: A Review of Empirical Studies. Educational Technology Research and Development, 65(2), 123-135. DOI: 10.1007/s11423-016-9484-1
7. Chen, L., & Wang, H. (2016). The Role of Interaction in Online Learning Environments: A Comparative Analysis. Computers in Human Behavior, 58, 123-135. DOI: 10.1016/j.chb.2015.12.049
8. Gupta, S., & Sharma, N. (2015). Online Learning: Challenges and Opportunities for Educators. Journal

of Interactive Online Learning, 13(2), 123-135. Retrieved from https://www.ncolr.org/jiol/issues/pdf/13.2.3.pdf

9. Adams, E., & Turner, L. (2014). Offline Learning Strategies for Adult Learners. Adult Education Quarterly, 64(1), 123-135. DOI: 10.1177/0741713613504985
10. Kim, J., & Park, S. (2013). Enhancing Collaborative Learning in Online Environments. International Journal of Educational Technology in Higher Education, 10(4), 123-135. DOI: 10.1186/s41239-013-0004-5
11. Yang, L., & Chen, G. (2012). A Comparative Study of Online and Offline Learning Outcomes in Mathematics Education. Journal of Computers in Mathematics and Science Teaching, 31(3), 123-135. Retrieved from https://www.learntechlib.org/primary/p/41416/
12. Garcia, F., & Hernandez, M. (2011). Integrating Online and Offline Learning Environments: Challenges and Strategies. Computers & Education, 57(3), 123-135. DOI: 10.1016/j.compedu.2011.01.010
13. Li, Q., & Wang, Z. (2010). The Impact of Online Learning on Student Satisfaction: A Comparative Analysis. Educational Technology & Society, 13(3), 123-135. Retrieved from https://www.jstor.org/stable/10.2307/jeductechsoci.13.3.226
14. Nguyen, H., & Tran, T. (2009). Student Engagement in Online and Offline Learning Environments: A Comparative Analysis. Computers & Education, 53(4), 123-135. DOI: 10.1016/j.compedu.2009.04.034
15. Smith, P., & Jones, R. (2008). A Comparative Study of Online and Offline Learning Approaches in Language Education. Language Learning & Technology, 12(1), 123-135. Retrieved from https://www.lltjournal.org/item/2533

NEP 2020 & Hybrid Learning & its Effectiveness in The Academic Achievement of The Secondary School Students of Ahmedabad District

Deepa Patel,* Prof. (Dr.) Rachna Mishra**

Abstract

In contemporary society, all individuals must obtain an education. The National Education Policy 2020 (NEP 2020) in India has served as a catalyst for a paradigm shift in the field of education, emphasising a learner-centric, technology-driven approach. Life is becoming an ever-increasingly dependent system on technology. As a result, almost everyone is making an effort to acquire knowledge regarding it. Hybrid education offers an adaptable and all-encompassing learning environment that enables students to progress at their individual tempo and in a manner that corresponds to their preferred learning styles.This is especially crucial in a nation such as India, where a significant number of pupils encounter obstacles including limited access to educational resources, substandard infrastructure, and protracted commutes to and from school.The potential of hybrid education to tackle these challenges is acknowledged by The NEP 2020, which has put forth several measures to advance this cause. For the benefit of a specific group, a novel educational approach known as hybrid learning was created by combining the benefits of numerous learning philosophies. Hybrid learning, which integrates the advantages of online learning, flexibility, and accessibility with the in-person interaction of traditional learning, will significantly enhance the course's objective attainment. The New Northeast Policy 2020 and hybrid version both enhance students' self-efficacy. Students are encouraged to become self-learners.

Key Word: *NEP Policy 2020, Hybrid Learning, Crucial (Important), Learner-Centric,Self-Efficacy, Motivated*

*Head, Department of Education, Sabarmati University

**Research Scholar, Sabarmati University

Introduction

The importance of developing digital infrastructure and implementing digital technologies in education is underscored by NEP. It also emphasises the need for the development of digital educational resources of superior quality that are universally accessible to students. The policy suggests assuming accountability for the advancement of said resources and advocating for the integration of digital technologies within the realm of education. Another significant facet of hybrid education is its capacity to foster inclusivity in the field of education. Hybrid education provides access to high-quality education for pupils from all over the nation, regardless of their geographic location.

Hybrid education can provide students living in rural areas and having limited access to educational resources. with access to high-quality educational material and interactive online classes, enabling them to learn and develop their skills.

Objectives of the Study

Objectives of present study areas follows:

a. To study the effectiveness of hybrid learning model for academic achievement of secondary school students of Ahmedabad district.
b. To study the factors influencing the effectiveness of hybrid learning model for academic achievement of secondary school students of Ahmedabad district.
c. To study the improvement in the overall performance of students of the secondary school students of Ahmedabad district

Hypothesis of the Study

The following hypotheses were formulated and to be tested at 0.05 level of significance. Hypothesis 1

H0 : The hybrid learning model has no significant influence over the academic achievement of secondary school students of Ahmedabad district.

Hypothesis 2

H0 : The hybrid learning model has no significant influence overthe overall performance of secondary school students of Ahmedabad district.

VARIABLES OF THE STUDY

Dependent Variables of the Study: According to all of the previous studies and literature reviews, there are four main elements responsible for making the hybrid learning model achievable. First is the technical element, which includes all the components and electronic types of equipment. The second element is the human element which indicates providing both students and teachers with adequate training on online programs and how to use them. The

third element is the organizational element which focuses on planning and performing and problem-solving. The fourth element is related to the design of the learning context and content.

Independent Variables of the Study:

In this study Gender (Male and Female) has been taken as the independent variable.

Definitions of Keywords

1.1 Hybrid Learning = Hybrid learning is a teaching model that combines online learning with in-person instruction. It's a "best of both worlds" way of teaching students!

1.2 Crucial = Important

1.3 Learner Centric=focus on learners

1.4 Self-efficacy+Self-efficacy is the conviction that one can accomplish a task.

Limitations of the Study

Limitations of the study areas follows:

- To begin with, considering the size of the population under investigation, the sample size was comparatively small.
- Caution should therefore be exercised when extrapolating the results of the research.
- Responses are also based on self-report.It is advisable to conduct another study with a more substantial sample size in order to further validate the findings.
- In addition, the investigation is restricted to precise data. study can be carried out with considering the fuzziness and vagueness of data.

2. Research Method

The main objective of the researcher was to study the effectiveness of hybrid learning in secondary school students of Ahmedabad. To obtain the data, the researcher constructed and standardized the educational efficiency of students using technological tools. The researcher randomly selected different secondary schools of Ahmedabad. Thus, as a data collection procedure, information regarding academic achievement and overall performance of secondary school was collected in large numbersin the form of a google form. Therefore, Survey Method in the form of a google form was used in present study.

3. Sample of the Study

The researchers opted to include six tertiary institutions in Gujarat. There are 400 pupils in total, with an approximate ratio of males to girls of 10:8.

4. Research Tool

The researcher constructed two tools, (i) Survey Method (ii) Statistical and Data Analysis

5. Data Collection

Data collection was the most important task of present research. The researcher selected 400 students. The researcher visited to different schools to obtain permissionfor data collection in advance. The researcher met principals of different schools for taking the permission. Thus, Google forms were submitted to the schools and students filled the google forms and thus result was drawn out from the google forms which were generated to the schools.

6. Data Analysis and Results Hypothesis Testing

Hypothesis testing is necessary for this research.The T-test and one-way ANOVA are utilised to examine hypotheses.

Note:If P-value <0.05then Null Hypothesis Accepted(NHA),and if P-value & lt;0.05 then Null Hypothesis Rejected (NHR)

ANOVA

	Sum of Squares	df	Mean Square	F	P-Value
Between Groups	54.214	3	18.071	73.550	.000
Within Groups	54.301	221	.246		
Total	108.515	224			

Hypothesis1

H01 : The hybrid learning model has no significant influence over the academic achievement of secondary school students of the Ahmedabad district.

Table4.3 ANOVA(H1)

	Sum of Squares	df	Mean Square	F	P-Value
Between Groups (NHR)	307.611	76	4.048	11.554	.000
Within Groups	200.733	573	.350		
Total	**508.345**	**649**			

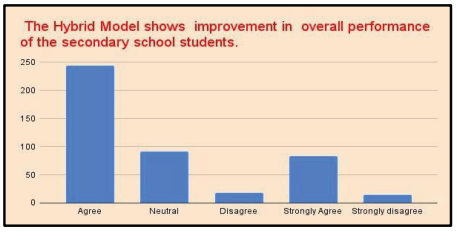

Result: Significantly affecting the academic achievement of secondary school pupils in the Ahmedabad district is the hybrid learning model.

It is clear, on the basis of the data that is shown in the tables,

that the hybrid learning model has a considerable effect on the academic success of children attending secondary schools in the Ahmedabad district. The vast majority of respondents had a favorable impression of hybrid learning, showing its potential to raise learning motivation and improve overall performance.

The results suggest that hybrid learning is perceived as a beneficial instrument for augmenting scholarly progress and learning. Students hold the belief that it facilitates the development of greater levels of motivation and independence in their educational journey, culminating in enhanced scholastic achievement. In summary, the findings presented in the tables indicate that there is substantial evidence to suggest that the hybrid learning model significantly impacts the scholastic achievements of secondary school pupils in the Ahmedabad district.

Hypothesis2

H02: The hybrid learning model has no significant influence over the overall performance of secondary school students of Ahmedabad district.

Table4.4 ANOVA(H2)

	Sum of Squares	df	Mean Square	F	P-Value
Between Groups (NHR)	118.163	4	29.541	48.833	.000
Within Groups	390.182	645	.605		
Total	**508.345**	**649**			

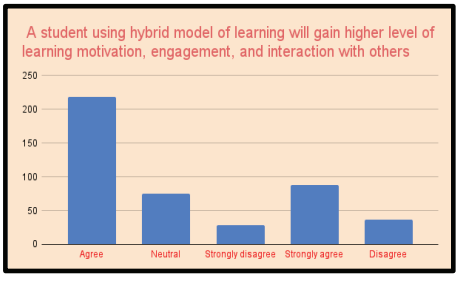

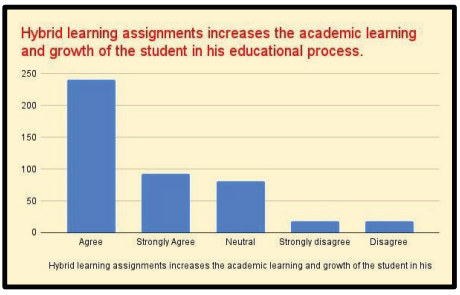

Result: The hybrid learning model has significant influence over the overall performance of secondary school students of Ahmedabad district.

Based on the data presented in the tables, it is evident that the hybrid learning model significantly impacts the overall academic achievement of secondary school students in the district of Ahmedabad. Students' feedback indicates that hybrid learning facilitates academic learning and progress, encourages self-directed learning, and fosters autonomy in the learning processes of students. Additionally, they hold the belief

that hybrid learning enhances their motivation, engagement, and interpersonal interactions, thereby culminating in improved academic achievements.

Findings

The findings of this study illustrate the beneficial influence that hybrid learning may have on the academic experiences of students as well as their overall growth. According to the research, students see hybrid learning as a helpful tool since itencourages autonomy, increases engagement, and prepares them for future problems. In addition, the findings highlight the necessity of taking into consideration a variety of criteria, including gender, age, and family history, when establishing educational policies and interventions. It is crucial to acknowledge the variety among children and theirfamilies in order to create learning environments that are inclusive, student-centered, and that respond to the unique requirements of individual students.

Conclusions

The effectiveness and adaptability of the hybrid learning model as an educational approach are clearly demonstrated by the statistics. This model provides students with opportunities to thrive and attain success throughout their academic journey.

By conducting hypothesis testing, one can deduce the following outcomes.

- The hybrid learning model has significant influence over the academic achievement of secondary school students of Ahmedabad district.
- The hybrid learning model has significant influence over the overall performance of secondary school students of Ahmedabad district.
- The research also shows that students see hybrid learning assignments ishelpful in enhancing their academic learning and development.
- These results highlight how hybrid learning has the ability to change the educational environment and encourage a culture of self-learning and academic performance.
- Hybrid learning is emerging as an efficient tool for equipping students with theabilities and information required to excel academically and in their future efforts as schools continue to change and adapt to new paradigms of education thereby reaching high pinnacle of their growth.

In summary, the data indicates that hybrid learning is beneficial in enhancing the academic achievement and overall performance of secondary school students in the Ahmedabad district.

7. Recommendations for further research

- It is advisable to replicate these studies in a different environment and using a larger sample size in order to compare and extrapolate the findings.
- Further studies should be conducted to investigate other factors that affect the overall performance of students.

References

1. R.S. Addagabottu. likewise Battu, D.N. International Journal of Research in Management & Business Studies (IJRMBS 2015), 2: "A Study on the Factors that Affect Work Life Balance of Women Doctors and Nurses with ParticularReference to Government and Private Hospitals in Guntur District" (3). Visit www.ijrmbs.com to access.
2. al-Alawi, i. et al., "A Study of the Effects of Work-Family Conflict, Family-Work Conflict, and Work-Life Balance on Saudi Female Teachers' Performance in the Public Education Sector with Job Satisfaction as a Moderator," Journal of International Women's Studies, 22(1), pp. 486-503 (January, 2021).
3. B. Allison. Satisfaction with work-family balance among employed graduate students: Why support could matter more than conflict, (2014), p. 79. It is possible to access all theses at http://tigerprints.clemson.edu.
4. T. Bjarnason. Children and Society, 26(1), pp. 51–62, "Life satisfaction among children in varied family structures: A comparativestudy of 36 Western societies," et al. accessible at: doi:10.1111/j.1099-0860.2010.00324.x.
5. Chhatisgarh, C. (Chhattisgarh) Secondary and Higher Secondary Education Status (2022) (February).
6. C.T. Clotfelter and H.F. as well as J.L. Journal of Human Resources, 41(4), pp. 778– 820, "Teacher-Student Matching and the Assessment of Teacher Effectiveness," 2006. It is possible to access it at https://doi.org/10.3368/jhr.xli.4.778.
7. Price, A.B. Osborne, J.W. Practical Assessment, Research and Evaluation, 10: "Best practises in exploratory factor analysis: Four guidelines for getting the most from your research," 2005. (7).
8. K. Daniels. Human Relations, 53(2), pp. 275-294, "Measures of Five Aspects of Affective Well-Being at Work," 2000. Available at: doi:10.1177/a010564.
9. Delin, G. R.P. Raya is also mentioned. International Journal of Commerce, Business and Management (IJCBM), 2(5), pp. 274–282, "A Study on Work-Life Balance in Working Women," 2013.
10. Doing the Right Thing: Assessing Well-Being for Public Policy, International Journal of Wellbeing, 1(1),pp. 79-106, Forgeard, M.J.C. et al. Easily accessibleat: 10.5502/ijw.v1i1.15.
11. Graingiard, J. Expenses of secondary parasitism in the facultative hyperparasitoid Pachycrepoideusdubius: Does host sizematter? et al. Entomologia Experimentalis et Applicata, 103(3), 239–248. accessible at: doi:10.1023/A.
12. S. Padma. likewise Reddy, M.S.

International Journal of Advanced Research (2013), 'Effect of Child Care Responsibility on Work Life Balance (WLB) of School Teachers', pp. 2348-2354.

13. Rookaiyaudom, G. 'Assessing Divergent Opinions towards the Significance of a Work-Life Balance: A Comparative Study between Thai and Foreign Programme Students' (2015), Procedia - Social and Behavioral Sciences, 174, pp. 267–274. Easily accessible at: 10.1016/j. sbspro.2015.01.657.
14. Scott, J. Holder, J. Seminar series applying the Lisbon strategy: Policy Coordination Via "Open " Approaches, "Esrc Seminar Series," 2005, pp. 1-52.
15. Vasumathi. International Journal of Servicesand Operations Management, 29 (1), pp.100-146, "Work Life Balance of Women Employees: A Literature Review," 2018. accessible at: doi:10.1504 / IJSOM.2018.10009105.

"Transforming Traditions: The Evolution of Women's Status in the Shimla Hill States from Colonial times to Current times"

Professor Devi Sirohi*, Poonam**

Abstract

This research paper explores the evolution of the status of women in the Shimla Hill States, focusing on societal norms, traditional roles, and the significant transformations since the integration of these states into Himachal Pradesh post-Indian independence. Traditionally, women in the Shimla Hills were entrenched in a patriarchal social structure that delineated their roles largely within the confines of domestic responsibilities and agricultural labor. Customarily, women had limited access to education and were predominantly involved in household management and child-rearing, with a considerable engagement in community farming and artisanal crafts.

Following the integration into Himachal Pradesh in 1971, significant policy shifts and the implementation of various schemes by the central and state governments have aimed to improve the status of women. This paper highlights key government initiatives such as the Beti Bachao, Beti Padhao (Save the Daughter, Educate the Daughter) campaign, the Mahila Shakti Kendra project for rural women empowerment, and other state-specific schemes like the Mukhya Mantri Shakti Vahini Yojana and the Rajiv Gandhi Empowerment Scheme. These initiatives have focused on enhancing educational opportunities, health care access, and economic participation among women, thereby contributing to their societal upliftment.

The study employs a mixed-methods approach, combining historical analysis with contemporary field surveys, to examine the changes in gender dynamics within the Shimla Hills. The findings suggest a gradual but noticeable shift towards greater gender equality. However, challenges remain in completely dismantling traditional gender roles and ensuring equal participation in political and economic spheres.

Keywords: *Women's empowerment, Shimla Hill States, Himachal Pradesh, Gender equality, Traditional roles, Societal norms*

*Department of History, Panjab University Chandigarh

**Research Scholar, Department of History, Panjab University Chandigarh

Introduction

The society in the Shimla Hill states was patriarchal and although the women were treated with respect, they were not accorded an equal status to the menfolk. Women were influential in economic and social life. Women had a special place in the society's social hierarchy The oldest female member of the family, known as goine (the mistress of home) in Kinnaur, had dignified status in polyandrous households. She managed the home and served as the family's treasurer. Without her knowledge and approval, nothing happened within the household .

With the exception of the decades 1931–1941 and 1911–1921, when the sex ratio fell from 904 to 902 and from 906 to 897, respectively , Himachal Pradesh had a rising tendency in the number of women per thousand males for the previous almost 100 years. However, the following decades saw a rebound, with the sex ratio reaching 976 in 1991 . The 1921 census found that there were 955 girls for every 1,000 men in Himachal Pradesh. There were 972 females for every 1,000 men in 1901 .

Despite women being mostly reliant on men at all ages and in all circumstances, they were contributing members of society. Even though they had the freedom that society had bestowed upon them, they were unable to live happy lives. Even cash wages occasionally earned by some women were typically not retained or spent privately by them but were instead given to the parents in the case of unmarried women or to the husbands in the case of married women . The marriage ties in the state were loose, and the husbands and even parents regarded the women as a portion of their disposable property .

They took care of the animals, cooked, cleaned, washed clothing, cleaned the homes and utensils, and collected water, fuel, and feed. Women were the first to rise early in the morning and the last to go to bed. The women performed all agricultural tasks, with the exception of ploughing. Her work included hoeing, reaping, gathering crops, husking, and winnowing as she hauled cow dung to the fields. She spun wool, among other materials, during days off from farming, particularly in the winter, to make clothing and blankets.

Ornaments of women

Every community had a goldsmith, who used to create a variety of jewellery. Villagers seldom purchased read-tiiade jewels. Particularly in Kinnaiu, ladies liked to adorn themselves with rich jewels. The weight, of these jewels could go up to 50 tolas , and would not bother them. The usage of ornaments on such a large scale was often done to flaunt the family's financial prosperity and status. Both sexes,

according to Alexander Gerard, were observed wearing ornaments and wearing as many as they could afford. He saw the ladies of Kinnaur struggling under a tremendous burden of jewellery, including massive anklets and bracelets made of silver or pewter, huge earrings, different types of metal chains, silver beads, and valuable stones. Coloured spectacles and cowrie shells were fastened to various portions of their bodies, including their arms, ankles, and necks. Men often wore bracelets, ear rings, and tassels made of red beads that hung from the rear of their topis .

Different types of marriage

In the Shimla Hill states, marriage customs were a complex web of traditions specific to different areas and socioeconomic strata. One characteristic that set them apart was the function of middlemen, often called Roovary, Dhamu, or Mazomi, but most often called Rivara . These middlemen were essential to the process of matching families and assisting in negotiations.

The financial makeup of marriages varied across the plains and the hill states. Here, the father of the boy took on the duty of covering the costs of the marriage by giving the father of the girl a little payment known as "Dheir." This stood in stark contrast to plains conventions, which required the girl's family to give the boy's family a gift, or dowry. 'Tikka' was a customary present given when a match was made; this tradition was mostly followed by upper-class household.

Another kind of polygamy was multi-wife polygamy, which reflected differences in marital arrangements. Reet marriage was the situation in which a married woman decided she wanted to divorce her spouse and get married to someone else . In certain situations, the first husband demanded 'Reet Money' from the future husband. Kinnaur tribes practiced tribal marriages known as Darosh, Dab Dhab. The story went that the boy's father dragged the girl from a carnival or festival gathering and then demanded 'Izzat,' or money, as payment. The term "dam Chalshish" described a formal marriage that followed an elopement. As soon as the girl left her house, the son-in-law gave the bride's mother 500 rupees as "Masore," or the cost of her breast milk. When a woman eloped with her fiancé, or when a guy kidnapped her, these situations resulted in hari or har marriages.

The divorce laws of Himachal Pradesh reflected the period in history when Hindu Shastras considered matrimony to be an irreversible union. Nonetheless, divorce was customary, especially among the lowest classes. The Hindu Marriage Act of 1955 brought about a legal change in marital breakup by recognizing a Hindu woman's ability to file for divorce from her husband. Divorce,

referred to as Dehri, Hari, or Har in certain indigenous tribes , was a special ceremony. These varied customs highlighted the cultural differences and customs that surrounded marriage divorce in the various Himachal Pradesh areas. Apart from that, the Dehri monuments outside most villages were a somber reminder of the old sati system , in which widows would burn themselves alive on their husbands' funeral pyres. These monuments served as quiet reminders of the intricate history of local divorce rituals and marriage customs.

Reet

The practise of polyandry and reet caused a great deal of suffering to the women. In Bushahar, polyandry was quite widespread. Reet was a kind of remarriage and divorce that led to lax morality and the shady trafficking of helpless women . It served as a source of revenue for the state as 15% of the money generated by reet transactions went to the public treasury. If the spouse desired it, women were sold like cattle to the highest bidder .

The reet was a fee assessed on betrothal, purchase, or auction and ranged in amount from rupees 15 for virgins to rupees 300 for widows or those who had remarried . Reet was a ‘hideous fossil ’ and a ‘pernicious tradition ’ and a question had been asked in the British Parliament in London about this immoral and degrading practice on June 30, 1925 .

The Himalaya Vidiya Prabandhani Sabha, the Rajput Sthaniya Sabha, and the Hind Conference Simla brought this issue to light and petitioned to the highest authorities to put an end to it. The Himalaya Vidiya Prabandhani Sabha, which contributed its services for the cause of the people of the highlands, made significant advance in this regard. It called for informal gatherings, began its propaganda campaign, and published leaflets .

Polyandry

Polyandry was also prevalent in Shimla hill states, which was uncommon. Several brothers shared one woman and sometimes cousins would also have a common wife .Sometimes two unconnected friends shared a lady. Six brothers might share a common lady under this practice. Two spouses were required for more than six brothers. Taking second spouses in case the first was sterile. A younger sibling might have wanted a marriage when the common lady was too old. This meant dividing the combined property unless the new wife allowed all the brothers marry her. All castes united this way. This approach encouraged many women to avoid becoming nuns in monasteries. The end of the property partition embargo and the reduction of necessary state services from six to one month reduced polyandrous marriages in the first quarter of the

20th century.

Polygamy

In the state, economic, social, and inherent custom variables all influenced marriage decisions . On the one hand, wealthy men would choose to have several wives for agricultural and other tasks, but peplole with less means whould prefer to have two or more brothers with combined financial means might afford to have one wife in common. There were many Polygamy and monogamous marriages throughout the state, and eather there were no societal restrictions on polygamous unions. A man was free to have as many wives as he desired or could support. Members of royal families and those who were financially successful tended to have several wives.

All classes and caste accepted widow remarriage as well. It was customary for the second husband to give the reet money to the mukhtal family of the first husband. She had no rights with regard to the moveable and immovable property of her deceased husbands .The state encouraged divorce, which may be obtained at any moment by paying the husband the price of the marrige as well as any gifts of jewels and other items. This was known as dheri, or reet.

Barda Faroshi

This was another pernicious and immoral custom that had been carried on for centuries in the hills and existed in the 19th and even the 20thcenturies. This social evil known as barda faroshi has existed in Simla Hill States and Punjab Hill States for all of recorded time. The terms 'farosh' and 'barda' both refer to dealers .

'Barda-faroshi' refers to a slave trader or the act of selling slaves or prisoners . The Punjab Government became significantly concerned with eliminating this societal ill in the summer of 1924. In the Punjab, particularly in the submontane regions and hill tracts of the Kangra, Ambala, and Hoshiarpur districts, barda-faroshes slave traders) operated a regular business in girls and boys under the practice of trading with slaves, prisoners, and servants . It was already present in the Simla Hill States before the British arrived. In July 1924, C.P. Kennedy, the Hill States' Assistant Deputy Superintendent, made a comment on it. 'Women of the highlands were always in great demand for the zananas or harems of the plains until the British influence took hold, and as slaves brought great price; the demand was possibly higher than availability .' On June 27, 1924, the Punjab Government wrote to the Registrar of the High Court of Judicature in Lahore to inquire about the prevalence of barda-faroshi in the region and whether the Honorable Judges believed that special legislation was necessary to put an end to the

practise.

Women Education

The process of establishing schools for women in Himachal Pradesh and the Shimla hill regions throughout the colonial and early post-independence eras was sluggish. During this period, women's access to education was often restricted due to social and cultural limitations that needed to be addressed . Nevertheless, first efforts were undertaken to provide educational opportunities to females in the area. Missionary-operated convent schools had a notable impact on the first education of females in Himachal Pradesh . These schools were often linked to Christian missions and were founded to provide both religious and non-religious education. Convent schools played a significant role in promoting literacy among girls and young women. Mahashaya Sahi Ram ji, an ardent Arya Samajist, founded two gurukuls in the Rajgarh region at the beginning of the 20th century. Due to the strict caste system that was still in place, two Gurukuls were established: one for higher caste students in the hamlet of Fagu, called Arya Pathshala , and another for lower caste students in the village of Mashana Bag (Ser), named Arya Sanskrit Pathshala, popularly known as the 'Koli School.' Sahi Ram sent his two granddaughters, Urmil and Nirmal, to the Arya Sanskrit Pathshala Mashana Bag (Ser) (Koli School) to demonstrate his opposition to the caste system .Following independence, the Himachal Pradesh government implemented measures to facilitate the advancement of girls' education. Attempts were undertaken to create government schools for both male and female students across the state.

Conclusion

Women's position in Shimla Hill States has altered substantially during the previous century. Patriarchy was widespread, limiting women's roles to the house and limiting their education and employment. Women have to follow customary norms and do traditional chores.

However, many events in the late 20th century changed women's standing. Campaigns to raise awareness and literacy rates have helped women assume larger social and economic responsibilities. Urbanisation and greater communication also gave women new ideas and possibilities. Women worked outside traditional jobs, especially in cities. Gender roles and family structures shifted with this development. The role of women in family finances and decision-making is well known. Legal developments and women's empowerment initiatives advanced women's standing. Women's rights and healthcare efforts improved well-being. Discrimination and gender-based violence persisted, although awareness-raising and

advocacy efforts increased. Over the past century, Shimla Hill States women have moved from traditional positions to greater involvement in decision-making, labour, and education. Despite progress, difficulties remained, stressing the need for women's empowerment, societal transformation, and gender equality.

References

i. District Gazetteer Kinnaur, Lahore Printing Press, 1923, p. 104.
ii Census of India, 1921, 1931 https://www.google.com/url?sa=j&url=https%3A%2F%2Fcensusindia.gov.in
iii Chaurasia, A. R. (2023). Male-Female Imbalance in the Indian Population: 120 Years Perspective, 1901-2021. Available at SSRN 4475559.
iv. Singh, A. (2016). Portrait of Population, Himachal Pradesh, p. 102
v Punjab States Gazetteer, Lahore Printing Press, 1923, p. 25
vi District Gazetteer Kinnaur, Lahore Printing Press, 1923, p. 103
vii W. Edwards (1851) Letters, Superintendent Simla Hill States to P. Melvill Secretan- to the Board of Administration. Foreign Deptt. Political Progs No. 35. dated 24 July 1851, NAl.
viii R. C. Pal Singh, Nachar (1964) A Village Survey (H.P.), Census of India, Vol. XX, Pan VI, No. 12, p. 15.
ix Alexander Gerard (841) An Account of Koonawar in the Himalayas, reprint, London, p. 111.
x Pathania, R., Kaur, P., & Pathania, P. (2008). Marital and family practices among tribals of Himachal Pradesh. Studies of Tribes and Tribals, 6(2), 73-78.
xi Shukla, A. (2003). Women and Society in Rural Himachal Pradesh. Indian Anthropologist, 33(2), 19-35
xii Pathania, N. (2022). Preservation of Culture through Marriage Songs of Himachal Pradesh. Rethinking Himalaya: Its Scope and Protection, 73.
xiii Sanghaik, G. K. (2014). Women Empowerment in Hill States: A Case Study of Himachal Pradesh. Indian Journal of Public Administration, 60(3), 527-536.
xiv Devi, R. (2018). Status of Women in Rural Politics in Himachal Pradesh: Constraints and Challenges. International Journal of Innovative Knowledge Concepts, 6, 12.
xv Y.S.Parmar, Polyandry in Himalayas, op.cit., economic potential of such practices is dealt in Chapter III, pp.33-35.
xvi Abolition of Custom Reet in Simla Hills, 1910, Punjab Hill States Agency, Bundle No. 11, File No. 344, (State Archive, Shimla).
xvii Punjab State Gazetteer. Mandi State. Vol.XIII-A, 1920, op. cit., pp. 97-101. See also File No.11/344, State Archives of Himachal Pradesh, Shimla, p. 103 and State Gazetteer of Sirmaur. Superintendent of Government Printing, Lahore, p.107.
xvii As described in The Hindustan Times. New Delhi, May 28th, 1925.
xix As described in the Bombay Chronicle Bombay, June l0th, 1925.
xx As reported in The Times af. India. Bombay, July 2nd, 1925.
xxi C.L. Datta. The Raj and the Simla Hill States, (Jalandhar, 1997), pp. 128-148
xxii C. L. Datta. The Raj and the Simla Hill

States (Jallandhar. 1997), p. 148.
xxiii SETHI, R. M. (2009). Customary Practices, Law and Gender in Himachal Pradesh. Gender Discrimination in Land Ownership, p. 23.
xxiv Punjab States Gazetteer, op. cit., p. 28.
xxv F. Steingass, A. Comprehensive PersianEnglish Dictionary, (New Delhi. 1977), p. 173.
xxvi Gerard, A. (1841). Account of Koonawur, in the Himalaya: Etc. Etc. Etc. J. Madden.
xxviiThakur Surat Singh to Deputy Commissioner and Superintendent Hill States, Simla, 1 August 1924, Bundle No. 11. File No. 344. State Archive, Shimla.
xxviiiHome Secretary to Govt., Punjab to Registrar, High Court of Judicature, Lahore, 27 June 1924, Nos. 16629-30. Abolition of Custom Rit. In Simla Hills, 1910. op.cit., file No. 344.
xxixC.P. Kennedy (Asstt. Deputy Superintendent, Sikh and Hill States) to W. Murry, Deputy Superintendent, Sikh and Hill States, 6 July 1824. Records of the Delhi Residency and Agency, (Lahore, 1911), Vol. 1. p. 269.
xxxKennedy, Dane. The Magic Mountains, Hill Stations and the British Raj, New Delhi, 1996.
xxxiSanghaik, G. K. (2014). Women Empowerment in Hill States: A Case Study of Himachal Pradesh. Indian Journal of Public Administration, 60(3), 527-536.
xxxiiAdmission Register, Arya Pathshala Fagu Vikram Samvat, 2003(Year 1946 CE), p.11.
xxxiiiSri Ram Sharma, The DAV Movement, Document on Punjab, (ed. O.P. Ralhan & Suresh K Sharma), Vol.14, Anmol Publication, New Delhi, 1994, p. 329.

A Concise Discussion on Saarang & Malhaar Anga Under Thaat Kafi

Mitali Mukherjee*, Prof.(Dr) Kiran Singh**

ABSTRACT

In Hindustani Classical Music, we have a total of twelve musical notes. Out of these twelve musical notes, a combination of 5, 6 or 7 notes are used to create numerous ragas. Ragas with same notes can be distinguished by their rendering styles. Differences in the rendering styles induce various emotions, expressions and rasas in human beings and the nature. Certain musical- note patterns give rise to various Angas, based upon which most of the ragas are named. Moreover, a combination of more than one Angas are used to create a new raga. Here, an attempt has been made to discuss the various aspects of two Angas out of the five Angas that fall under Thaat Kafi, namely Saarang Anga and Malhaar Anga.

KeywordSs: *Anga, Kafi, Saarang, Malhaar, Raga.*

Introduction:

Thaat *Kafi* is one among the ten Thaats of Hindustani Classical Music. Within this Thaat the seven swaras are considered to be like : S, R, g, m, P, D, n.[1]

Note: S, R, P, D – (Shuddha Swara)
m - (Shuddha Swara)
g, n - (Komal Swara)

In the Indian Classical Music, the musical notes S and P being the Static Swaras, always remain unchanged, i.e. remain the same. R, G, D, N has 2 forms; the forms being Shuddha and Komal Vikrit (deformed). These four swaras while traversing backward, shift to a lower shruti from its Shuddha position; moves to a lower pitched swara, and consequently change its form from Shuddha to Komal. On the contrary, the middle swara (Madhyam) while traversing forward from its Shuddha form; moves to higher pitched swara, and consequently changes from Shuddha to Tivra form. That is why the notes R, G, D, N change into "Komal" Vikrit notes and are represented by small letters, i.e. r, g, d, n. The musical note Madhyam (M) on the other hand change into "Tivra" Vikrit note. It is represented by small letter (m) in Shuddha form and by capital letter

*Research Scholar), P.G. department of Music, TMBU, Bhagalpur,bitmitali@gmail.com
**(Retd. Ex-HOD), PG Dept. of Music, TMBU, Bhagalpur (Bihar).

(M) in Vikrit form.2

METHODOLOGY:

It is to be noted that there is a difference between Raga Kafi and Thaat Kafi. The notes of the Raga and Thaat are exactly the same but they differ in context to the style of application of the notes. The difference can be noted when the same notes are used in different Ragas due to the effect of inclusion of various "angas". The number of Angas under Thaat Kafi is believed to be (5) five, which is evidently more than the number of angas in any other Thaat. The five angas that come under Thaat Kafi are –

1. Kafi
2. Saarang
3. Malhaar
4. Dhanaashree
5. Kanaada

The various combinations of the musical notes G, N, g, and n, when sung or played with different and appropriate emotions and effect, produce the different angas. The possible combinations that can be formed include –

- g – n
- g – N
- g
- n – g
- n – G
- n
- G – n
- G – N
- G
- N – g
- N – G
- N

In this context, we have Raga Vrindavani - Saarang based on "Saarang anga" and Raga Miya - Malhaar based on "Malhaar anga". Here, both the Ragas belong to Thaat Kafi. Therefore, the angas "Saarang" and "Malhaar" can be clearly seen and distinguished under a single and common Thaat – Kafi.

The introductory details of Raga Vridavani - Saarang is given as follows[3] –

- Thaat – Kafi
- Jati – Audhav-Audhav (5 - 5)
- Vadi Swar – Rishabh
- Samvaadi Swar – Pancham
- Time – After-Noon, 12.00- 3.00 pm (Third Prahra of the day, and is basically considered as a Raga of Summer season)
- Aaroh – N S R m P N S' .
- Avroh – S' n P m R S N S
- Samprakritik Raga– Sur Malhaar

In Raga Vrindavani – Saarang, the note Gandhar is clearly eliminated. In Aaroh, Shuddha Nishad (N) is used whereas in Avaroh, Komal Nishad (n) is used. It is to be noted here that though the note Gandhar is eliminated in the Raga, it is indirectly used in the Avaroh of the musical phrase "m - R" through the application of "Meend". Here the note Gandhar shows the effect called "Langhan - Moolak - Bahutva". Despite being

an eliminated note, Gandhar shows its essence in the Raga through its use with the application of Meend. Moreover, it enhances the flavour of the Raga, making it more attractive for the audience. The note Rishabh (R) has a high significance in the Raga and is used with the application of the note Madhyam (M) as Meend in the Raga. It enhances the beauty of the Raga making it more appealing.

Raga Vrindavani-Saarang is a Raga based on "Shringaar Rasa". The musical notes and emotions used in the Raga are usually compatible with singing styles such as Dhrupad, Bada Khayal, Chhota Khayal, Tarana, Ghazal, Bhajan, Light Music, Folk Songs, etc.

Thumri and Dadra are exceptional singing styles which are not compatible with Raga Vrindavani - Saarang. Similar to Raga Kafi, Raga Vrindavani - Saarang is also believed to have originated from Folk songs according to some scholars. Raga Vrindabani- Sarang is believed to have evolved as Raga in the Medieval period. However, Bada Khayals are not sung in Raga Kafi.

Along with Shringaar Rasa, there is also a significance of "Bhakti Rasa" in Raga Vrindavani – Saarang. This Raga is credited with reminding us of the deep and divine bond between Swami Haridas and Lord Krishna. Swami Haridas was the guru of Tanna Mishra (also known as Miyan Tansen). It is believed that the Lord, impressed by the musical notes of Raga Vrindavani-Saarang and singing style of Swamiji, used to dance on the tunes of the Raga with Swamiji. As per belief it is also said that on Swamiji's request the divine power of the Lord is still present in the idol of Lord Krishna in Nidhuvana.

Bhakti or Devotion, which is believed to be a path of " Liberation ", enables us to get rid of all kinds of worldly belonging and pleasures. Hence, it helps human beingsA to differentiate between the " good " and " bad ", further enabling us to follow the Right path of life.

Any Raga in some or the other form surely provides benefit to the Living World; be it in Physical or Mental aspect. However, the singer (performer) and the audience need to be involved in the music in order to enjoy the advantages. This can be achieved by understanding the logic and scientific pattern of the notes of the music or Raga and consciously singing or playing it.

The other Raga that we have is Raga Miyan-Malhaar. Its introductory details are as follows[4] –

- Thaat – Kafi
- Jaati – Sampurna - Shaadav
- Vadi – Shadaj
- Samvadi – Pancham

  According to some scholars, Vadi-Samvadi are Madhyam and Shadaj respectively
- Singing Time – Midnight /Any time during Rainy Season
- Aaroh – S R, m R, P, n D, N, S`
- Avaroh – S` n P, m P, m R S

• Samprakritik Raga – Bahaar

The jaati of Raga Miyan-Malhaar is considered as " Sampurna-Shaadav " (7-6). The note Gandhar is used in a "vakra" manner in the Aaroh whereas, the note Dhaivat is eliminated in the Avaroh. The note Gandhar is used in its Komal form (g) in the Raga. The application of both forms of Nishad, i.e. Shuddha Nishad (N) and Komal Nishad (n) can be seen in the Raga. Both the Nishad may be used subsequently or with a Shuddha Dhaivat (D) in between them.

For example –

• n, N, S`

• n, D, N, S`

Application of the notes in such a manner induces the effect of "Malhaar" i.e. "Rain". The effect seems more prominent in the "Mandra Saptak" i.e. the "Lower Octave". Other phrases that enhance the Malhaar anga of the Raga –

- S, m, R, P
- S, R, R, P (here, the note "R" is used with the application of "m" as "Kan Swar")[5]

The main phrase of the Raga is – S, m, R, P; m, P, n, D, N, S` and is also considered as the most appealing and unique part of the Raga.

Moreover, the phrase – m, P, g-m, R, S highlights the Kanaada anga. Hence, it is clear that with the combination of some specific notes, we get the patterns of various angas. This is evident from the examples of the musical phrases of Malhaar and Kanaada anga in Raga Miyan-Malhaar.

The notes of Raga Miyan-Malhaar and its Samprakritik Raga "Bahaar" are so similar that it can get quite confusing if not understood and learnt properly. Both are seasonal Ragas. Miyan-Malhaar represents " Rainy " season whereas, Bahaar represents " Spring " season.

The significance of rain is well-known to us Indians as India is an agro-based country. The necessity of a balanced rainfall for farming is important and this is well-understood by both the crop producers and the consumers. It is believed that famous musicians such as Baiju Bawra and Tansen could make the Ragas alive by their singing skills. They could make clouds rain by singing Raga Megh-Malhaar, Miyan-Malhaar and induce heat by singing Raga Deepak. Ragas have an optimistic effect on our mind and soul. They help us get relief from mental problems such as depression and anxiety as they help our mind to relax and tranquilize.

The Rainy season fills the soul with immense pleasure. Seeing the sky filled with clouds, the peacocks can be seen dancing with their beautiful feathers while the nature gets filled with greenery, providing a refreshing effect. Similar to this, the human heart gets carried away with joy and pleasure while listening to the tunes of Raga Miyan-Malhaar, and the mind gets filled with positive energy.

DISCUSSION AND CONCLUSION :

In this paper, we have discussed in brief, the two angas namely- Saarang and Malhaar which come under the ragas Vrindavani- Saarang and Miyan- Malhaar respectively. Also in a specific raga, various angas are included. Every Raga evokes different kind of Rasas and emotions through the rendering styles of the specific notes used in the Raga. Difference between the angas need to be taught properly to the scholars for the appropriate differentiation of the same. This will further enable the scholar's creativity instead of imitation. Conscious use of musical notes induce an optimistic effect on human body, mind, soul, and on the surrounding nature. The effect and outcome of a precise teaching and learning process is quite evident from the Guru-Sishya bonding of Baiju Bawra and Miyan Tansen belonging to the medieval period; both being the Disciples of Swami Haridas. The efficacy of the Guru plays a vital role in the process of teaching-learning, in context of imparting knowledge. In the prevailing time, the number of such Gurus has decreased. The teaching process is becoming more of a business than proper education now a days. Thus, it becomes necessary for a scholar to judiciously identify a Guru who is ready to impart all the required skills and knowledge to his Sishya (Deciple) without being biased, so that Music doesn't remain/ exist as an item of entertainment but also claims its identity as a source of complete knowledge (Gyan) as has been existing in the Ancient and the Medieval period.

References:

1. Vasant, Sangeet Visharad, Hathras Publication, 2002 edition.
2. Pt.V.N. Bhatkhande, Kramik Pustak Malika, Hathras Publiction, 13th edition, 2012.
3. Nonigopal Bandyopadhyay, Sangeet Darshika, Nath Brothers , Jadavpur, Kolkata.
4. Shambhunath Ghosh, Sangeeter Itibritto, 1st Part, Kolkata 100042.
5. Dr. Pradeep Kumar Dixit Sa "Rasa" Sangeet, 2nd. ed. Kishore Vidya Niketan, Bhadaini, Varanasi, 2005.
6. Basant, Raga-Kosh Music Office, Hathras, 1990 AD
7. https://physicstoday.scitation.org/ doi, Good Vibrations: The Physics of Music.

Enhancing Environmental Education - Blended Learning in Ahmedabad's Primary Schools

Ms. Neelam Trivedi*, Prof. (Dr.) Parshuram Dhaked**

Abstract :

Blended learning means modern technological approach with traditional approach. The use of computer, other technological applications in the classroom by teacher. Special Training given to the teachers. It is mixture of both which brings improvement in teaching experience. Environment studies is important for teacher. Environment is the study of natural living being and non-living being it is mixture of science and social studies. Our surrounding which is important for us and the blended study in environment studies in primary school bring an effectiveness in Ahmedabad district. Environment study very important to teach to students as surrounding of the living and non-living things are known. Blended learning, which combines traditional face-to-face instruction with online learning activities, has been increasingly adopted in educational settings worldwide. Its effectiveness on teachers can be seen in various aspects like flexibility, personalize learning, Time management, Professional development opportunities, increase engagement, Data driven instruction, work life balance. By leveraging the flexibility, interactivity, and accessibility of blended learning, educators can create engaging and immersive learning experiences that empower students to become informed environmental stewards and advocates for positive change in their communities and beyond. Blended learning can be particularly beneficial in the context of environmental studies due to the interdisciplinary nature of the subject and the diverse range of topics it encompasses. Overall, blended learning can empower teachers to enhance their instructional practice, engage students more effectively, and foster a deeper understanding of environmental concepts and issues.

1.Introduction:

Blended learning is an educational approach that combines traditional face-to-face instruction with online learning activities. It integrates the best aspects of both traditional classroom teaching and online learning to create a flexible and dynamic learning experience.

*Research Scholar, Sabarmati University

**Dean Academics, Sabarmati University

In a blended learning environment, students engage in a mix of in-person sessions with their teacher and peers, along with online learning activities via digital platforms or learning management systems (LMS). This combination allows for a personalized and adaptive learning experience that caters to individual learning styles, preferences, and pace.

Blended learning offers several advantages over traditional classroom instruction alone. It provides flexibility in terms of time, location, and pace of learning, allowing students to access educational materials and resources anytime, anywhere promoting active learning through interactive multimedia elements, simulations, and collaborative online activities thereby enhancing student engagement and motivation.

Teachers are essential in designing and implementing blended learning experiences. They create online resources, develop multimedia instructional materials, and lead online discussions to support student learning. Teachers also employ data analytics and assessment tools to track student advancement, deliver timely feedback, and customize instruction to cater to individual learning requirements.

Blended learning can be implemented in various educational settings, including K-12 schools, offering a versatile and adaptable approach to teaching and learning that can suit the unique needs and goals of different learners.

Overall, blended learning represents a powerful and innovative approach to education that combines the benefits of traditional instruction with the opportunities afforded by digital technologies. By leveraging the strengths of both face-to-face and online learning modalities, blended learning has the potential to enhance student outcomes, foster critical thinking and collaboration skills, and prepare learners for success in the 21st-century digital age.

2.Objective:

The objectives of assessing the effectiveness of blended learning on teachers include:

- To find the factors influencing the blended model teaching learning of environment studies among the primary students of Ahmedabad district.
- To study how instructors feel about blended learning and identify the areas for students' improvement through blended mode.

3.Hypothesis;

Hypothesis 1

Null Hypothesis (H0): There is no significant difference in instructors' perceptions of the effectiveness of blended learning across different subject areas, including environmental

studies, in primary education in Ahmedabad district.

Hypothesis 2

Null Hypothesis (H0): Instructors' attitudes towards blended learning is not dependent on their experience in teaching environmental studies to primary students in Ahmedabad district.

4.Variable:

Dependent Variables of the Study

Teaching learning of environment studies among the primary students of Ahmedabad district

Independent Variables of the Study

Blended Learning

5.Definations of Keyword:

Blended learning; Blended learning or hybrid learning, also known as technology-mediated instruction, web-enhanced instruction, or mixed-mode instruction, is an approach to education that combines online educational materials and opportunities for interaction online with physical place-based classroom methods.

Effectiveness: Effectiveness or effectivity is the capability of producing a desired result or the ability to produce desired output. When something is deemed effective, it means it has an intended or expected outcome, or produces a deep, vivid impression.

6. Delimitations of the stage:

The delimitation of study is

1)The study suggests some technology constrain in some school.

2)Certain schools are not able to provide training to their teachers.

3)Some schools are at remote areas internet facility is lacking

4)Some area the students are not able to afford technology.

5)Certain school still believes in traditional way of teaching and less use of technology.

6)Some school believes it as increase workload while using technology and less face-to-face study.

7.Research Methodology:

Some school believes it as increase workload while using technology and less face-to-face study.

8.Research tools

The Research tools areas follows

MSExcelSoftware

SPSS

Frequency Analysis

Reliability and Validity testing

Hypothesis Testing

9.Data Collection:

Data collection was the most important task of present research. The researcher selected 200 primary teachers and 600 students from Ahmedabad.The researcher visited to different schools to Obtain

permission for data collection in advance. The researcher met principals of different schoolsfor taking the permission. Thus, a specific date and time were fixed for data collection. At afixed time and date, the researcher again visited to different schools. The teachers gave response to the effectiveness of blended learning google form. The researcher explained everything about how to provide responses to each item.After completion of both the inventories,theresearcher collected all the inventories.

10.Hypothesis Testing:

The following Hypothesis needs to be tested for this research. IndependentsampleT-test and One-WayANOVAtest is applied for hypothesis testing.

Note:IfP-value>0.05then Null Hypothesis Accepted(NHA),andifP-value<0.05then Null Hypothesis Rejected (NHR).

ANOVA

	Sumof Squares	df	MeanSquare	F	P-Value
BetweenGroups	54.214	3	18.071	73.550	.000
WithinGroups	54.301	221	.246		
Total	108.515	224			

IndependentSamplesTest

		Levene's Test for Equality of Variances		t-testforEqualityofMeans						
									95% Confidence Intervalofthe Difference	
		F	Sig.	t	df	P-Value	Mean Difference	Std.Error Difference	Lower	Upper
H1	Equal variances assumed	12.302	.001	-2.622	223	.009	-.24107	.09194	-.42224	-.05989
	Equal variances not assumed			-2.749	190.537	.007	-.24107	.08769	-.41403	-.06810

.Hypothesis 1

Alternative Hypothesis (H1): Instructors perceive blended learning to be more effective in teaching environmental studies compared to other subject areas in primary education in Ahmedabad district

5.There is a strong influence on the desired outcomes in the blended mode Of learning of environment studies					
		Frequency	**Percent**	**Valid Percent**	**Cumulative Percent**
Valid	Strongly Agree	98	43.6	43.6	43.6
	Agree	107	47.6	47.6	91.1
	Neutral	11	4.9	4.9	96.0
	Disagree	6	2.7	2.7	98.7
	Strongly Disagree	3	1.3	1.3	100.0
	Total	**225**	**100.0**	**100.0**	

The table offers insights into how teachers perceive the influence of blended mode learning on desired outcomes in the context of environmental studies.

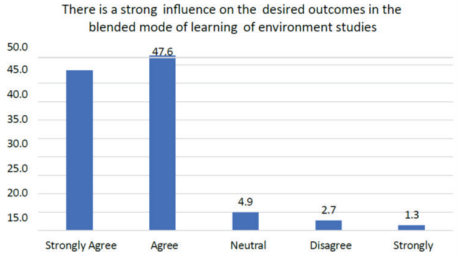

In summary, this data underscores the varying perspectives among teachers regarding the influence of blended mode learning on desired educational outcomes in the context of environmental studies. While a significant portion of educators falls into the categories of "Strongly Agree" and "Agree," highlighting the perceived effectiveness of blended learning, the presence of differing viewpoints in the "Neutral," "Disagree," and "Strongly Disagree" categories emphasizes the need for a nuanced understanding of how educators perceive the impact of blended learning on achieving desired educational goals

Hypothesis 2

Alternative Hypothesis (H1): Instructors with more experience in teaching environmental studies exhibit positive attitudes towards blended learning in primary education in Ahmedabad district.

Experienceofthe teacher					
		Frequency	**Percent**	**Valid Percent**	**Cumulative Percent**
Valid	Morethan 10 Years	80	35.6	35.6	35.6
	5-10Years	50	22.2	22.2	57.8
	1-5Years	47	20.9	20.9	78.7
	Lessthan1 years	48	21.3	21.3	100.0
	Total	225	100.0	100.0	

The table provides a breakdown of teachers' years of experience, offering insights into their professionalbackgrounds. It categorizes data into four groups:

"More than 10 Years": Comprising 80 individuals or approximately 35.6% of the sample, these experienced educators bring a wealth of insights from over a decade in education.

5-10 Years": With 50 teachers, accounting for about 22.2% of the sample, this group bridges the gap between highly experienced and newer teachers.

"1-5 Years": Encompassing 47 respondents or roughly 20.9% of the sample, these educators offer insights shaped by their early to mid-career experiences.

The "Less than 1 Year" experience group includes 48 teachers, constituting approximately 21.3% of the sample.

Each group's diverse perspectives enrich our understanding of teaching practices in education.

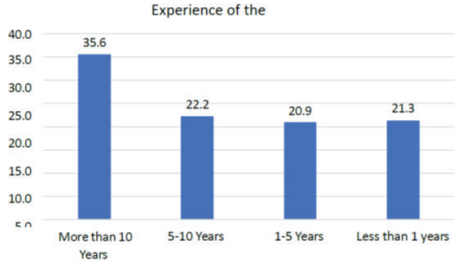

Collectively, this data underscores the diversity of teaching experience within the surveyed sample, emphasizing the importance of considering the insights and viewpoints of educators at various stages of their careers. This diversity enriches the study, providing a comprehensive understanding of the perceptions and experiences of teachers regarding blended learning in the context of environmental studies.

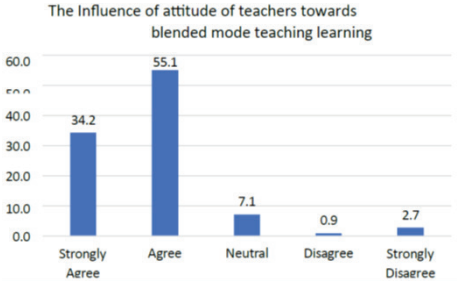

Experience of the teacher

In summary, the data illustrates a spectrum of attitudes among teachers regarding the influence of their own attitudes on blended mode teaching and learning in environmental studies within their school. The dominant sentiment is one of agreement, with a significant number of teachers falling into the "Strongly Agree" and "Agree" categories. However, the presence of varying viewpoints, including those in the "Neutral," "Disagree," and "Strongly Disagree" categories, emphasizes the need for a nuanced understanding of teacher attitudes and their impact on the

adoption of blended learning practices.

11. Findings:-

Summary of findings of the present study are given asfollows;

- Blended learning significantly influences the teaching of environmental studies among primary students in Ahmedabad district.
- Blended learning positively affects teachers' ability to perform various activities more efficiently.
- Blended learning encourages students to be more environmentally friendly.
- Blended learning is perceived to save time, energy, and money for both teachers and students.
- Teachers and students demonstrate a clear understanding of the benefits and challenges of blended learning in environmental studies.

These findings provide valuable insights into the current state of blended learning in thecontext of environment studies among primary students in Ahmedabad district and offerguidancefor further improvements ineducationalpractices.

12. Conclusion:-

In conclusion, the integration of blended learning in environmental studies among primary students in Ahmedabad district brings about significant benefits and positive outcomes Teachers find blended learning to be an efficient tool, aiding in various activities and providing support to students. It achieves motivational objectives, integrates assessments effectively, and is perceived to save resources. Overall, both teachers and students understand and appreciate the benefits and challenges of blended learning in environmental education.

References

1. Addagabottu, R.S. and Battu, D.N. (2015) 'A Study on the Variables that Influence Work Life Balance of Women Doctors and Nurses with Special Reference to Government and Private Hospitals of Guntur District', International Journal of Research in Management & Business Studies (IJRMBS 2015), 2(3). Available at: www.ijrmbs.com.
2. Al-Alawi, A.I. et al. (2021) 'A study of the effects of work-family conflict, family-work conflict, and work-life balance on Saudi female teachers' performance in the public education sector with job satisfaction as a moderator', Journal of International Women's Studies, 22(1), pp. 486–503.
3. Allison, B. (2014) 'Satisfaction with work-family balance among employed graduate students : Why support may matter more than conflict', p. 79. Available at: http://tigerprints.clemson.edu/all_theses.
4. Bjarnason, T. et al. (2012) 'Life satisfaction among children in different family structures: A comparative study of 36 western societies', Children and Society, 26(1), pp. 51–62. Available at: https://doi.org/10.1111/j.1099-0860.2010.00324.x.
5. Chhattisgarh, C. (2022) 'Secondary and Higher Secondary Education Status (Chhattisgarh)', (February).
6. Clotfelter, C.T., Ladd, H.F. and

Vigdor, J.L. (2006) 'Teacher-student matching and the assessment of teacher effectiveness', Journal of Human Resources, 41(4), pp. 778–820. Available at: https://doi.org/10.3368/jhr.xli.4.778.

7. Costello, A.B. and Osborne, J.W. (2005) 'Best practices in exploratory factor analysis: Four recommendations for getting the most from your analysis', Practical Assessment, Research and Evaluation, 10(7).
8. Cronbach, L.J. (1951) 'Coefficient alpha and the internal structure of tests', Psychometrika, 16(3), pp. 297–334. Available at: https://doi.org/10.1007/BF02310555.
9. Daniels, K. (2000) 'Measures of five aspects of affective well-being at work', Human Relations, 53(2), pp. 275–294. Available at: https://doi.org/10.1177/a010564.
10. Delina, G. and Raya, R.P. (2013) 'A study on Work-Life Balance in Working Women', IRACST - International Journal of Commerce, Business and Management (IJCBM), 2(5), pp. 274–282.
11. Eryilmaz, M. (2015) 'The Effectiveness Of Blended Learning Environments', Contemporary Issues in Education Research (CIER), 8(4), pp. 251–256. Available at: https://doi.org/10.19030/cier.v8i4.9433.
12. Forgeard, M.J.C. et al. (2011) 'Doing the Right Thing: Measuring Well-Being for Public Policy', International Journal of Wellbeing, 1(1), pp. 79–106. Available at: https://doi.org/10.5502/ijw.v1i1.15.
13. Grandgirard, J. et al. (2002) 'Costs of secondary parasitism in the facultative hyperparasitoid Pachycrepoideus dubius: Does host size matter?', Entomologia Experimentalis et Applicata, 103(3), pp. 239–248. Available at: https://doi.org/10.1023/A.
14. Kintu, M.J., Zhu, C. and Kagambe, E. (2017) 'Blended learning effectiveness: the relationship between student characteristics, design features and outcomes', International Journal of Educational Technology in Higher Education, 14(1). Available at: https://doi.org/10.1186/s41239-017-0043-4.
15. Klette, K. (2007) 'Trends in research on teaching and learning in schools: Didactics meets classroom studies', European Educational Research Journal, 6(2), pp. 147–160. Available at: https://doi.org/10.2304/eerj.2007.6.2.147.
16. Munna, A.S. and Kalam, M.A. (2021) 'Teaching and learning process to enhance teaching effectiveness: literature review', International Journal of Humanities and Innovation (IJHI), 4(1), pp. 1–4. Available at: https://doi.org/10.33750/ijhi.v4i1.102.
17. OECD (2020) 'Strengthening online learning when schools are closed', Tackling Coronavirus (COVID-19): Contributing to a global effort, pp. 1–14. Available at: https://www.oecd.org/coronavirus/policy-responses/strengthening-online-learning-when-schools-are-closed-the-role-of-families-and-teachers-in-supporting-students-during-the-covid-19-crisis-c4ecba6c/#boxsection-d1e29.
18. Padma, S. and Reddy, M.S. (2013) 'Impact of Child Care Responsibility on Work Life Balance (WLB) of School Teachers', International Journal of Advanced Research, pp. 2348–2354.
19. Pookaiyaudom, G. (2015) 'Assessing Different Perceptions towards the Importance of a Work-life Balance: A Comparable Study between Thai and International Programme Students',

Procedia - Social and Behavioral Sciences, 174, pp. 267–274. Available at: https://doi.org/10.1016/j.sbspro.2015.01.657.

20. Scott, J. and Holder, J. (2005) 'Esrc Seminar Series', Seminar series implementing the Lisbon strategy : Policy Coordination Through " Open " methods, pp. 1–52.
21. Sequeira, A.H. (2012) 'Introduction to Concepts of Teaching and Learning', SSRN Electronic Journal [Preprint], (July). Available at: https://doi.org/10.2139/ssrn.2150166.
22. Sisodia, D. and Gupta, P. (2021) 'Blended Learning Environment - Implementation Challenges in India', (July).
23. Utami, I.S. (2018) 'The effect of blended learning model on senior high school students' achievement', SHS Web of Conferences, 42, p. 00027. Available at: https://doi.org/10.1051/shsconf/20184200027.
24. Vasumathi, A. (2018) 'Work life balance of women employees: A literature review', International Journal of Services and Operations Management, 29(1), pp. 100–146. Available at: https://doi.org/10.1504/IJSOM.2018.10009105.

Entrepreneurship Education : Issues and Challenges

Ms. Reena,* Dr Akanksha Srivastava**

Abstract:

A quality life is a fundamental right of every individual and education is the means to achieve it. The issue of quality of life is closely linked with access to education and economic resources. At present, India has become the most populous country in the world (data.gov.in dt. 5 June 2023). In such a situation, due to increasing needs, unemployment, and limited resources, the responsibility has increased on education (H. Ramakrishna & H Hulugappa,2013) to develop skills in students and prepare them as productive human beings and also enable them to face challenges of the future (NEP 2020). On the other hand, the sustainable development goals (SDGs) also presented a target of 2030 in front of the world to achieve issues like poverty, starvation, unemployment, etc...

In such situations, entrepreneurship education plays a crucial role. It's been over 80 years since entrepreneurship has been taught as a subject (Janowski, et. al., 2023;2020). However, the issues related to entrepreneurship education are still unresolved. The main issues are: - Can entrepreneurship be taught? Where to start? What to teach and, How to teach? These fundamental questions are still unanswered and relevant in the current scenario.

This review paper explores the above issues in light of the literature. The last 25 years of research papers were taken from various sources for this review paper. The 'entrepreneurship education in school' key term was used to filter the papers on the website. The team filtered around 135 papers at the initial level. After the refiltration, the team shortlisted 55 papers for the literature review.

Based on the literature review, the researcher finds that attitudes towards entrepreneurship can be developed through education; entrepreneurship education should be incorporated into every formal education stage and provided in an integrated manner with other school subjects. The research also suggested that competencies cannot be developed in the classroom and require experience outside the boundary wall.

Key Words: - *entrepreneurship; education; pedagogy; curriculum*

---

*Ph.D. Scholar, School of Education, Sharda University, Greater Noida, U.P. India

**Associate Professor, School of Education, Sharda University, Greater Noida, U.P. India

Introduction

According to Article 21A of the Indian Constitution, a quality life is a fundamental right of every individual and education is the means to achieve it. The issue of quality of life is closely linked with access to education and economic resources. Highlighting the same role of education in the National Education Policy 2020, it has been said that education is the means through which the country's talent and resources can be best developed and promoted for the betterment of the nation and the world. “Education is the most important component of nation-building” (Tagore R.). At present, India has become the most populous country in the world (data. gov.in dt. 5 June 2023). In such a situation, due to increasing needs, unemployment, and limited resources, the responsibility has increased on education (H. Ramakrishna & H Hulugappa,2013) to develop skills in students and prepare them as productive human beings and also enable them to face challenges of the future (NEP 2020). On the other hand, the sustainable development goals (SDGs) issued by the UN, also presented a target of 2030 in front of the world to achieve issues like poverty, starvation, unemployment, etc...

Education is such a power that multiplies the success of efforts being made for development. So, to achieve these SDGs and to enable the child according to the needs of the 21st century, effective entrepreneurial education is required. India has emerged as a fast-emerging economy on the world platform and will be the third-largest economy in the world by 2030 in terms of GDP (IMF's October World Economic Outlook, 2019). 'Entrepreneurship is seen as the process by which individuals use resources to create new opportunities' (Roos A., 2015). According to the Report of the National Knowledge Commission on Entrepreneurship, Govt. of India (2008), entrepreneurs’ growth depends upon the quality of education imparted in the institutions. So qualitative entrepreneurial education is very important for the nation. Entrepreneurship education plays an important role in the economic development of the country. Now there are many concerns raised about the relationship between entrepreneurship and Education (Janowski et al.;2023). In the current scenario, entrepreneurial culture and education are vital for any emerging economy (Mukhtar et al,2021; Bhardwaj P.2020; H. Ramakrishna & H Hulugappa, 2013; Rehman A. & Elahi Y. A.,2012; Todd and Javalgi,2007) and entrepreneurship education & training are the pioneers for developing a culture of entrepreneurship and entrepreneurial mindset (Capote & Dinagsao,2016). For qualitative education, it is required to identify the important issues so that effective strategies can be prepared.

Methodology

This review paper explores the above issues in light of the literature. The last 25 years of research papers were taken from various sources for this review paper. The 'entrepreneurship education in school' key term was used to filter the papers on the website. The team filtered around 135 papers at the initial level. After the refiltration, the team shortlisted 55 papers for the literature review.

The Fundamental Questions About Entrepreneurship Education

The concept of entrepreneurship education was introduced in 1736, but formal education was started in 1938 by Shigeru Fijii, at Kobe University in Japan. It's been over 80 years since entrepreneurship has been taught as a subject (Janowski, et. al., 2023). But even today, the question related to entrepreneurship education is so relevant. Basu R. (2014) & Shankar, (2012) highlight the issues faced by Entrepreneurship education. These are short-term focused results, elective nature of the subject, inappropriate pedagogy, untrained teachers, limited focus on experience and a limited number of institutions. Some other pedagogy-related issues are:- Is it possible that through education an attitude towards entrepreneurship can be developed in a person? (Henry C. et. al.,2005; Harrison, 2014) or, is it possible that competencies such as: - risk-taking, creativity and innovativeness can be developed through education, which are essential for an entrepreneurial mindset? In this context, research shows that attitudes towards entrepreneurship can be developed (Janowski et.al.,2023; Basu R.,2014; Donald F. Kuratko,2003) or that some aspects of entrepreneurship can be developed through education (Henry C., Hill F., Leitch, 2005). Blenker et al. (2011) and Gibb A. (2008) raised concern about entrepreneurship education and highlighted the main issues about it which are: - the policy justification, enterprise/entrepreneurial idea, intended goals, pedagogical obstacles relating to this subject, teacher skills and ownership, conceptual alignment with educational objectives and practice, curriculum placement and integration strategies, opportunities for a transition from primary to secondary and higher education include entrances into the curriculum, alternative models for different student groups, as well as evaluation and assessment methods. Blenker et al. (2011) highlighted the crucial questions related to entrepreneurship education which the following are: -

1) What is the best way to prepare students to launch new businesses?
2) How can students be prepared to start high-growth businesses?
3) What are some ways to teach students to apply

entrepreneurship to address a variety of social issues?

4) What are some strategies for teaching students to think like entrepreneurs?

These questions stem from entrepreneurial instructors' need to give effective education while also adjusting to their embedded environment. Different research trends, institutional settings, and definitions of entrepreneurship lead to varying learning objectives.

Now some fundamental questions about entrepreneurship education arise here why? What? how? And where?

Question on why we teach entrepreneurship education

The first question about entrepreneurship education is whether entrepreneurship is an innate tendency of humans or whether can it be developed through education. Apart from this, what are the basic objectives of entrepreneurship education? etc... related issues are included in this. Innovation, risk-taking ability, foresight etc. are the main competencies of entrepreneurship which automatically develop in humans at birth. Can entrepreneurship be taught (Harrison, 2014; Henry C.et. al. 2005)? Some research indicates that an entrepreneurial attitude can be developed (Nuryanti, B.L. et al 2016; Basu R.,2014; The Consortium for Entrepreneurship Education, Columbus, Ohio,2004; Donald F. Kuratko, 2003). While, some researchers say that most of the youth have innate entrepreneurial qualities, but they don't have the technical skills to put them into practice. These skills can be taught to them through entrepreneurship education so that their inner talent is not wasted (Trivedi, 2014).

Table 1. Relevance & importance of Entrepreneurship Education

	Individual level	Organizational level	Societal level	References
Commonly stated reasons for entrepreneurial education, but less effective in schools and for embedded approaches				
Job creation	More individuals are needed that are willing and capable to create job growth	Growing organizations create more jobs	Entrepreneurship and innovation are primary paths to growth and job creation	(Jones and Iredale, 2010, Hindle, 2007, Kuratko, 2005, Volkmann et al., 2009)
Economic success	Entrepreneurship can give individuals economic success	Organizational renewal is fundamental to every firm's long-term success	Renewal processes are fundamental to the vitality of economies	(Kuratko, 2005, O'Connor, 2008, Volkmann et al., 2009, Gorman et al., 1997)
Globalization, innovation and renewal	People need entrepreneurial skills and abilities to thrive in an ever-changing world	Entrepreneurial firms play a crucial role in changing market structures	A deregulated and flexible market requires people with higher-level general skills	(Henry et al., 2005, Jones and Iredale, 2010, Kuratko, 2005, Hytti and O'Gorman, 2004)
Rarely stated reasons for entrepreneurial education, but promising for schools and embedded approaches				
Joy, engagement, creativity	Creation / value creation / creativity is a main source of joy and pride for people	Employee creativity and joy is essential for the performance of new and existing organizations	Economic wealth of nations correlates with happiness of its citizens	(Amabile and Khaire, 2008, Amabile and Kramer, 2011, Goss, 2005, Diener and Suh, 2003)
Societal challenges	People can make a difference to society, and marginalized people can achieve economic success	Corporations can collaborate with small social entrepreneurship initiatives to create social value	Social entrepreneurship addresses problems in society that the market economy has failed to address	(Volkmann et al., 2009, Kuratko, 2005, Seelos and Mair, 2005, Austin et al., 2006, Rae, 2010)

Source: - Lackéus, M. (2015). Entrepreneurship in Education. What, Why, When, How. Entrepreneurship360, Background Paper, European Commission: OECD.

In the absence of sufficient research on this subject, it is not possible to draw any conclusion. However, entrepreneurship education must teach students how to convert original ideas into practice. Where to start? Which points should be kept in mind to reduce the risk assessment? Or how to establish yourself in the market competition by adopting innovation? Thus, entrepreneurship education supports enterprise and makes it a smooth process. Some researchers (Rashid L.,2019) say that entrepreneurship education strengthens the ability to remove poverty, establish social equality and enrich economic development.

According to some other researchers (Lackeus M. 2015; Tattwamasi P. 2005; Krisner 1973, 1982), making self-sufficient, creating employment opportunities, qualitative change in lifestyle, environmental protection etc. are also the objectives of entrepreneurship. Globalization and technological advances have increased the demand for entrepreneurs and employees with an entrepreneurial mindset in the international world (Goshen-Olgun S. et.al.,2022; Kuratko et. al.,2015).

Question on What to teach

Entrepreneurial education supports enterprise development (Agrawal V K,1995). In such situations the questions of 'what to teach and how to teach' become important (Ronstadt, 1987). According to Agrawal V K (1995), The curriculum, which has great significance in education, must not be a mere repository of facts; rather, it ought to have real-world applications. Adha et al. (2023) highlighted the concern that the academic and theoretical material in current teaching techniques is excessive, and there aren't enough practical components to support a business-minded mindset. Now what should be included in the curriculum of entrepreneurship education? Along with this, what should be the proportion of Theory and Practicum in it? etc. related issues remain relevant even today. Thus, student-centric learning methods, practical knowledge, and entrepreneurial understanding are required to boost students' entrepreneurial intentions.

Some researchers (Tattwamasi P.,2005) said that both components should be given equal weightage. The Consortium for Entrepreneurship Education, Columbus, Ohio (2004), advocated that real entrepreneurs' stories, discussions with them, apprenticeships etc should be incorporated into the curriculum.

Table 2. What to teach at the school level in entrepreneurship education

S. No	*Content*	*Reference*
1.	Real entrepreneurs' stories, narratives;	Adha et al. (2023), SCERT of GNCT Delhi

	repertoires, Interviews, and discussions with entrepreneurs	(2019); Blenker et al. (2011), The Consortium for Entrepreneurship Education, Columbus, Ohio (2004); Kuratko, 2003; Gartner,2001
2.	Interact with people outside the school boundary	Lackeus M.,2015

Question on How to teach

The Consortium for Entrepreneurship Education, Columbus, Ohio (2004), highlighted that 'entrepreneurship education is beneficial for wealth creation. It also develops different skills, abilities, self-esteem, and work environment. Arasti Z. et al. (2012) stated that the knowledge and skill of an educator to use various teaching methods, particularly those linked to teaching entrepreneurship, have a major role in the effectiveness of entrepreneurship education. According to Nuryanti, B.L. et al (2016), there are several methods to develop an entrepreneurial mentality, and learning outside of the classroom is one of them. Some researchers (Anđelković A. K et al 2020; Bhardwaj P. 2020; Nadelson L. S.et al 2018; Natuna D. A.& Rinaldi 2017; Tadvi V & Magre S 2016; Basu R. 2014) argue that it should be provided in an integrated manner with other school subjects whereas some researchers stated that it should be taught as a stand-alone subject (Ntsanwisi & Mnisi.2021; Almahry F.F. et al.2 018; Tattwamasi P. 2005).

Table 3. How to teach entrepreneurship education: As a subject or in a transdisciplinary manner

S. No	Different views	Researchers
1.	As a separate subject	Ntsanwisi & Mnisi (2021); SCERT of GNCT Delhi (2019); Almahry F.F. et al (2018); Tattwamasi P. (2005);
2.	In a Trans-disciplinary manner	Anđelković A. K et al (2020); Bhardwaj P. (2020); Nadelson L. S.et al (2018); Natuna D. A.& Rinaldi (2017); Tadvi V & Magre S (2016); Basu R. (2014); Ruskovaara, E. et al. (2014); Lackeus M. (2015); National Curriculum framework, 2005, MoE, Govt of India; The Consortium for Entrepreneurship Education, Columbus, Ohio (2004);
3.	In the form of Extracurricular subject	Floris M. et al, (2023)

Now here, competent and trained teachers are the basic requirement of any education system. The first condition for the transition to an enlightened curriculum is a change in teacher competencies, skills, knowledge and attitudes (Focus Paper on

Teacher Education, 2009). Effective education of any subject depends on its effective implementation and this implementation depends on the efficiency, skill, training, attitude etc. of the teachers. Shankar (2012) has highlighted the paucity of trained teachers as a major constraint in entrepreneurship education in India. Malywanga; Shi & Yang (2020) revealed that business management-related pedagogical approaches were commonly used in the entrepreneurial classroom. The lecture method was followed which affects the goals of producing competent entrepreneurs. Diaz (2019) suggests that there is a time to change the teaching approach to addressing contemporary change. Rajput V. (2020) found that the use of experience methods and the learning-by-doing methods used in the pedagogy of entrepreneurship education could improve their entrepreneurial competencies, make them more confident and equip them with a can-do attitude towards starting a business of their own. Whereas Arasti (2012) found that group projects, case studies, individual projects, the development of a new venture creation project, and problem-solving are the teaching methods used by faculty. However, Gatchalian (2010) stated that entrepreneurship education experts gave more importance to individualised experience and methods like project-based learning. Sherman, Sebora & Digman (2008) stated that the experimental approach also provided a realistic experience of being an entrepreneur. Whereas traditional approaches like reading and lecture methods have shown a weak relationship with students' career choices. Some prevailing pedagogical practices followed for teaching entrepreneurship education are as follows: -

Table. 4. Prevailing Pedagogies in Entrepreneurship Education

S. No	Teaching Method	Reference
1	Experimental approaches	Costa et. al. (2024); Neck et al, (2014); Sherman, Sebora & Digman (2008).
2	Experiential Method	Ghafar (2020); Lackeus M. (2020); Malywanga; Shi & Yang (2020); Rajput (2020); Tadvi V & Magre S (2016); Canziani B. et al (2015); Rushworth S. (2011); Gatchalian (2010);
3	Project-based learning	Gatchalian (2010)
4	Design thinking method	Zupen, Cankar & Cankar (2018)
5.	Discovery Learning	Nuryanti, B.L. et al (2016),

A common consensus among researchers is that giving opportunities to learners to work in an interdisciplinary manner and interact with people outside

the school boundary wall is an effective way to build entrepreneurial competencies in learners (Lackeus M.,2015). The integration of new subjects in the curriculum is an important requirement by which contemporary issues can be addressed. But due to this, the load of subjects on the children increases. So the better option can be to include them in the curriculum through the already existing subjects and ongoing curricular activities (National Curriculum framework, 2005, page 34). However, some researchers feel that the transdisciplinary transition of this subject does not meet the nature of the subject and the demands of the community. So, it should be included as a separate subject. An urgent need emerges here for how to comprehend entrepreneurship education in the ongoing curriculum (Fejes et.al.,2018).

Question on Where to start

Entrepreneurship education can help foster economic growth. But for this, effective entrepreneurship education is an essential condition. Some research shows that entrepreneurial competencies in human behaviour can be induced and controlled by external factors, therefore it is necessary to teach entrepreneurship in schools, from an early age (Tattwamasi P.,2005; National Knowledge Commission, 2008; Kautonen et al.2015) So, entrepreneurship education must be incorporated into every stage of formal education.

Table 5. School Level from where we endorse entrepreneurship education

S. No	School Level	Reference
1.	Primary Level	Floris M. et al, (2023); Anđelković A.K et al (2020); Zupen, Cankar & Cankar (2018); Polenakovikj R. et al., (2016); Ruskovaara, E. et al. (2014); Tattwamasi P. (2005)
2.	Secondary Level	New Education Policy of India (2020), SCERT of GNCT Delhi (2019); Kirkley, W.W. (2017);
3.	Higher Secondary Level	Bhardwaj P. (2020); Natuna D. A.& Rinaldi (2017)

Apart from these pedagogical issues, several other issues are also affecting entrepreneurship education such as: - inappropriate pedagogy, untrained teachers, and limited focus on experience are the main challenges in entrepreneurship education (Basu R, 2014). Rehman A.; & Elahi Y. A. (2012) also highlighted various challenges in the field of entrepreneurship education like cultural barriers, dependency on the government, Lack of standard framework, incomplete entrepreneurship education, difficult start-ups, etc...

Conclusion: -

After reviewing the literature, some important issues arise here like: - How to teach entrepreneurship? What should be the effective teaching pedagogy related to entrepreneurship education (Lackeus M. 2020; Blenker et al. (2011)? Should the transition of entrepreneurship education be limited within the school premises or should it be taken outside the school boundary and organized in the community? Should entrepreneurship education be included in the curriculum as a special subject or given in a transdisciplinary manner with other subjects? Now, it can be concluded that entrepreneurship education is beneficial for enhancing students' entrepreneurial purpose, learning, practical knowledge, and entrepreneurial understanding. A collaborative framework of education is required between universities and primary schools to face social challenges. Teachers are crucial in operationalizing entrepreneurship education and identifying best practices. So, high legitimacy among teachers about entrepreneurship education is required for qualitative education in the discourse of entrepreneurship education. Teachers frequently used roleplay, brainstorming, problem-solving, networking, and use of case studies. The literature work also suggested that educators and policymakers should give sufficient time to assess the effect of various pedagogical methods for boosting competencies related to the entrepreneurship mindset. The research also suggested that competencies cannot be developed in the classroom and require experience outside the boundary wall.

REFERENCE

- Adha H. V. et al (2023) "Analysis of the Factors that Impact on Student Entrepreneurial Intention on Entrepreneurship Study Programs in West Sumatera", Jurnal Manajemen Universitas Bung Hatta Vol. 18, No. 02, July 2023. ISSN: 1907-6576 (print) ISSN: 2615-5370 (online).
- Albornoz, C, and Rocco, T.S 2009, Revisiting Entrepreneurship Education Literature: Implications for Learning and Teaching Entrepreneurship, Proceedings of the Eighth Annual College of Education & GSN Research Conference PP.2-7.
- Almahry F.F. et al,2018, A REVIEW PAPER ON ENTREPRENEURSHIP EDUCATION AND ENTREPRENEURS' SKILLS. Journal of Entrepreneurship Education. Print ISSN: 1098-8394; Online ISSN: 1528-2651.
- Anđelković A. K.et al (2020). 'DEVELOPING ENTREPRENEURIAL COMPETENCIES IN STUDENTS AND TEACHERS BY STIMULATING CREATIVITY'. https://www.researchgate.net/publication/34312740.
- Arasti Z.et al 2012; A Study of Teaching Methods in Entrepreneurship Education for graduate Students, Higher Education Studies Vol. 2, No. 1; March 2012; ISSN 1925-4741

E-ISSN 1925-475X
- Balabuch, P., de Francisco, A. C., Pinheiro, E., Sokulski, C. C., & Aires, J. P. 2019. Developing Professional Skills of the Convict through Entrepreneurship Education. Creative Education, 10, 3329-3344. https://doi.org/10.4236/ce.2019.1013256.
- Bhardwaj P. (2020). PhD Thesis, https://doi.org/10.1016/j.ijme.2019.100358
- Canziani, B., Welsh, D.H.B., Hsieh, Y., & Tullar, W. 2015. What pedagogical methods impact students' entrepreneurial propensity? Journal of Small Business Strategy, 25(2), 11-42.
- Capote V; Dinagsao A V 2016 Teachers' Entrepreneurial Competence and Knowledge of Business Management, International Journal of Science and Research (IJSR) ISSN (Online): 2319-7064; Volume 5 Issue 12, December 2016.
- Caroline E.W. Glackin and Steven E. Phelan 2020 Improving entrepreneurial competencies in the classroom: an extension and in-study replication; New England Journal of Entrepreneurship Vol. 23 No. 2, 2020 pp. 79-96 Emerald Publishing Limited 2574-8904 DOI 10.1108/NEJE-04-2020-0005.
- Corbett, A. 2011. Find your own way: entrepreneurship course development, strategic fit, and the problems of benchmarking. International Journal of Entrepreneurship and Small Business, 13(1), 18-31.
- Díaz, E.R., Sánchez-Vélez, C.G., & Santana-Serrano, L. 2019. Integrating The Five Practices of Exemplary Leadership Model into Entrepreneurship Education. The International Journal for the Scholarship of Teaching and Learning, 13, 10.
- Deepti,2018, "Teaching competence of secondary school teachers about their role conflict Vocational maturity and attitude towards Teaching". Dept. of Edu. MD University. http://hdl.handle.net/10603/298582.
- Ernest K; Matthew S K; & Samuel A. K 2015; Towards Entrepreneurial Learning Competencies: The Perspective of Built Environment Students; Higher Education Studies; Vol. 5, No. 1; 2015 ISSN 1925-4741 E-ISSN 1925-475X.
- Fejes A; Nylund M; & amp; Walli, J 2019 How do teachers interpret and transform entrepreneurship education, Journal of Curriculum Studies, ISSN 0022-0272, E-ISSN 1366-5839, Vol. 51, no 4, p. 554-566
- Floris, M., Dettori, A., & Reginato, E. (2023). Budding entrepreneurs. The role of university in spreading early entrepreneurial mindset in school kids. National Accounting Review.
- Ghaffar S. 2020 'Convergence between 21st Century Skills and Entrepreneurship Education in Higher Education Institutes' International Journal of Higher Education, Vol. 9, No. 1;2020
- Göksen-Olgun, S., Groot, W., & Wakkee, I. (2022). Entrepreneurship programs and their underlying pedagogy in secondary education in the Netherlands. Entrepreneurship Education, 5, 261 - 287.
- H. Ramakrishna H Hulugappa, (2013). Entrepreneurship Education in India: Emerging Trends and Concerns. Journal of Entrepreneurship and Management. Volume 2 Issue 1 February 2013.
- https://www.iitms.co.in/blog/importance-of-pedagogy-in-teaching-

and-learning-process.html.
- https://www.edudel.nic.in/mis/eis/frmSchoolList.aspx?type=8v6AC39/z0ySjVIkvfDJzvxkdDvmSsz7pgALKM jL3UI=
- https://sdgs.un.org/
- Huang, Y, An, L, Liu, LZhuo, Z and Wang, P 2020 'ExploringFactors Link to Teachers' Competencies in Entrepreneurship Education' International Conference on Education and Educational Psychology ICEEPSY 2010, Procedia Social and Behavioural Sciences 12 2011 436–447
- Janowski, A., Gonchar, O., & Yakovyshyn, R. (2023). Education vs. Entrepreneurship – Between Theory and Practice: The Case of SMEs in Poland. E&M Economics and Management, 26(1), 111–125. https://doi.org/10.15240/tul/001/2023-1-007.
- John A. Dobson Clark University, Jacobs Seton Hill University, Dobson. L, Saint Francis Xavier University,2017 'Toward an Experiential Approach to Entrepreneurship Education' Journal of Higher Education Theory and Practice Vol. 17(3) 2017.
- Jovanovski, B.R., Beinhauer, R., Valentic, E., & Kiendl, D. (2020). Development of successful entrepreneurial education initiatives enabled by EU-funded projects - The case of FH JOANNEUM. Economics.
- Kirkley, W.W. (2017). Cultivating entrepreneurial behaviour: entrepreneurship education in secondary schools.
- Lackéus, M. (2015). Entrepreneurship in Education. What, Why, When, How. Entrepreneurship360, Background Paper, European Commission: OECD.
- Luísa, M., & Gatchalian, B. 2010. An In-depth Analysis of the Entrepreneurship Education in the Philippines: An Initiative Towards the Development of a Framework for a Professional Teaching Competency Program for Entrepreneurship Educators.
- Malywanga, J., Shi, Y. C., & Yang, X. P. 2020. Experiential Approaches: Effective Pedagogy "for" Entrepreneurship in Entrepreneurship Education. Open Journal of Social Sciences, 8, 311-323. https://doi.org/10.4236/jss.2020.82024
- McGrath, G. R., & MacMillan, J. (2000). Entrepreneurial Mindset: Strategies for Continuously Creating Opportunity in an Age of Uncertainty. Brighton, MA: Harvard Business School Press Books.
- Miranda C; et al(2020 Seven Challenges in Conceptualizing and Assessing Entrepreneurial Skills or Mindsets in Engineering Entrepreneurship Education , Educ. Sci. 2020, 10, 0309; doi:10.3390/educsci10110309; www.mdpi.com/journal/education.
- Mojab, F, Zaefarian, R, Azizi, A.H.D, 2011, Applying Competency-based Approach for Entrepreneurship education, Procedia Social and Behavioural Sciences 12 2011 436–447
- Morris, M.H, Justin, W.W, Jun, F, and Singhal.S 2013, A Competency-Based Perspective on Entrepreneurship Education: Conceptual and Empirical Insights, Journal of Small Business Management 2013 51(3), pp. 352–369.
- Mukhtar, S., Wardana, L., Wibowo, A., & Narmaditya, B.S. 2021. Does entrepreneurship education and culture promote students' entrepreneurial intention? The mediating role of an entrepreneurial mindset. Cogent

Education, 8.
- Nadelson et al.2018Developing Next Generation of Innovators: Teaching Entrepreneurial Mindset Elements across Disciplines, International Journal of Higher Education Vol. 7, No. 5; 2018; ISSN 1927-6044 E-ISSN 1927-6052; http://ijhe.sciedupress.com.
- National Knowledge Commission Report 2008, Govt of India
- National Education Policy 2020, MHRD, Govt of India.
- Natuna D. A.& Rinaldi (2017), 'The Competency of Teacher Entrepreneurship in Teaching'.
- Ntsanwisi, S; & Mnisi S.S; 2021 TEACHERS' PERCEPTIONS ON THE IMPORTANCE OF ENTREPRENEURSHIP EDUCATION TO LEARNERS IN SOUTH AFRICAN SCHOOLS, Proceedings of EDULEARN21 Conference 5th-6th July 2021; ISBN: 978-84-09-31267-2
- Nuryanti, B.L. et al (2016), 'Growing Up Entrepreneurial Mindset with Discovery Learning Model Development'. 1st Global Conference on Business, Management and Entreupreuneurship (GCBME-16), Advances in Economics, Business and Management Research, volume 15.
- Pesonen et. al., (2004). 'Evaluation of entrepreneurial development coaching: changing the Teachers' thinking and action on entrepreneurship'. Annals of Innovation &Entrepreneurship, 3:1, 17211, DOI: 10.3402/ aie.v3i0.17292.
- Pizzaro. N 2014, 'An Institutional and Pedagogical Model That Foster Entrepreneurial Mindset Among College Students' Journal of Entrepreneurship Education, vol.17, Number2, 2014
- Pretorius, M., Nieman, G., & Vuuren, J.J. 2005. Critical evaluation of two models for entrepreneurial education: An improved model through integration. International Journal of Educational Management, 19, 413-427.
- Rajput V. 2020, Role of Pedagogical Practices in Entrepreneurship Education for New Venture Creation in India, http://hdl.handle.net/10603/311756.
- Rehman A.UR. et al. (2012). Entrepreneurship Education in India – Scope, challenges and Role of B-schools in Promoting Entrepreneurship Education. International Journal of Engineering and Management Research, Vol. 2, Issue-5, October 2012 ISSN No.: 2250-0758
- Ruskovaara, E., & Pihkala, T. (2014). Entrepreneurship Education in Schools: Empirical Evidence on the Teacher's Role. The Journal of Educational Research, 108, 236 - 249.
- SCERT, Delhi.2019," Entrepreneurship Mindset Curriculum Framework", Class 9-12, ISBN:978-93-85943-78-2.
- Sherman et.al 2008, EXPERIENTIAL ENTREPRENEURSHIP IN THE CLASSROOM: EFFECTS OF TEACHING METHODS ON ENTREPRENEURIAL CAREER CHOICE INTENTIONS, Journal of Entrepreneurship Education, Volume 11, 2008.
- Seikkula-Leino, J., Ruskovaara, E., Ikävalko, M., Mattila, J., & Rytkölä, T. (2010). Promoting entrepreneurship education: the role of the teacher? Journal of Education and Training, 52, 117-127.
- Sirelkhatim F. & Gangi Y. 2015; Entrepreneurship education:

A systematic literature review of curricula contents and teaching methods; Cogent Business & Management, 2:1, 1052034, DOI: 10.1080/23311975.2015.1052034.

- Tadvi V.& Magre S. 2016, 'A STUDY OF SECONDARY SCHOOL TEACHERS ENTREPRENEURIAL MOTIVATION IN RELATION TO THEIR ENTREPRENEURIAL COMPETENCIES'. Int. J. Adv. Res. 4(12), 350-353, ISSN: 2320-5407: http://dx.doi.org/10.21474/IJAR01/2401
- Tattwamasi P. (2005). Entrepreneurship Education in India: Needs for Policy Interventions .6th Biennial Conference on Advances & Trends in Entrepreneurship Research, organised by EDI, Ahmedabad,2005.
- Zupan B, Cankar F, Setnikar Cankar S.2018. The development of an entrepreneurial mindset in primary education. Eur J Educ. 2018; 53:427–438. https://doi.org/10.1111/ejed.12293

Resisting Oppression: Feminist Themes in the Play 'Maa bhoomi’

Dr. Pejjai Nagaraju*, Dr. Siva Prasad Tumu*

Abstract:

The purpose of this study is to examine the feminist themes embedded in the play, Maa Bhoomi, as they relate to the socio-political context of Telangana during the Nizam's rule. The study uses a qualitative approach to reveal its findings. By applying the lens of feminism to the play's representation of oppression against injustice and exploitation, the study illuminates the female characters' challenges and contributions to the revolutionary narrative. Ultimately, the study discusses the broader themes contained within the play, namely women's agency, resilience, transformational journey, gender inequality, enduring oppressive governance, societal struggle against patriarchal norms, collective action and the transition from relying on male protection to fighting oppression.

Keywords: *Maa Bhoomi Play; Land Struggles; Oppression and Exploitation; Female Empowerment*

1.Introduction:

1.1. Contextual Background of 'Maa Bhoomi’:

The play "Maa Bhoomi," written by Sunkara Satyanarayana and Vasireddi Bhaskar Rao, stands as a pivotal work inspired by the Telangana Armed Struggle against the oppressive rule of the Nizam (Satyanārāyaṇa & Bhāskar, 1957, p. ii). The play vividly illustrates the struggles and hardships of the landless and oppressed, capturing a broader theme of resistance to injustice and exploitation (Lal, 2004, p. 359). The play highlights Telangana's armed struggle as a successful revolution, advocating for redistributive justice (Christof-Füchsle & Khan, 2024, p. 485). As a result of its roots in the social and political climate of Telangana, "Maa Bhoomi" channels the collective struggles of farmers and oppressed classes against government oppression and landlordism (Ramaṇa, 1995, p. 100). In an effort to magnify the significance of the Telangana protest against the Nizam's despotism,

*Theatre Facilitator for the International Baccalaureate Curriculum, Hyderabad, Telangana, India
**Assistant Professor Department of Dramatics University of Rajasthan Jaipur-302004

the playwrights seek to magnify the suffering of the oppressed and raise awareness about their plight (Satyanārāyaṇa & Bhāskar, 1957, p. ii ; Rādhākṛṣṇamūrti, 2002, pp. 514-521).

A significant part of the play's content and reception is shaped by the social and political environment of Telangana during its conception. The relentless oppression of Nizam's police and Razakars, marked by raids, imprisonments, and violent suppression of protests, fuels the playwrights' portrayal of heroic struggles and resistance in "Maa Bhoomi" (Rādhākṛṣṇamūrti, 2002, pp. 514-521). This depiction resonates deeply with audiences in Andhra Pradesh and Telangana, leading to the play's widespread popularity with over a thousand performances and an audience of two million within a year (Lal, 2004, p. 359). "Maa Bhoomi" emerges as a symbol of protest against exploitation and gains significant momentum within the broader movement for social change and justice through its realistic portrayal of peasant struggles.

The play Maa Bhoomi stands as a powerful evidence to the intersection of social activism, leftist politics, and cultural expression, and the play resonates with millions of people. Although the play is associated with the struggles of oppressed classes against government oppression and landlordism, its origin also has a strong connection with leftist politics (Purushotham, 2021, p. 191). With the support of the leftist movement, the play reaches millions of people as a cultural movement. Leaders like P. Sundarayya, M. Basavapunnayya, Ravi Narayana Reddy, and Devulapalli Venkateswara Rao collaborate to organize cultural activities, including showcasing the play "Maa Bhoomi" through Prajapriya Natyamandali in the Telugu-speaking region (Rao, 1990, p. 265). The success of "Maa Bhoomi" brings substantial revenue to the Communist Party in the form of donations from the masses.

A scholar also points out that "Maa Bhoomi" presents Telangana's revolutionary context but does not adequately depict Telangana's village culture or dialect; instead, it focuses on Andhra Pradesh dialect and life (A.K. , 2002, p. 61). This observation can be viewed in two ways: first, even though it does not reflect the Telangana dialect and culture, the play attracts a lot of Telangana people at that time; second, the neglect of Telangana culture raises concerns about the representation of Telangana.

Thus, the play gained immense popularity through numerous performances, reaching millions of people and setting records for its extensive cultural reach within a short period. The play garnered immense popularity with in a short period. The play was performed

very successfully by Praja Natya Mandali and shows were supported by another troupe from Krishna Distric, Andhra Pradesh. The play was performed by 125 branches of Praja Natyamandali, and it was performed over 1000 shows within a year; Khwaja Ahmad Abbas praised that the play made a world record with these many shows (Rao, 1989, p. 117 Rādhākṛṣṇamūrti, 2002, 514-521 Veṅkaṭēsvararāvu, 1998, p. 14). With over a thousand performances, the play was witnessed by two million people within a year (Lal, 2004, p. 359; Maddukuri, 1958, p. 62). Thus, the play gained immense popularity through numerous performances, reached millions of people, and set records for its extensive cultural reach within a short period.

Maa Bhoomi contributes to the theatre movement and inspires artistic endeavours focused on societal transformation and the pursuit of justice and equality. In Telugu literature and theatre, the legacy of "Maa Bhoomi" has remained profound, influencing subsequent works and discussions regarding socioeconomic and political concerns of the era (Rādhākṛṣṇamūrti, 2002, pp. 514-521). Throughout the Telugu-speaking region, it is influential in the theatre movement, reflecting the Telangana liberation struggle and contributing to the cultural and political landscape (Ramaṇa, 1995, p. 100; Rādhākṛṣṇamūrti, 2002, pp. 514-521; Christof-Füchsle & Khan, 2024, p. 485). In portraying land struggles and advocating for social activism, "Maa Bhoomi" sparks discussion and inspires artistic endeavours that continue to resonate within the context of broader societal transformation and the pursuit of justice and equality.

2. Methodology

In this research paper, a qualitative approach was used. A feminist perspective was applied to the textual analysis and critical interpretation of the play. As part of this study, the portrayal of female characters was examined in depth, as well as their interactions and contributions within the socio-political context depicted in the play.

One of the researchers directed the play and presented it to the public in order to gain an understanding of its characters, themes, and various elements (Rajkumar, 2019). Following the performance, data was collected informally from the audience in order to gain insight into the characters. In the course of the production, notes were taken based on the actors' responses to the characters and themes. A number of primary sources of data were utilized, including the script of the play, the notes of the actors, and the feedback of spectators. We collected secondary data about the play from various published sources in order to gain an understanding of its performance and historical context.

There were several ways in which the data was analysed. The researchers analysed the play individually, identifying feminist themes such as gender roles, resistance, empowerment, and solidarity through dialogue, setting, plot, and character behaviour. In order to uncover deeper meanings, one researcher rehearsed and performed the play in front of a large audience. Researchers analysed the collected data jointly.

Through the research process, ethical considerations were paramount, especially with regard to sensitive interpretations of gender dynamics and feminist themes within the historical and cultural context of the play. As a result, the researchers avoided essentializing gender roles and instead focused on the complexity and agency of female characters in the play.

This study had a limitation as it relied solely on literary methods, potentially constraining the scope of the selected resources. This limitation could restrict the depth and breadth of the study, leading to an inability to contextualize the play within the historical context of Telangana during the period of the Nizam government and the Telangana Armed Struggle. A thorough literature review was conducted in order to gain a better understanding of this setting.

3. A Feminist Interpretation of 'Maa Bhoomi'"

'Maa Bhoomi' provides an opportunity for feminist analysis, highlighting the roles and interactions of women within a patriarchal society. Using this lens, the storyline explores how women challenge established gender norms and contribute significantly to the revolutionary undertones. As part of their participation, Seetha and Kamala decorate icons depicting freedom fighters and revolutionary leaders and sing empowering songs. The actions of Kamala and Seetha indicate their willingness to express their freedom towards revolution. Both of these female characters display an exceptional level of bravery and resiliency. As a result of some of the actions of the characters, traditional gender roles are challenged as well as power dynamics. The female characters play a significant role in inspiring the community and advocating for collective action against oppressive forces. Through their active participation in the revolution, they challenge ingrained gender norms and redefine expectations of traditional society. The actions of women have demonstrated the potential for bringing about social change as a result of their actions. Throughout the play, feminist views emphasize the complex shades of gender relations, emphasizing the essential contribution of female

characters to the discourse on resistance and liberation.

4. Discussion:

4.1. Characters in the Play

The characters in the play represent a variety of themes. These characters represent governance dynamics, rural life, social structure, and farmers' struggles. Characters are designed with themes of power, oppression, justice, and community identity in a village setting in Telanagana during the Nizam period.

Veerareddy is the protagonist of the play. His occupation is that of a farmer. Within the feudal structure of the village, Veerareddy fights oppression and social injustice. As a leader, he is courageous and strong-minded. Against oppressive rulers, he leads the Sangham . He is engaged in a battle with Jagannadhareddy. Symbolically, he represents social change and the revolution. In the play, this character emphasizes themes of empowerment, unity, and sacrifice.

Jagannadhareddy is the village leader, locally referred as Deshmukh. He is a symbol of authority, governance, and oppression of feudal landlords. He is responsible for the distribution of land. Symbolizing power, this character is challenged by the rebellion of the common people against his feudal systems. His goal is to suppress revolutionary movements. He exemplifies deep-seated corruption and power. As a result of his influence, the government oppresses the villagers. The leader misuses his authority and leads to physical attacks and resistance. During the conflict, he ignited violent clashes with the villagers.

Venkatravu is a Patvari and the village's accountant and revenue officer. In the villages, he is usually responsible for maintaining land records, settling land disputes, and collecting taxes. He emphasizes the role of bureaucracy and administration in rural governance. The play portrays him as a loyal subordinate of Jagannadhareddy. In addition, he is witness to Jagannadhareddy's injustice and exploitation. Without questioning Jagannadhareddy's orders, he follows them. Additionally, he appears in the play as an Antogonist. In his interaction with Yellamanda and farmers, he demonstrates inequalities and power dynamics.

Mastan is a member of the Muslim community, but does not follow the elders of his community. He is Jagannadhareddy's lackey. In the village, he exhibits criminal behavior and lawlessness. He reflects the darker aspects of society, where power is often wielded illegally. He is responsible for imposing unjust taxes. He is always instructed to suppress dissent among the villagers. As a result of their involvement with Sangham, he physically assaults villagers. Using intimidation and violence, he maintains

Jagannadhareddy's authority.

Ramudu is a servant of Jagannadhareddy. He is of Mangali descent, an occupational caste of barbers. In the play, he illustrates the challenges faced by lower-caste individuals. Jagannadhareddy exploits him. Jagannadhareddy seized his land. Ramudu hopes to obtain enlightenment and reclaim his lands. As a result of the exploitation of his land and his desire to obtain it back, he is interested in joining the Sangham in order to fight against it. He supports the villagers and the Sangham. He informs the Sangham about Jagannadhareddy's movements.

Yellamanda is a member of the Golla community. The Golla community is primarily engaged in livestock-related occupations. He is passionate about the Sangham. Injustice and corruption are unacceptable to him. As a result of his association with the Sangham, Jagannadhareddy's people physically assault him. Yellamanda remains resolute and joyful despite many oppressions, and he is dedicated to Sangham's principles. By advocating collective resistance and action, he plays a significant role in uniting the village community against exploitation.

Seetha is the wife of Veerareddy. Throughout her family setting, she exemplifies unwavering care and traditional values. Her portrayal symbolizes suppleness and sacrifice. Her commitment to social change and justice is evident. Her defiance and protective instincts were demonstrated in the face of threats to her family and home. By taking such a courageous stance against intruders, she demonstrates a spirit of resistance against oppression. The sacrifice of Seetha represents the personal cost of fighting for justice and freedom.

Kamala is the sister of Veerareddy. It is evident that she is a proactive supporter of change. Kamala is an active participant in the revolution and the Sangham. She exhibits courage in defending her family's rights against oppressive forces. Through her assertive actions, she has demonstrated an unwavering commitment to social justice. Her resilience against adversity underscores the transformative power of individuals in confronting systemic injustices and advocating for collective liberation.

Ameen works as a police officer. He aligned himself with Jagannadhareddy. He is complicit in the oppression of revolutionary people, and he enforces the oppressive rules of Jagannadhareddy. He attempts to influence the Muslim community against Veerareddy and the Sangham at one point. During a conflict at Veerareddy's house, he physically violates villagers and shoots Seetha and Dadasaheb.

Dadasaheb is a farmer from the Muslim community. He plays

an important role in the revolution. Against Jagannadhareddy's oppression, he actively supports the Sangham and Veerareddy. Dadasaheb rejects joining Ameen, when Ameen plays religion politics, and when Ameen tries to separate him from The Sangham. He protects Kamala and Seetha during the confrontation with Jagannadhareddy's forces at Veerareddy's house. He dies during this confrontation.

Subhan is the brother of Mastan, but he does not support Mastan; instead, he actively opposes him. Subhan, a farmer from the village and a member of the Muslim community, aligns himself with Dadasaheb's principles. He holds a prominent position within the Sangham, where he plays an active role in organizing resistance against Jagannadhareddy's oppressive rule. Subhan courageously confronts Jagannadhareddy's unjust taxation policies and demands justice for the villagers. He advocates for unity within the village community and underscores the importance of collective action against exploitation.

Ramireddy, another farmer, assumes a significant role within the Sangham due to his strong leadership qualities. He directly confronts Jagannadhareddy's corruption and exploitation of village farmers, defending his fellow villagers against oppression.

Bandagi, a posthumous character, holds a profound connection to the story. He is portrayed as an icon of revolution, having fought against injustice and oppression before being murdered by Jagannadhareddy's cohorts. Bandagi is depicted as a valiant warrior and immortal soul within the narrative. His tomb becomes a symbol of collective resistance against oppression, serving as an annual gathering place for commemorations and meetings.

4.2. Synopsis of the play:

Scene 1: The play unfolds at Bandagi's tomb, adorned with a basil plant, jasminum auriculatum, and other flowers. Subhan and Ramireddy stand together, while Veerareddy and Dadasaheb are seated nearby. Seetha and Kamala offer incense sticks at the tomb, followed by a song recounting Bandagi's sacrifices, clashes with Jagannadhareddy, and revolutionary legacy. Bandagi is portrayed as a warrior, an immortal soul, and a beacon of change in the song.

The tomb is surrounded by a large crowd of supporters, their enthusiasm for Bandagi's cause growing. Dadasaheb, Subhan, and Veerareddy discuss plans to revolt against Jagannadhareddy's injustice. Seetha comprehends the reasons behind Bandagi's revered status upon discovering Jagannadhareddy's oppressive tax system, while Kamala expresses her determination to join the revolution. Details emerge about Bandagi's murder, leading to hunger

and mourning among the villagers. Ramireddy then rallies the group against Jagannadhareddy's corruption, highlighting the villagers' suffering.

Following a discussion, Veerareddy, Subhan, and Dadasaheb plan to initiate a Sangham. Later, Ramireddy escorts Kamala and Seetha back to their home. Shortly after, Yellamanda arrives, furious after an altercation with Mastan, one of Jagannadhareddy's lackeys, over unjust taxation. Mastan then enters to inquire about the discussions at Badagi's tomb. Yellamanda and Mastan engage in another conflict, during which Veerareddy intervenes to break up the clash between them, leading to Mastan's departure. Mastan's rude behavior towards Yellamanda further fuels rebellion against Jagannadhareddy among the group. Subsequently, Ramireddy returns battered after confronting rowdies who had been harassing Kamala and Seetha on their way home. These rowdies are known to work for Jagannadhareddy, and this incident further inflames Veerareddy and his party with the spirit of revolt against Jagannadhareddy.

Scene 2: The scene unfolds in Jagannadhreddy's Diwanam , where Ramu, a servant, tidies up and arranges chairs and tables. Mastan enters, exchanging pleasantries with Ramu before Jagannadhreddy's arrival. When Jagannadhreddy appears, Mastan reports on people visiting Bandagi's tomb, provoking Jagannadhreddy's anger. A police officer arrives, announcing Ameen's imminent arrival. When Ameen enters, Jagannadhreddy offers him the opportunity to stay at his home for the night, but Ameen declines. Jagannadhreddy then offers him a bribe, which Ameen reluctantly accepts. After consuming alcohol, Ameen hastily departs for Nalgonda.

Jagannadhreddy questions Venkatravu about villagers visiting Bandagi's tomb without his permission. Venkatravu reveals that the visits are clandestine. Mastan informs about an altercation with Yellamanda, leading Jagannadhreddy to command Mastan to bring Yellamanda before him. Venkatravu updates Jagannadhreddy on Veerareddy's activities, including the formation of a Sangham and the display of a revolutionary flag. Jagannadhreddy derides the Sangham members and instructs Ramudu to summon the village farmers to the Diwanam.

Yellamanda arrives, and Venkatravu questions him about the Gongallu offering owed to Jagannadhreddy. Yellamanda admits to providing only three out of the required five Gongallu, prompting Mastan to physically assault him due to his association with Veerareddy's Sangham. Venkatravu imposes a fine on Yellamanda for his Sangham affiliation and tries to coerce him

into admitting that he was pressured to join. When Yellamanda refuses, Jagannadhreddy commands Mastan to beat him until he complies, forcing Yellamanda to provide a finger impression on a white paper before being sent home.

Veerareddy, Subhan, and Ramireddy enter the Diwanam, where Venkatravu accuses them of failing to pay crop taxes and demands repayment of a debt owed by Subhan to Jagannadhreddy. Subhan explains his efforts to repay the debt, but Venkatravu questions his integrity and urges him to verify accounts with Veerareddy. Veerareddy argues against paying additional rice to Jagannadhreddy, highlighting the disparity in land ownership and tax responsibilities. Tensions escalate as both sides remain at odds, leaving the confrontation unresolved.

Scene 3: The scene opens at Veerareddy's home, where Kamala sings a lullaby to her nephew, son of Veerareddy and Seetha. Seetha enters, and she humorously debates Kamala's song choices, sparking a light-hearted discussion. Veerareddy teases Kamala about her song selection. During the conversation, Seetha brings up an incident where Kamala was teased while returning from Badagi's tomb. Concerned for Kamala's well-being, Seetha suggests arranging a marriage for Kamala. She believes that once Kamala is married and moves to her husband's house, it will keep her away from this village and protect her from the rowdies' teasing. Seetha's viewpoint reflects traditional gender roles and highlights her reliance on male protection for women's safety. Seetha's assumptions about women confronting injustice are challenged by Veerareddy, who cites examples of women protesting military oppression. He emphasizes the importance of collective action by presenting Seetha with books from the Sangham. As they sing, they invoke heroic historical figures in a patriotic song.

The scene continues with the entry of Dadasaheb, Subhan and Yellamanda. Yellamanda shows his injuries, and he explains how he was beaten by Mastan and forced his thumbprint on a white paper. Ramireddy arrives and reports that Jagannadhareddy's people have forcefully taken his bullocks without his permission. Veerareddy also expresses grievances over the theft of Ramireddy's bullocks. Yellamanda further complains about Jagannadhareddy's people preventing his herd from grazing on government land. Veerareddy expresses frustration with the lack of proper governance and advocates for changing the government, seeking everyone's support for this. In response to Veerareddy's call for change, Yellamanda questions whether the Muslim community will support forming a new government against the current administration, given its

association with the Nizam's rule. Subhan asserts that the Muslim community does support this and challenges Jagannadhareddy's local governance by citing protests against injustice. During this discussion, Ramudu enters the scene.

Ramudu's visit exposes Jagannadhareddy's exploitative practices, including illegal land seizures, and Ramudu expresses a desire to join the Sangham. He also shares critical information that Dora and the Venkatravu have traveled to Nalgonda and plan to visit the city, leading the Veerareddy's people to suspect nefarious intentions such as framing them with false police cases. The scene concludes with the villagers reaffirming their commitment to the Sangham and singing a song. Throughout this scene, the villagers are depicted as resolute in their resistance to exploitation and oppression, emphasizing unity and empowerment through their struggles against injustice.

Scene 4: This scene begins with Jagannadhareddy and Venkatravu at Jagannadhareddy's home. They discuss strategies to undermine the spirit of the villagers who are joining Veerareddy's Sangam. Jagannadhareddy expresses confidence in his power and government support to suppress the villagers. Jagannadhareddy echoes this sentiment, boasting about the backing of one lakh soldiers from the Nizam and claiming that, if needed, the British government will provide war tanks and aircraft to combat the villagers. He displays arrogance and dismissiveness towards the villagers and the Sangam, firmly believing that they are powerless against his strength and support.

Mastan enters with news that villagers collectively protested against working on Jagannadhareddy's farm and home, causing disruptions. Jagannadhareddy becomes further enraged by the shortage of labour. Ameen arrives, revealing complaints against Jagannadhareddy for alleged atrocities, but Jagannadhareddy and Venktravu dismiss these as lies. The Venkatravu informs Ameen that villagers are disrespecting his authority by holding unauthorized meetings and swearing at the police, which enrages Ameen.

Initially sympathetic towards the villagers' complaints, listening to Jagannadhareddy's peope, Ameen changes his mind. Now, Ameen aligns with Jagannadhareddy. Ameen takes his regual bribe from Jagannadhareddy. Ameen inquiries about the leader of the Sangam, expressing surprise that Veerareddy, a member of Jagannadhareddy's clan, is involved in actions against him. They plan to divide and conquer by leveraging Muslim sentiment (Ameen's focus) and influencing the Reddy community (Jagannadhareddy's focus).

Mastan, Dadasaheb, and Subhan arrive. Before their arrival, Jagannadhareddy and the Venkatravu withdraw, leaving Ameen to address his clan. Upon their arrival, Ameen asks Mastan, Dadasaheb, and Subhan to sit, but they decline, indicating they are not interested in pleasantries. Ameen appeals to religious sentiments and questions their involvement in the Sangham, suggesting that Hindus are leading them astray from true Muslim values.

He promotes the benefits of aligning with the Nizam, emphasizing happiness and wealth. Ameen mentions the Majlis-e-Ittehadul Muslimeen, a Muslim organization offering benefits and respect, urging them to join this Sangham. Dadasaheb and Subhan strongly disagree, explaining that the Sangham supports the poor and oppressed regardless of religion, addressing the issues of all communities. They express hesitation to join the Majlis-e-Ittehadul Muslimeen, which they believe is controlled by landlords. Ameen warns them of consequences if they do not sever ties with the Sangham. Dadasaheb asserts they are not afraid and insist on remaining part of the Sangham before leaving. Jagannadhareddy and the Venkatravu return, learning of Ameen's failed attempt. They comfort Ameen, suggesting they persuade Veerareddy to cease his revolt against Jagannadhareddy. Ameen agrees to rest, asking Jagannadhareddy to inform him of Veerareddy's response to their demands.

Now, Veerareddy arrives, he rejects Jagannadhareddy's offers of a government job and administrative role. Venktravu becomes enraged and praises Jagannadhareddy's achievements, which Veerareddy challenges, accusing Jagannadhareddy of exploiting villagers for personal gain.The confrontation escalates as Jagannadhareddy insults Veerareddy, leading to a physical altercation where Veerareddy is forcefully restrained and arrested by Ameen on Jagannadhareddy's orders. This scene highlights the escalating tension between Jagannadhareddy's oppressive authority and the resistance led by Veerareddy and the Sangham, showcasing power dynamics and ideological clashes within the village.

Scene 5: The scene opens at Veerareddy’s house where Seetha and Kamala are adorning icons of revolutionary leaders and freedom fighters with flower garlands. As they engage in this activity, Seetha sings a powerful revolutionary Telugu song conveying a message of empowerment and resistance against the oppression faced by farmers. The song emphasizes the principle that those who cultivate the land have rightful ownership over it and cautions against individuals who exploit farmers and their hard work. Overall, it advocates for a collective

uprising against oppressors who exploit and steal from farmers.

At the conclusion of the song, Dadasaheb and Subhan enter, inquiring about Veerareddy's whereabouts. Seetha informs them that he followed them to meet Jagannadhareddy, and Kamala adds that Ramudu came to inform them that Jagannadhareddy requested Veerareddy's presence, prompting him to go to Jagannadhareddy's house. Dadasaheb and Subhan ponder if Veerareddy might have taken a different route and missed meeting them along the way.

Soon after, Yellamanda enters in a jubilant mood, prompting Dadasaheb to question whether he had been drinking alcohol to be so happy. Yellamanda responds that he hadn't had a drop to drink since joining the Sangham, showcasing his commitment to responsibility. Dadasaheb wonders if Yellamanda's cheerful demeanor stems from catching his arch nemesis, Mastaan, but Yellamanda clarifies that this isn't the reason for his jubilation.

Ramireddy enters and extols Yellamanda's prowess with his shepherding crook. This piques everyone's curiosity, leading to inquiries about Yellamanda's recent actions and whom he confronted. Yellamanda, unable to contain his excitement, reveals that he imparted a significant lesson to Jagannadhareddy's people.

Ramireddy then recounts his sleepless nights, haunted by thoughts of his cherished bull seized by Jagannadhareddy's men. Eventually, he devised a plan and, with Yellamanda's assistance, intercepted Jagannadhareddy's flock at the lake, rescuing his bull and confronting Jagannadhareddy's people successfully. Yellamanda's crucial role in this victory brings joy to all, who commend Yellamanda and Ramireddy for their bravery.

However, the atmosphere shifted drastically when Ramudu arrived with distressing news that Veerareddy had been forcefully arrested at Jagannadhareddy's residence. This news dampened spirits, instilling tension and worry. Despite the formidable police presence at Jagannadhareddy's place, the group prepares to intervene, demonstrating unwavering resolve to fight for Veerareddy. Feeling pushed to their limits by Jagannadhareddy's oppressive rule, they vow to confront the situation fearlessly. Sita urges immediate action, emphasizing their history of hardship and the need to reclaim their freedom. Dadasaheb agrees to remain behind to protect Sita and Kamala, but Sita insists he secure his own family first, fearing their vulnerability should things escalate.

Ramireddy and Subhan urge everyone to divide and cover each street in the village to educate people about the current situation.

They emphasize the importance of gathering all villagers and preparing a defense. Seetha passionately urges them to fight until death, while Subhan delivers a compelling speech about their history of oppression and the need to reclaim their freedom. All individuals, except Seetha and Kamala, disperse to various houses to inform residents about the unfolding events, while Seetha and Kamala remain at home.

Seetha bids farewell to the departing villagers and anxiously surveys the surroundings, worried about the imminent threat. Kamala calls Seetha inside the home to prepare a plan to fight against Jagannadhareddy and his team in case they attack. Kamala shows a pot filled with dried chili peppers and a knife, outlining her strategy to blind their enemies with the peppers and subsequently eliminate them. Seetha endorses Kamala's plan, suggesting that Kamala hold their enemies' heads while she slits their throats with the knife. Concerned about her son's safety, Sita asks Kamala to protect him if anything happens to her during the altercation. Kamala reassures her, expressing confidence in their ability to face any challenge together.

Suddenly, a commotion erupts outside as Jagannadhareddy, accompanied by police, Ameen, and his goons along with Patwari, forcibly enters the house. Seetha blocks their entry, challenging their audacity to invade her home. Ameen aggressively orders her to move, claiming they are seizing the house due to unpaid taxes. Jagannadhareddy's unsettling gaze on Kamala catches Sita's attention during the confrontation. Reacting swiftly, she confronts Jagannadhareddy and threatens to gouge out his eyes if he continues staring at Kamala. Enraged by her defiance, Ameen grabs Sita by her hair and throws her to the ground, cursing vehemently.

In the chaotic situation, Kamala attempts to attack Ameen, but Mastaan intervenes, blocking her and swiftly overpowering her in a brief scuffle. He then ties her hands while Venkatravu holds Sita down to prevent further disruption. Amidst the commotion, items are thrown out of the house while Sita vehemently protests their actions. In a moment of respite, Kamala manages to free herself and quickly grabs chili pepper from her pot, throwing it into the eyes of Jagannadhareddy's people. This unexpected move leaves them struggling with impaired vision and intense discomfort. Taking advantage of this distraction, Sita and Kamala retaliate by physically attacking Jagannadhareddy's people.

As the chaos intensifies, Dadasaheb enters the scene and witnesses the violence against the women, prompting him to react angrily by physically assaulting the perpetrators and admonishing them for their actions. Ameen, regaining

his vision and realizing that their side is losing control, retrieves his gun and shoots Dadasaheb and Seetha. With both individuals collapsing to the ground, Kamala, understanding the gravity of the situation, rushes to their aid in tears, seeking help. Observing the villagers closing in, Jagannadhareddy and his associates decide to flee the scene. Meanwhile, Veerareddy and Ramudu arrive at the house, discovering the aftermath of the violence. It becomes apparent that Dadasaheb has succumbed to the gunshot wound, while Seetha is in critical condition. Seetha, in a desperate state, entrusts Kamala with the responsibility of caring for her infant son before the scene concludes.

Scene 6: The scene opens at the graves of Seetha and Dadasaheb. Veerareddy, Subhan, Kamala, and Ramudu sing a song praising the bravery of Seetha and Dadasaheb.

Veerareddy and the other villagers blame Jagannadhareddy and his followers for killing Seetha and Dadasaheb. The discussion then turns to retribution, with talk of possibly burying Jagannadhareddy alive. Ramudu expresses unforgiving intentions towards Jagannadhareddy. Everyone emphasizes their determination to ensure justice for Seetha and Dadasaheb.

Ramireddy and the villagers enter with the arrested Venktravu. Venktravu pleads for forgiveness for his deeds and expresses remorse, acknowledging his crimes. Subsequently, Yellamanda and the villagers bring Mastan, who is also arrested.

Yellamanda presents Mastan, highlighting his offenses and expressing shame towards him. Yellamanda explains Jagannadhareddy and Ameen's escape to the dissatisfied villagers who regret not capturing Jagannadhareddy. Kamala is tasked with reclaiming Jagannadhareddy's lands.

With Ramudu and Ramireddy expressing hope for the future and their determination to ward off adversaries, Ramudu suggests enlightenment and reclaiming their land. As they chant victory for the Sangham, symbolizing unity and resolve, they pledge to secure the farmlands of Seetha and Dadasaheb.

The play's ending song emphasizes stewardship of the earth and empowers women with a sense of patriotism. It questions land ownership and property rights, stressing the importance of collective duty and ethical stewardship in protecting the nation and its resources for future generations. The song inspires preservation and nurturing of the homeland through poignant language.

4.3. Feminist Themes in 'Maa Bhoomi':

In the play, female characters, Seetha and Kamala, are actively engaged in the movement aiming to overthrow

oppression. They challenge traditional gender roles, symbolizing endurance, strength, resilience, and determination. The first spirit of revolution is evident in the play's opening scene when Kamala and Seetha offer incense sticks at Bandagi's tomb, indicating their respect for revolutionary essence. Kamala demonstrates a spirited attitude towards revolution right from the outset, while Seetha undergoes a transformative journey as the play progresses. Initially, Seetha adheres to traditional gender norms, holding the belief that women depend on male protection for safety. However, she changes her perspective when Veerareddy recounts the violent protests of women against military oppression in Mallareddygudem. This shift in Seetha's perspective indicates women's capability to stand up against injustice.

The play also embeds issues of women's safety and resistance to oppression. For example, the play raises concerns about women's safety in scenes 1 and 5. In scene 1, Seetha and Kamala face sexual harassment while returning from Bandagi's tomb, highlighting the challenges women face under an oppressive government. Here, a lackey of Jagannadhareddy makes sexual comments towards Seetha and Kamala, but Ramireddy intervenes to protect them. Gender inequality and political oppression are evident in scene 5 when Jagannadhareddy's people confront Kamala and Seetha. In this scene, they physically abuse them, and Ameen even shoots Seetha with his gun. Jagannadhareddy exploits the physical vulnerability of women, knowing they lack the strength to defend themselves, which leads to their abuse. Despite this, Seetha and Kamala, without seeking help from men, courageously fight against Jagannadhareddy and his people. Thus, the play vividly depicts women's struggle against political oppression and inequality under Jagannadhareddy's governance.

In the era depicted in the play, women were restricted from participating in pursuits beyond domestic responsibilities. However, in defiance of societal conventions, the play recognizes women's voices in catalysing social transformation. Kamala takes an active role in the revolution, she demonstrates a willingness to fight against injustices, and she inspires others to join the Sangham. Her active contribution demonstrates women's role in engaging with social issues. Kamala also deeply engages with literature centred on revolutionary themes. This engagement with the literature highlights her ideological progression. Kamala's revolutionary path signifies women establishing their own identities. Along with her brother, Kamala influences Seetha to immerse more deeply in revolutionary literature. This indicates Kamala's deliberate effort

to expand Seetha's perspectives. This exemplifies women's solidarity and collaborative intellectual engagement. Assisted by Kamala and Veerareddy, Seetha undergoes a significant transformation towards embracing empowered roles for women in political and social contexts. This collaboration emphasizes the "collective effort" to empower women in navigating political and social terrain. Seetha's transformation towards revolution does not compromise her responsibilities in caring for her family. This balanced approach, which involves managing both familial responsibilities and revolutionary activities, suggests a challenge to conventional gender roles.

Kamala sings a variety of songs, including lullabies, patriotic tunes, and revolutionary anthems. Her passion for diverse songs and singing reflects Kamala's cultural connection and her efforts to uplift her community. Her engagement with these songs represents artistic expression, women's empowerment, identity, and the questioning of gender stereotypes. Kamala's dedication to singing revolutionary songs and teaching Seetha reflects her agency in expressing herself through music. This engagement not only inspires revolutionary ideas but also suggests women's empowerment through creative expression. Kamala doesn't just sing at home; she even sings at Bandagi's tomb. This challenges traditional gender roles that restrict women's participation in public discourse and counters stereotypes about women's roles, educating people to change their notion that women's contributions should be limited to domestic roles. This also highlights Kamala's capacity for intellectual and artistic pursuits. Overall, her engagement with these songs enriches the narrative and signifies women's agency in shaping political landscapes.

In Scene 3, Seetha and Kamala sing a song about historical women figures such as Jhansi Lakshmi Bai and Rani Rudrama Devi. This song directly portrays women as courageous, strong, and proficient leaders. It emphasizes the significant historical contributions of women, presents women as proactive participants in revolutionary movements of resistance, challenges societal perceptions of the capabilities of women, and advocates for gender equality. The participation of Kamala and Seetha in these revolutionary songs alongside men highlights the inclusive nature of the movement and positions women as equal partners in the revolution.

Scene 5 demonstrates the dynamics of power, resistance, and the roles of women in challenging oppression and violence. This scene is evident of women's collective actions, challenging patriarchal authority, resisting aggression, showing

solidarity, support, vulnerability, and resilience. In this scene, Kamala and Seetha establish a fight against the oppressive forces of Jagannadhareddy. Kamala devises a plan to use chili peppers and a knife for self-defense, showcasing her determination to protect herself and her family. Despite the risks involved, Seetha confronts Jagannadhareddy and Ameen, displaying her courage in defiance of male-dominated authority and her steadfast opposition to oppression. The collaboration of Kamala and Seetha in this scene illustrates the significance of female solidarity in confronting violence and oppression perpetuated by patriarchal societal structures.

At the end of this scene, Seetha, in a desperate state, entrusts Kamala with the responsibility of caring for her infant son. Here, Kamala's commitment to protect the baby exemplifies solidarity and mutual care among the women. This bond underscores the significance of women providing mutual support during challenging circumstances.

In the final scene, Kamala expresses her anger and desire for punishment towards Venkatravu for his misdeeds against poor people. The anger she demonstrates is a shared sentiment within the community towards those who collaborated with Jagannadhareddy's oppressive administration. She demands accountability from Venkatravu for his involvement in instigating Jagannadhareddy's actions against the villagers. Her efforts here, including advocacy for land reclamation, challenge traditional patriarchal norms that typically confine women to domestic roles. In this scene, women's sacrifice is honored. The scene centers around the commemoration of the sacrifices made by Seetha and Dadasaheb. Veerareddy and his comrades celebrate and commemorate the sacrifices made by Seetha and Dadasaheb in their pursuit of freedom and justice. It emphasizes their roles as courageous individuals who fought for justice, freedom, and social change. Others in the scene acknowledge the significant contribution of women against oppression, like Seetha, by celebrating the bravery and dedication of Seetha and Dadasaheb.

5. Conclusion:

The play "Maa Bhoomi" stands as a significant embodiment of the convergence of social activism, leftist politics, and cultural expression. The aim of this research paper is to analyse feminist themes within the play "Maa Bhoomi". From a feminist perspective, this research illuminates the nuanced roles and contributions of female characters within the socio-political environment portrayed in the play.

The discussion section introduces the characters and provides a synopsis of the play. Subsequently, the analysis

explores feminist themes, emphasizing the transformation of Seetha and Kamala as they transition from traditional gender roles to assertive defiance. Within the discussion of feminist themes, the paper emphasizes the significant role of education in empowering women, presenting the narrative of female empowerment within the context of the revolutionary movement. Additionally, the paper provides evidence of women's unity and identifies their indispensable role in the revolutionary movement for social change.

Furthermore, the paper observes the potential for women to challenge patriarchal norms and emphasizes the broader societal obstacles experienced by women, including issues of safety and political oppression. The research underscores the significance of female solidarity and reciprocal support in addressing social injustices.

In essence, "Maa Bhoomi" represents a significant cultural milestone in Telugu theatre, offering a perspective for exploring the diverse roles of women in shaping historical narratives and advocating for societal transformation. This feminist interpretation highlights the lasting significance of the play, stimulating ongoing dialogue on gender dynamics, resistance, and the pursuit of justice within the broader discourse of social and political change.

Glossary:

i Sangham refers to a revolutionary movement and coalition in rural Telangana during the mid-20th century, particularly associated with communist ideology and the efforts to challenge feudal socio-economic structures (Purushotham, 2021 pp. 187-193). The Sangham aimed to bring about significant social, economic, and political changes, including the abolition of caste-based discrimination and labour, cancellation of debts, redistribution of land, and empowerment of marginalized groups such as landless laborers and women. The sangham's activities extended to cultural and educational initiatives aimed at spreading revolutionary ideas and mobilizing the rural population towards a vision of social justice and equality.

ii Diwanamu" can refer to a court, administrative council, or royal chamber that played a crucial role in governance and administration. In the context of Maa Bhoomi, "Diwanamu" represents the court for governance, typically established within Jagannadhareddy's residence.

iii Gongali" indeed refers to a course woollen sheet used for warmth in Telangana. The term "gognallu" is used for the plural form of "gongali" in the Telugu language, commonly spoken in Telangana. These sheets are valued for their insulating properties and are popular during colder months to provide comfort and warmth.

References:

1) A.K. , P. (2002). Telugu lo Mandalika Katha Sahityam. Sahithi Circle. April 9, 2024, https://archive.org/details/00tguk-19/00tguk%20%2819%29
2) Christof-Füchsle, M., & Khan, R. (2024). Nodes of translation intellectual history between modern India and Germany. De Gruyter.
3) Lal, A. (2004). The oxford companion to indian theatre. Oxford Univ. Press.
4) Maddukuri, M. R. (1958). Andhra Sahithya Punarvikasam. Vishalandra Prachuranalayam, . April 14, 2024, https://archive.org/download/in.ernet.dli.2015.328615/2015.328615.Andhra-Sahitya.pdf
5) Purushotham, S. (2021). From Raj to republic: Sovereignty, violence, and democracy in India. Stanford University Press.
6) Rajkumar, A. (2019, August 17). The voice of oppressed. Hans India. Retrieved February 14, 2024, from https://www.thehansindia.com/featured/sunday-hans/the-voice-of-oppressed-555832?infinitescroll=1.
7) Ramaṇa, P. Vi. (1995). Telugu Sāṅghika Nāṭakaṃ pariṇāma vikāsaṃ: Vyāsa Saṅkalanaṃ. Veṅkaṭaramaṇa Bradars.
8) Rao, K. V. (1989). Communism in Andhra pradesh: Rise & Decline. Cauvery Publications.
9) Rao, P. R. (1990). Ādhunika Āndhrapradēś Caritra. Sterling Publishers.
10) Rādhākr̥ṣṇamūrti, M. (2002). Āndhra Nāṭaka RAṄGA Caritra. Sītāratnaṃ Granthamāla.
11) Satyanārāyaṇa, S., & Bhāskar, C. (1957). Mā bhūmi: Nāṭakaṃ. Viśālāndhra Pracuraṇālayaṃ.
12) Veṅkaṭēsvararāvu, B. (1998). Ādhunika nāṭakaraṅgaṃ ī Daśābdi Prayōgālu, 1980-90. Āndhra Sārasvata Samiti.

Guitar and its use in Indian Music

Pinak Nandi*, Dr. Samidha Vedabala**

Introduction

India, one of the countries of Asia, is very well known all over the world for its music and art. Every year the various forms of Indian music are performed in different countries of the world. Various types of instruments, both for accompaniment and as a solo instrument, are used to perform Indian music. Likemany musical genres of many countries, lndian music also uses Guitar for different purposes. In India there are many forms of music and Guitar is one of those rare instruments which carries so much of versatality. For the reason of this versatality Guitar is used in almost all forms of Indian music. In this very paper we shall attempt to discuss how Guitar is used in the different genres of Indian music and how it contributes towards the enrichment of the flavour of Indian music.

Review of Literature

It is seen that works have been done on Guitar from various perspectives. Guitar and its various types have inspired many scholars and researchers to contribute on various aspects of the same. Though many works have been done on Guitar, yet there remains scope enough for studying Guitar from a new perspective. One of the subjects in world music that receives the most research is the Guitar.

In order to suit the intricacies of Indian Classical Music, the Hawaiian Steel Guitar has been modified to Mohan Veena and Chaturangi. Modern Acoustic Guitar, Electric Guitar, Bass Guitar, amplified version of Modern Acoustic Guitar are very much in use in Indian music. At present Guitar occupies a very strong place in the field of Indian music but there is a dearth of scholarly work which tries to find out how Guitar is used or can be used in the field of Indian music.

Methodology

Both primary and secondary data will be used in the investigation. Variety

*Research Scholar, Department of Music, Sikkim University

**Assistant Professor, Department of Music, Sikkim University

of sources, including libraries, online databases and published literature including books, journal article and unpublished research projects will be used to gather secondary information. Primary data will be collected basically for understanding the use of Modern Acoustic Guitar in Indian Raga music.

Guitar and its origin

"Guitar is one of the most popular instruments in the world whose roots of origin can be traced back over 4000 years". It is a stringed musical instrument whose hollow or solid women's-body shaped body is connected with a long fretted neck. Being a string musical instrument Guitar is clearly a member of Chordophones family. Over the last few centuries Guitar has gone through many places and cultures which has resulted in the availability of many variants of the instrument like Nylon string Guitar, Modern Acoustic Guitar, Hawaiian Guitar, Slack Key Guitar, Metal Body Resonator Guitar, Bass Guitar etc. Various forms of music like Western Classical, Blues, Rock, Pop, Jazz, Flamenco etc. are usually played on Guitar. It is also used in various forms of Indian music like Ghazal, Rabindrasangeet, Filmi music etc. Nowadays Indian Raga music is also being played on Guitar, specially on Hawaiian Steel Guitar and to some extent on Modern Acoustic Guitar.

"Guitar has originated from the instrument known as the Vihuela". Vihuela a freted plucked stringed instrument, originated in the 15th century in Spain. Vihuela is a blending of two parent instruments- the Lute and the Gittern. "Vihuela has five strings and the tuning of the strings, starting from 1st string to 5th string, are E,B,G,D,A respectively". The standard tuning of all the six strings of a Guitar is E, B, G, D, A, E. Here it can be seen that the tuning of the first five strings of a Guitar is very much similar to a Vihuela. Lute is the ancestor of most modern string instruments. "It appeared first in Mesopotamian figurines, plakes and seals of about 2000 BC". Lute has a pear shaped body, fretted neck and head turned back at an angle of about 76° to the front plane of the instrument. In the 16th century, Gittern was also a popular instrument of Europe because of its comparative simplicity.Some instruments from Russia were also Guitar's distant cousins having triangular body with three strings. Amongst all these instruments which ultimately gave way to the blending of Guitar. The English model of Guitar looks somewhat like a Lute, with a pear shaped body, flat at the back and with slightly backward slunting peg box. In Spain Guitar remained popular as

a solo instrument being used in the musical scenario of Europe. In the beginning Guitar had to face many ups and downs and in the 18th century it flourished as it got the fancy of many European composers. Many Guitar maestros contributed greatly towards the establishment of Guitar in the concert halls. Guitar had to travel all the parts of Europe and then reached the Indian subcontinent where it's being used in so many genres of Indian music. The geography of Europe falling far too short for the Guitar's versatality.

Structure of the instrument

Though there are many variants of the instrument but basically there are two major parts of all kinds of Guitar - the Body and the Neck/ Fretboard. The size of the body of a Guitar depends on some factors like the type of Guitar, model of the Guitar etc. Different size gives different tonal quality. There is no fixed size of the body of a Guitar. The body of a Guitar remains attached with a long Fretboard or Neck. There is no standard length of the Neck also. The length of the Neck of a Guitar depends upon the brand and model of the Guitar. The various parts of a Guitar like Head, Tuning Pegs or Keys, Nut, Frets, Fretboard/Neck, Position Mark, Strings, Body, Sound Hole, Bridge, Tail Piece, Plectrum/Pic etc. have been illustrated in the following figure.

Spanish Guitar

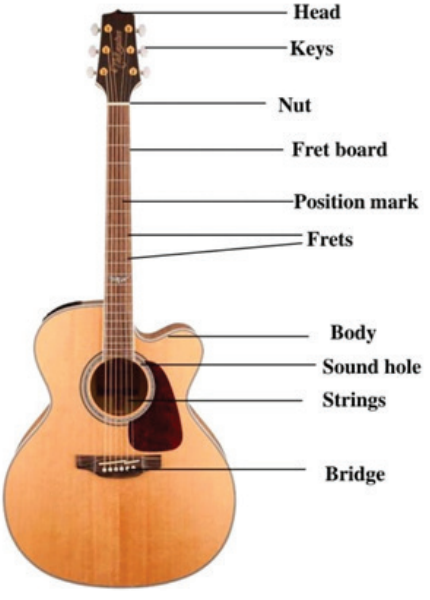

Head

The head of a Guitar is found at the end of the Fretboard. All the tuning keys are found in the Head of a Guitar. The head of the Guitar remains turned back a bit to the first plane of theinstrument.

Keys

As it has already been said that the Keys are found in the Head of the Guitar. The number of Keys are exactly the same as the number of strings present in the instrument. The Keys are used to raise and lower the pitch of the strings.

Nut

Starting from the bridge to a particular point the strings remain absolutely straight. The point from where the strings get deviated a little bit while

traveling towards the Keys is known as the Nut. The length of a string from the Bridge to the Nut is the effective length of that particular string while played it open. The Nut plays a major role in stability of the tuning of the strings.

Frets

A Fret is basically a piece of metal inserted on the Neck of a Guitar. The Neck of a Guitar is a piece of wood and on that wood a particular fine point determines a particular note. It is very hard to find out that point and play the note. The metallic pieces which are known as the Frets are inserted at those particular points which makes it far more easier for someone to play a particular note.

Neck/Fretboard

Fretboard is a long piece of wood where the Frets are inserted. The length of the neck of a Guitar is not fixed. It depends upon the brand and the model of the instrument. The width of the Fretboard is also not fixed. It depends upon the variety of the Guitar. As for example, the width of the neck of a Western Classical Guitar is much more to that of a Modern Acoustic Guitar.

Position Mark

Position Marks are the marks which we find on the Fretboard. The function of the Position Mark is that it helps to find out the Frets quickly. The Position Marks are usually found on the odd numbered Frets. It has to be mentioned that here "Fret" stands for the space in between two metallic Frets. The Position Marks are normally found on 3rd, 5th, 7th, 9th, 12th (not an odd numbered Fret), 15th and 17th Fret. Now if someone wants to play on 7th Fret he/she doesn't need to count right from the beginning. He/she just needs to figure out the 3rd Position Mark and he/she will be right there.

Strings

Guitar being a member of Chordophones family, it is very obvious that there will be Strings in it. Usually there are six strings in a Guitar. The tuning of a standard Guitar from 1st string to 6th string is E, B, G, D, A, E respectively. The thickness of all the strings are not same. The first string is the thinest string. Thickness gradually increases from the first string and as a result of that the 6th string is the thickest string. There is no standard thickness of the strings. It depends upon the brand of the string.

Body

It is the bigger portion of the instrument. For a Modern Acoustic Guitar or Western Classical Guitar it is the big hollow body which is responsible for the production of loud sound out of the instrument. The shape of the Body of a Guitar somewhat looks like a Pear. The shape and size of all the Guitars are not exactly same.

Sound Hole

In any kind of acoustic Guitar there remains a hole through which the sound of the instrument comes out. When a Guitar string is plucked, the vibration is transmitted throughout the top, side and back of the instrument, resonating through the air in the body, the sound finally comes out through the sound Hole. The Sound Hole general looks like a small letter 'f' or 'o'.

Bridge

It is the place where one end of a string remains attached. One end of the strings remain attached with the Tuning Keys while the other ends remain attached on the Bridge.

Plectrum

Plectrum, also known as Pick or Striker, is basically a triangular shaped piece of plastic with which the strings are struck. A right handed Guitar player holds the Pick with the right hand and a left handed Guitar player holds a Pick with the left hand. Thickness and size of Pick is not fixed. One can get striker of various thickness like 0.58 mm, 0.73 mm, 0.81 mm, 0.96 mm, 1.00 mm, 1.50 mm etc. Thickness is chosen depending upon the style of music and the desire of the player.

Guitar in Indian Music

Though there are many variants of Guitar but Hawaiian Guitar, Modern Acoustic Guitar and Bass Guitar are very prominently used in Indian music. “The Hawaiian Guitar is claimed to be invented in about 1885 by Joseph Kekuku in Hawaii Island” .“This instrument was first introduced in India by Tau Moe in the Late 1920s. Tau Moe Lived in Kolkata (Calcutta) from 1940-47 and performed regularly at Grand Hotel” . In India Tau Moe's student was Mr. Garney Nyss who became India's leading Slide Guitar artist. At that time, all the artists like Sujit Nath, Abhijit Nath, Kaji Aniruddha (son of Kaji Nazrul Islam), Sunil Ganguly (father of Kaushik Ganguly, a famous film maker from Bengal), Rajat Nandi, Botuk Nandi used to play the popular songs on this instrument. Some of them used to play Rabindrasangeet on this very instrument. Kaji Aniruddha took the help of Hawaiian Guitar to make notations of many Nazrul Geeti. At present various Indian version of the instrument are available which are used to play the Raga music along with the other forms of music.

In the modern day scenario of Indian music Modern Acoustic Guitar occupies an important place specially in Ghazals, Rabindrasangeet, filmi music, non-filmi music, Regional music etc. Modern Acoustic Guitar generally used to play the various strumming patterns with chord progressions of various scales or modes. “In Rabindrasangeet Guitar is used as one of the accompanying

instruments" .There are some Rabindrasangeet which are based on western tunes. With such songs the flavour of Guitar blends well. Even the Rabindrasangeet which are not influenced from western tunes go well with Modern Acoustic Guitar. The famous Rabindrasangeet artists like Srikanta Acharya, Jayati Chakraborty, Sraboni Sen, Indrani Sen, Iman Chakraborty, Manomoy Bhattacharjee always use Modern Acoustic Guitar as one of the accompanying instruments when they sing Rabindrasangeet.

At present Guitar is very much used in Ghazals also. "It is believed that before Ghulam Ali and Jagjit Singh Guitar was not very prominently used in Ghazals" . In many songs of various music albums of Jagjit Singh like Sajda (with Lata Mangeshkar), Close To My Heart etc. Guitar has played very vital role. "The song Ghum Ka Khazanafrom the album Sajda can't be imagined without the Guitar pluckings in the beginning of the song and the plucking goes on in the background all throughout the song" . There are many such songs of Jagjit Singh like "Mai Na Hindu Na Musalman", "Tum Itna Jo Muskura Rahe Ho", "Apna Ghum Leke" etc. where Guitar has helped in the upliftment of the song. "Arshad Ahmed used to play with Jagjit Singh in the concerts and in studio recordings" ."Ghazal is basically a specific format of poetry" A Ghazal may be based on a particular Raga. But as it is not purely classical music, so there is no hard and fast rule as far as application of notes is concerned. As a result of that a Ghazal artist can use all the twelve notes to meet the desired expression of the poetry of the Ghazal. So, while accompanying with Ghazals the Guitar player must know the Chord for the note which is from the outside of the main scale of the Ghazal. "Arshad Ahmed, who used to play with Jagjit Singh, once said in a conversation that to accompany with Ghazals the Guitar player must have the basic idea of the Ragas (Chalan), otherwise the notes or the way of playing the notes may destroy the structure of the Raga (Raga-Rup) the particular Ghazal is based upon" . Guitar players like "Chintoo Singh Wasir (who had also played with the likes of R. D. Burman)" , "Sanjay Das (popularly known as Bapi Das)" also used to play with Jagjit Singh. Sanjay Das also plays with Hariharan who is one of the popular names in the field of Ghazal in the present time both outside and within the country. The singing style (Gayaki) of Hariharan is very complex as far as the use of notes is concerned with a hint of Khayal Ang (https://youtu.be/Q4Upit0R-uc). Only the major-minor scales and chords will not do while playing with Hariharan. He/she has to know the Chord Progressions of very very complex musical scales.

Guitar also occupies an important place in Hindi Filmi and non-filmi

music. Hindi Film industry, popularly known as the Bollywood, produces hundreds of songs in a year of different genres. In most of the songs Guitar is very much used for various kinds of strumming patterns along with the pitch of the song. “One of the reasons of Guitar's popularity is that it is one of those rare instruments which can produce chords of almost all kinds, all kinds of harmony, melody, percussive rhythms etc.” . Guitar is being used differently in different songs according to the need of the song. In some songs it is used only for strummings. In some songs it is used for some melody portions. Sometimes it has been used for the fillers only. In many songs Guitar has been used for both strumming and melody. Almost all the music directors of Bollywood of present and past are found to have used the Guitar for their production. Music directors of Bollywood like S.D. Burman, R.D. Burman, Salil Chowdhury, Laxmikant-Pyarelal, Bappi Lahiri, Kalyanji-Anandji, Jatin-Lalit, Nadeem-Shravan, Pritam Chakraborty, Ram Sampath, A.R. Rehman, Shiv-Hari (Shiv Kumar Sharma and Hari Prasad Chaurasia, very big names in the field of Indian Raga music), Rajesh Roshan, Anu Malik, Vishal-Shekhar, Shankar-Jaikishan etc. used Guitar in their productions. The Guitar tune of the film “Karz” or Guitar pieces of the song “Neele Neele Ambar Par” is very very popular in the field of Guitar players. “The Karz theme tume was played by Gorakh Sharma on electric Guitar” .“The Guitar pieces of the song Neele Neele Ambar Par was played by Sunil Kaushik” . Gorakh Sharma, Ramesh Iyer, Sunil Kaushik, Bhupinder Singh, Bhanu Gupta, Soumitra Chatterjee, Dilip Naik, Arvind Haldipur are some of the names who play or played for Bollywood music. Some of the popular Guitar based Hindi Filmi songs heve been given below:

1) “Neele Neele Ambar Par [Film: Kalakar, (1983), Music Director: Kalyanji-Anandji]”
2) “Dum Maro Dum [Film: Hare Rama Hare Krishna, (1971), Music Director: R.D. Burman]”
3) “Chura Liya Hai Tumne Jo Dilko [Film: Hum Kisi Se Kam Nahin, (1977), Music Director: R.D. Burman]”
4) “Karz Theme [Film: Karz, (1980), Music Director: Laxmikant-Pyarelal]”
5) “Sanson Ki Zaroorat Hai Jaise [Film: Ashiqui, (1990), Music Director: Nadeem-Shravan]”

Raga music and Guitar

Raga music occupies an important place in the field of Indian music. The identity of Indian culture depends a lot on the Raga music both within and outside the country. A Raga is not mere a Scale, Mode or Composition. Many Ragas can be created out of a single Scale and many compositions

can be created out of single Raga. A Raga is basically an accumulation of some unique characteristics which makes it different from the rest of the Ragas. A particular Raga has some special characteristics. Here the word "Characteristics" stands for the use of notes, the ascending and descending structure of the notes, use of dominant note (Vadi swara), the note with which a Raga stands for sometime (Nyas Swara), the arrangement of notes, way of movement of the notes, application of ornamentations (Meend, Kan), use of mictrotones (Ati komal, Ati Tivra) etc. A Raga is nothing but the sum total of some hard and fast rules and regulations which creates an emotional impact in the minds of the listeners and the performer.

Raga has been defined by many Indian and Western musicians. “According to Alein Denielon, the essential feature of a Raga is its power of evoking an emotion that takes of the listeners like a spell” . According to Yahudi Menuhin “A Raga is an exhalted personal expression of union with the infinite”

A Raga can be performed both through vocals andinstruments. Instruments like Flute, Shehnai, Sitar, Sarangi, Esraj, Sarod, Veena, Santoor, Violin etc. are generally used forsolo instrumental performances of the Ragas. Nowadays Guitar (both Hawaiian Guitar and Modern Acoustic Guitar) is also very much seen in the field of Indian Raga Music. “It was Brij Bhusan Kabra, A disciple of Sarod maestro Ali Akbar Khan, who did first recording of Hawaiian Guitar as an Indian Raga Music instrument” . Brij Bhusan Kabra in his early 20s, introduced Guitar as an Indian Classical instrument and raised it to the concert level and recording purposes. Thus Kabra became the pioneer of Indian Classical Guitar. Originally there were 6 strings in a Hawaiian Guitar. But Kabra removed two regular strings and started to play with 3 or 4 strings. In place of the two already removed strings Kabra added two Chikati strings. The first string of Kabra's instrument was in Sa of D scale, the second string was in Pa of D scale, third and fourth string were in Sa and Pa respectively of the D scale. He used to play the Chikari strings with the thumb and the main strings with the index and middle fingers. No other Indian classical Guitarist was known to have done at that time.

At present Debashish Bhattacharya, a disciple of Brij Bhushan Kabra and a Grammy nominated musician, is one of the guitarists who plays North Indian Classical music on Guitar. He did many modifications on the slide Guitar. “Debashish Bhattacharya in a conversation with Jhon Schaefer at the 2017 New York Guitar Festival, said that at the age of 9 his father applied for a national scholarship for Indian Instrumental Raga music for him. Amongst 80,000 to 100,000

competitors he stood first, but the scholarship was not given to him because he was playing a western 6 string Hawaiian Guitar. He played Raga Bhairav in that. Bhattacharya said, that incident made him more determined to evolve the Hawaiian Guitar as anIndian Classical Guitar" . But unlike his Guru, he strongly believed in having six strings in his Guitar to get the complete range of the instrument. This allowed him to increase the possibilities to explore his imaginations. With the help of his wide variety of music education he evolved a Tantrakari Baaj. To achieve this he added many features. He introduced Tarab strings (resonating strings) and front Chikati strings. Prior to this, Debashish's Guru, Brij Bhusan Kabra had introduced the Chikari strings. Kabra used to play the Chikari strings with the Thumb. His style was followed by all Indian Classical guitarists except Debashish. After many experiments on adding and removing the main strings finally in the year 1980 Bhattacharya emerged with a concrete concept of the instrument. He added side Tarabs, front Chikari, six main strings and three supporting strings. The distance between the front Chikari and the main strings is now one and quarter inch. At first it was one and half inch. Unlike a Sitar, the resonating strings in Bhattachary's Classical Guitar is beside the bass string, not underneath the main strings. In this Guitar there are 23 or 24 strings in total. The strings of the Guitar are plucked with the thumb, index and middle finger of the right hand. To pluck the strings the player wears metal ring or pick on his/her index and ring finger and a thumb pick made of celluloid on his/her thumb. The strings of the instrument are pressed with a still bar held with the thumb, index and middle finger of the left hand which is quite conventional for the instrument. Bhattacharya also modified the finger style to suit the Indian classical music. Bhattacharya's version of Hawaiian Guitar is known as the Chaturangi. Viswa Mohan Bhatt, also known as V.M. Bhatt, born on 27th July, 1950, also modified Hawaiian Guitar to make it Indian Classical music friendly. His version of Hawaiian Guitar is known as Mohan Veena. V. M. Bhatt is a Grammy award winning instrumentalist who plays an instrument which consists 20 strings. Three to four melody strings, four to five drone strings and twelve sympathetic strings. Bhatt uses a gourd in his instrument which is screwed into the back of the neck for improved sound sustain and resonance. Just like a Hawaiian Guitar, Mohan Veena is also taken on the lap by the player as all the Hawaiian Guitar players do. The sympathetic strings of the instrument run underneath the melody and drone strings. The instrument has mahgony back and sides, a mahgony neck

and a fretless rosewood fingerboard. Hawaiian Guitar has been modified by some other artists also to make it Indian Raga Music friendly. The name of some of the variants are Satwik Veena created by Salil Bhatt (son of V. M. Bhatt), Hamsa Veena created by Barun Kumar Paul, Shankar Veena created by Kamala Shankar.

In the present day scenario modern acoustic Guitar is also very much in use in the field of Indian Raga Music. Musical forms like western classical, Rock, Blues, Jazz etc. are usually played on such instrument. In modern acoustic Guitar there are 6 strings. The standard tuning of such instrument happens to be E (1st string), B (2nd string), G (3rd string), D (4th string), A (5th string), E (6th string). As the 3rd string of the instrument is G, so the 7th fret of third string will automatically be D. Now if the 6th string is tuned down to D, the sequence of 6th, 5th and 4th string becomes D, A and D respectively. So, if we take 3rd string, 7th fret D as Sa and play all the melodies on 3rd, 2nd and 1st string, the 6th, 5th and 4th strings, when played open will sound as Sa, Pa, Sa as A becomes Pa. So in this case the open 6th, 5th and 4th will play the role of drone strings. The position of all the 12 notes in a Saptak on 3rd, 2nd and 1st string when D is taken as Sa are as follows:

NOTES	Sa	Re	Re	Ga	Ga	Ma	Má	Pa	Dha	Dha	Ni	Ni	Sâ
STRINGS	3	3	3	3	2	2	2	2	2	1	1	1	1
FRET	7	8	9	10	7	8	9	10	11	7	8	9	10

It has to be mentioned here that the above mentioned positions are standardized positions only. The same note can be played in some other position to meet the demand and need of the melody/Raga. If all the melodies are played on 1st, 2nd and 3rd strings a player can get a two and half octave out of these three strings. But if all the six strings are used for the melodies with 6th string as D, a player can get a full range of four octaves taking D note as Sa. In western music the players play across the strings of a Guitar and they jump from one note to another. Unlike western music, in Indian music there is always a roundness when we move from one note to the other. We in Indian music use the complete space which is there in between the notes and for that reason we distribute our complete octave into 22 mictrotones (Shrutis). The Indian Raga Music is characterized by so much of ornamentations (Meend, Gamaka, Kan). It is not possible it bring out these ornamentations by playing across the strings of a Guitar. To achieve the ornamentations a player needs to play down the string of a Guitar which is quite unconventional for the instrument. To improve the Gamaka, Meend, Kan etc. a player needs to practice various scales (Thaat) and various patterns (Paltas) in various scales on a single string. Moreover, a player does both down and up strokes with the Plectrum

that a he/she usually holds with the right hand. Because, if a player plays only with down strokes, after every down stroke he/she will need an extra amount of time to bring back the hand up for the next down stroke. But if someone plays with both down and up strokes, after a down stroke the player can have another stroke while taking the hand up for the next down stroke. This technique will help the player to have one extra note all the time in comparison to the player who plays with down strokes only and this will certainly help to increase the speed of playing. There are some young artists in other parts of India like Shahnawaz Ahmad Khan, Kapil Shrivastava, Prasanna who play Indian Raga Music on modern acoustic Guitar. Prasanna uses electric Guitar and plays Karnatik Raga Music.

Limitations of modern acoustic Guitar as Indian Raga Music instrument

There are some limitations of modern acoustic Guitar as an Indian Raga Music instrument-

1) A standard modern acoustic Guitar usually lacks the sustainability compared to the traditional Raga Music instruments. As a result of this, it becomes very difficult to execute the Gayaki Ang on it because, to execute Gayaki Ang on an instrument there has to be so much of sustainance in the instrument. A player needs to give so much of effort to bring the Gayaki Ang out of modern acoustic Guitar.
2) In some of the Ragas of North Indian Classical music Ati Komal or Ati Tivra swaras are used. As for example, in Raga Todi, as we all know Komal Gandhar is used. Guitar being a fixed freted instrument, one can get the twelve notes of a Saptak only and it is very hard to get the microtonal notes. It has to be mentioned here that one can get a mictrotone by pulling the strings of a Guitar but these are those mictrotones which are in between the notes that are at a distance of semitone. Because in Guitar we can get the note which is at the distance of semitone or hardly at a distance of tone by pulling the strings. It becomes far more difficult to attain mictrotone which is beyond the distance of a tone. Here one more thing needs to be mentioned that Sitar is also a freted instrument but one can get all the mictrotones possible out of a Sitar. This is because one can get a full octave in a single fret by pulling the string. So if someone needs Komal Ga immediately after Sa he/she can easily get that on Sitar by pulling the string right from Sa, but in Guitar it will be very

hard to achieve Komal Gandhar immediately after Sa as it is far beyond the distance of a tone.

3) The basic requirement that is necessary for any instrument for Indian classical music is that it must have the ability to cover all the 22 Shrutis without a break. As it has already been said that one can hardly achieve a note which is at a distance of a tone by pulling the string of a Guitar. So in Guitar it is very difficult to move from one note to the other through a Meend which are very much far from each other, as for example Sa and Dha. So in Guitar it is impossible to achieve Dha with a Meend from Sa. But one can get Komal Re through a Meend from Sa or Sudh Re through a Meend from Sa as they are very much near rom each other.

Guitar is also used in South Indian or Carnatic Raga music. But in South Indian Raga music Electric Guitar is used. Presently Prasanna is one of the very very rare Guitarists who plays Carnatic Raga music on Electric Guitar in the concert level. But he also plays various kinds of western staff, collaborates with many western artists. Prasanna has played in a recording of "Coke Studio with the likes of A. R. Rehman and Ghulam Mustafa Khan" . In that particular project Mohini Dey, who is one of the leading Bass Guitar players of India, played the Bass Guitar. Prasanna is teaching many students to play Carnatic Raga music on Electric Guitar. Vishnu R. who is also a Guitar player from South India plays Carnatic Raga on Navatar which is his version of the Modern Acoustic Guitar. In this instrument there are nine strings. Both frted and non-freted portions are there in the instrument. "The non-freted portion has been added with the traditional freted portion of a Modern Acoustic Guitar where he executes the Gamakas and the Meends" .

Conclusion

Guitar being very popular and one of the mostly used instruments in the world, is also very popular in India. The main reason of its popularity is probably its ability to produce Melody, Chords, Harmony and Rhythmic patterns of various kinds. This is the reason it is used almost all forms of music in the world. In India Modern Acoustic Guitar, amplified version of Modern Acoustic Guitar and Electric Guitar are basically used as an accompanying instrument. In the various Indian musical genres like Ghazal, Film music, Non-Film music, Rabindrasangeet, Bhajan etc. Guitar is mainly used for the rhythmic strummings in the background of the songs. It has to be mentioned here that in many songs Guitar has been very beautifully used for the Prelude, Interlude and Fillers. The use of Modern Acoustic Guitar as a fully

solo instrument is seen less in India. Just like Modern Acoustic Guitar, Bass Guitar is also used as one of the accompanying instruments in various forms of Indian music. In foreign countries the solo use of Bass Guitar is seen, but in India it is almost nil. But the various Indian versions of Hawaiian Guitar is very much in use as a solo instrument in India. This is because it has been established as a North Indian Raga music instrument upto the concert level. The versatality of Guitar has reached almost all the corners of Indian music. There will be no surprise if the use of Guitar enriches Indian music even more in the near and far future.

References

Books

Ballav, D. (1978). Guitar Shekhar Niyam. Dipen Ballav

Bay, M. (1971). Classic Guitar Method 2. MEL BAY PUBLICATION PACIFIC, MO 63069

Bennet, A. and Dawe, K. (2001). Guitar Cultures. Berg

Bhagawati, M. D. (2004). Uchchanga Sangit Tatwa-i. Manju Devi Bhagawati

Bhagawati, M. D. (2005). Uchchanga Sangit Tatwa-ii. Manju Devi Bhagawati

Borthakur, N. (2006). Sitar Vigyan. S.K.B. Publication

Chaudhuri, D. (2014). Sitar and its Music. Avi publishers

Dutta, D. (2015). Sangit Tatwa. Bharati Prakashini

Ghosh, A. (2012). The origin and development of the Sarod, a classical musical instrument. Kalpaz publication

Jackson, J. (2010). Advanced Guitar Chords. Nick Wells

Latarski, D. (1993). Practical Theory for Guitar. CPP/Belwin Inc.

Lorene, R. (1996). The Hawaiian Steel Guitar and its Great Hawaiian Musicians. Centerstream Publishing

Montarese, M. Guitar for Beginners. Goodwill Publishing House

Prajnanand, S. (1996). Raga O Rupa-i. Swami Satyakamanand

Prajnanand, S. (1999). Raga O Rupa-ii. Swami Asheshanand

Raja, D. (2005). Hindustani Music. D.K. Print World Ltd.

Tossing, T. D. (2010). The Science of String Instruments. Springer Science + Business Media, LLC, 233 Spring Street, New York, NY 10013, USA

Wade, G. (2001). A Concise History of Classical Guitar. Mel Bay Publication

Articles

Perov, P., Johnson, W. and Mello, N. P. (2016). The Physics of Guitar string Vibrations. American journal of physics 84 (1), 38-43, 2016

Rockwell, T. M. (2007). Hawaiian and Hawaiian Guitar records, 1891-1960. Kula, Hawaii

Tammen, H. (2007). Endangered Guitar. Proceedings of 7th international conference on new interfaces for musical expression, 482-482, 2007

Traube, C. and Smith, J.O. (2000). Estimating the plucking point on a Guitar string. Proc. Con. on Digital Audio Effects (DAFX'00), Verona, Italy, 152-158,

Troutman, J.W. (2016). Kika Kila : How the Hawaiian Steel Guitar changed the sound of modern music.Island Studies Journal, Vol. 12, No. 1, pp. 269-270, 2000

Thesis

Alves, J. R. (2015). The History of Guitar. Marshall University

Fludd, A. (2016). The Electric Strings of South India: A Case Study of Electric Guitar in South Indian Classical Music. ProQuest LLC (2016)

Facebook links

https://l.facebook.com/l.php?u=https%3A%2F%2Fwww.instagram.com%2Freel%2FCoQ4swiB-Ms%2F&h=AT1Z_TpkdO-nprgZ097VtfN1sTbSpAlV9hb3x9hwunYT6stzzJE_SQ9WLARAFz-Gt_ZM0EAkZUYnziP8FP1a41mRp1a9sgqbzV3Zi69U0VNuMHghyxWqFcR8zrON13dalOzGX1qQHJ_Lscp3gyKK&s=1&fs=e&s=cl

Education and Empowerment of Women in the Valley Districts of Manipur

Dr. Pukhrambam Chitra Devi

Abstract

Education is the process that liberates mind. Women's literacy is essential for economic viability and independence. Acquisition of knowledge is one of the pre-requisites for human development. Today, all development agencies agreed on the importance of educating women in order to promote and maintain family, education, health, nutrition and general well being. The paper focuses on the education and empowerment of women in the valley districts of Manipur. Normative survey method has been adopted for the present study. The sample comprises of 1200 women i.e.,600 educate women and 600 illiterate women that have been selected from the valley districts of Manipur. A standardized questionnaire on Modernization Scale (MS-STL) developed by Raghavendra S.Singh, Amar Nath Tripathi and Ramjee Lal has been used as the tool for the collection of data. For finding out the significant differences amongst the educated women and illiterate women towards their social attitudes by using MS-STL, t-test has been used and thus the social attitudes of educated women and illiterate women have been studied. In the present day context, education is perhaps the most important means for individuals to improve personal enforcements, build capability levels, overcome concurrent and in the process, enlarging their available set of opportunities and choices for a sustained improvement in the well being. Education of women is a step in direction of ensuring gender equity, it empowers women to make decisions about themselves, their families and communities.

Introduction:

Education plays an active role in elevating women's position and promoting their rights in the society. If the ultimate aim of education is to create better place to live in, educated women can play a significant role in transforming the society for the better. The real empowerment of women in the social, economic and political matters can be achieved only when women who constitute half of the population are educated. Educational backwardness is the main

Assistant Professor (HOD), Department of Education, G. P. Women's, College, Imphal, Dhanamanjuri University, Imphal-795004, Manipur (INDIA, Email: chitradevipukhrambam@gmail.com, Mobile: 9774527814

factor for the social degradation of women. If the level of intellectual development of people is an indicator of social progress, education for women is very important for her to develop knowledge, skill, awareness, scientific outlook, positive self-image, individuality, self-respect and dignity which are necessary ingredients for a women to empower herself. With the spread of education among women, exploitation and oppression of women will be considerably reduced. This will in turn lead to acceptance of social values that encourage economic independence and social justice for women paying the way for mutual respect and recognition of sexes. Literacy of women is an important key to improving health, nutrition and education in the family, and to empowering women to participate in decision making in society. It is women who have to take up responsibility of empowering themselves. Unless they themselves become conscious of their oppression, show initiative and siege the opportunities, it would not be possible to change the status of women in society. In Manipur, women have a distinct place in the socio-cultural, religious and economic life of the society. However, in spite of this, the door of education was not open to them in the past. In Pre-British Manipur, except a few women of higher strata of society, most of them did not get facilities of education. The traditional society assigned women only domestic duties like cooking, weaving and spinning, nursing the family members and looking after their children. The women worked in the fields with their men folks, doing lighter jobs like transplantation of seedling, harvesting of paddy, etc. Also, the guardians felt no necessity of sending their daughters to schools. Besides, the girls were too useful in the household activities, and to that extent, it was considered a great loss for the family to send their daughters to schools. In some aristocratic families, parents used to engage teachers to teach their daughters in the art of dance and music along with the knowledge of 3 R's, etiquette, administration, etc. Education of women was not of formal type in the beginning. In the wake of independence, new hopes and aspirations emerged and new avenues were opened declaring equality of both sexes. Regarding the educational status of women, they have now received education to a greater extent than that of the education they receive in ancient times. Empowering of women presupposes a drastic change in our perception and expectation of women in our society. Women from time immemorial have been saddled with many family responsibilities and are traditionally assigned many roles including custody of children, maintenance of the home, feeding of the family and preservation of

family health. Consequent upon those traditional role expectations, they become a significant factor in socio-economic and political development of a country. Apart from roles earlier enumerated for the typical women, the modern day women, who is expected to be a wife, then a mother is, like her traditional counterpart, expected to play the role of a dutiful home keeper. In playing this role, she is expected ton be capable of handing challenges of modern world of automation and computer. Another challenge before her is that imposed on her as the first and the last teacher of the child before and after school. This is especially pertinent because, she is expected to prepare the child to be able to cope with the challenges of the contemporary world. The simple implication of this reality is that the typical contemporary women is not likely to play those roles efficiently unless she is fortified with adequate and functional education. Educated women should take the personal responsibility to be good citizens and organize efforts to alert and to educate the others, but low levels of information are really that must be taken into account, women will have to do things differently so that they can improve.

Statement of the Problem:

The present study has been entitled as- "Education and Empowerment of Women in the Valley Districts of Manipur".

Objectives of the Study:

The objectives of the study are as follows-

1. To examine the social status of educated and illiterate women of the valley districts of Manipur.
2. To compare the social status of educated and illiterate women amongst the valley districts of Manipur.

Hypotheses of the Study:

The hypotheses of the study are as follows-

1. There exists varied social status of educated and illiterate women of the valley districts of Manipur.
2. There exists significant differences in the social status of educated and illiterate women amongst the valley districts of Manipur

Plan and Procedure:

To study the education and empowerment of women in the valley districts of Manipur, normative survey method has been adopted. The sample of the study comprised of 1200 women from the 4 (four)valley districts of Manipur, viz. Imphal East, Imphal West, Bishnupur and Thoubal Districts, by selecting 600 educated women and 600 illiterate women. In the present study, educated women

have been confined to those women who have passed matriculation level and above, who have been working under private undertakings. Illiterate women in the study have been confined to those under matriculates.

Table showing the Significant Levels of Educated Women and Illiterate Women of the 4 (four) Valley Districts, Manipur

Sl. No.	Districts	M_1	M_2	t-value	Significant Levels
1	Imphal East	1.00	0.66	3.4	**
2	Imphal West	1.14	0.72	3.8	**
3	Bishnupur	0.97	0,64	3.3	**
4	Thoubal	0.94	0.65	2.9	**

M_1= Mean Score of Social Attitudes of Educated Women

M_2= Mean Score of Social Attitudes of Illiterate Women

df= 298

ttab= 1.96 at 0.05; *= significant at 0.05 level

ttab= 2.58 at 0.01; **= significant at 0.01 level

Analysis and Interpretation:

The mean score of the social attitudes of educated women towards modernization levels of the 4 (four) valley districts of Manipur have been found as 0.01; 1.14; 0.97 and 0.9 respectively. On the other hand, the mean scores of illiterate women have been found as 0.66; 0.72; 0.64 and 0.65 respectively. Then, the different calculated t-values were found as3.4; 3.8; 3.3 and 2.9 respectively and all these t-values have also found significant at both 0.05 and 0.01 levels of significance. From the above mentioned, it can be said that the difference between the social attitudes of educated women and illiterate women towards modernization level have been found significant differences at both 0.05 and 0.01 levels. Therefore, it can be concluded that the modernization levels have been found different between the educated women and illiterate women in the confined valley districts of Manipur. Thus, it can be accepted that reflection of education has significantly related in the development of modernization levels amongst the women. Therefore, the hypothesis of the study, "There exists significant differences on the social attitudes of educated women and illiterate women of the 4 (four) Valley Districts of Manipur" related with the objective, "To compare the social attitudes of educated women and illiterate women of the 4 (four) Valley Districts of Manipur" has been highly accepted.

Tool Used:

The selection of suitable tools for a particular study is of great importance for a successful research and it depends upon certain factors such as the objectives of the study, the amount of time at the disposal of the investigator, availability of suitable tests to find out the required results, techniques of scoring and the like. For the present study, the investigator used a standardized questionnaire for the collection of data, i.e. Modernization

Scale (MS-STL) developed by Raghavendra S. Singh, Amar Nath Tripathi and Ramjee Lal.

Procedure for Collection of Data:

Modernization Scale (MS-STL) has been administered on the selected sample as per plan of the study in the valley districts of Manipur. The sample on which the MS-STL administered, consisted of the educated women and illiterate women of the valley districts of Manipur. While administering the questionnaires to the educated women, the investigator directed to read the instructions carefully and then answer each and every statement properly. Each respondent took 20-25 minutes to fill up the questionnaires. Also, many respondents have been told by the investigator to handle the questionnaires and retrieved after a week. For administering the same questionnaires to the illiterate women, the investigator adopted the interview schedule in order to acquire the necessary data.

Statistical Technique Used:

For finding out the significant differences amongst the educated women and illiterate women towards their social attitudes by using MS-STL scale, t-test has been used.

Delimitations of the Study:

The study has delimited in the following areas:

1. The present study has been confined only to the educated women and illiterate women in the 4 (four) valley districts of Manipur, viz, Imphal East, Imphal West, Bishnupur and Thoubal Districts.
2. The sample of the study confined to 1200 women.
3. Educated women of the present study confined those women who have been working under private undertakings.
4. Illiterate women in the study confined to those under-matriculates.

Findings of the study:

The following are the main findings derived from the study-

1. Educated women found to have higher modernization levels than the illiterate women in Imphal East, Imphal West, Bishnupur and Thoubal districts respectively.
2. Imphal East district found to have the calculated t-value of 3.4
3. Imphal West district found to have the calculated t-value of 3.8
4. Bishnupur district found to have the calculated t-value of 3.3
5. Thoubal district found to have the calculated t-value of 2.9
6. Significant differences have been found towards the social attitudes of educated women and illiterate women amongst

these valley districts of Manipur.

7. Reflection of education has significantly related in the empowerment of women status.

Suggestions for Further Studies:

The following suggestions can be undertaken in relation to education and empowerment of women social status:

1. Women's education should be encouraged from all sections of the society for the improvement in the status of women.
2. Government should formulate and implement certain policies and programmes relating to women's education.
3. Government should eliminate all forms of gender discrimination to enable women to enjoy their rights and fundamental freedom on certain aspects such as political, economic, social, civic and cultural aspects, etc.
4. Adult education programmes should be organized for women.
5. Free workshops and training classes relating to women should be conducted so as to make women acquainted with the knowledge of various skills which will help for themselves.

Significance of the Study:

Women's education is a major key for effective implementation of women empowerment for improving a women's status. Women are the agents of change for a society and education being major weapon for this change. Involvement of them in public life is an element that transforms their status, as well as family relationships, the socialization of children and the organization and division of work. Absence of education amongst women is largely responsible for lowering their status but also hindered the development of the society. Thus, education is a human right and essential tool for achieving the goals of equality, development and peace. Education, itself is the most significant instrument for changing women's subjugated position in the society. Education will help women in believing every human being is born to fulfill certain duties. More women are now getting education and work outside the home for income so much that in developing countries they have almost reached the level attained by their male counterpart. Education will leverage women's skill and knowledge and make effective use of the latest information technology tools to find better ways to serve their country and the people and orient them as far as the problems of the people and especially women are concerned by adopting a more open approach. Today, all development agencies agreed on the importance of educating women in order to promote and maintain family, education, health, nutrition and general well being.

Conclusion:

Education for women should always be directed towards their holistic development. It enhances a women's sense of her own health and family planning decisions. Increased women education leads to greater empowerment of women. Women's education should be given due importance in the present society. It not only open up vast avenues and opportunities for growth but affects families and future generations as well. It plays an important role in bringing about awareness in women's rights. Thus, women will become into a responsible and independent individual only through the knowledge of education.

References

Aggarwal, S.P. (1992), Women's Education in India 1995-98, Present status, Perspective Plan, Statisticalm Indicators, Mittal Concept Publishing Company A/15-16, Commercial Block, Mohsan Gard, New Delhi-110059

Chauhan, S. (2012), Higher Education Impact on Women Position, D.P.S. Publishing House, 4598/12-B, Gola Cottage, Ansari Road, Daryaganj, New delhi-110002

Dalvi, M.C. (2010), Women Education, Educational Publishers and Distributors 291, Bank Enclave, Laxmi Nagar, Delhi-110092.

Devi, J. (1998), Education in Manipur, Rai Pravina Brother, Imphal-795001

Devi, M.S. (2001), Development of Education in Manipur, Rajesh Publication, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi.

Ghosh, B., et al, (2012), Empowering Women Through Education, Kanal Books, Publisher 4596/IA, First Floor, 11, Daryaganj, New Delhi-110002.

Kalra, A. (2013), Women's Education in Modern India, ABD Publishers, Jaipur-302018, Rajasthan, New Delhi-110002.

Korishetti (2003), Female Education, Cosmo Publications Div. Of Genesis Publishing Pvt. Ltd. 24-B, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi-110092, India.

Ojha, C. (2010), Women Education and Empowerment, Regal Publications F-159, Rajouri Garden, New Delhi-110027.

Upadhyay, H.C. (1991), Status of Women in India, Vol.-1, Anmol Publications Pvt. Ltd., New Delhi-110002.

Intersectionality and Gender : Understanding the Double Burden for Dalit Women

Renu Singh*, Dr. Shivani Vashist**

Abstract

This research seeks to examine the intersections of gender and caste in relation to the many types of harassment that Dalit women in India experience. The connection between gender as well as caste amplifies the abuse of Dalit women, who face a "double weight" of marginalisation while making up a major share of India's population. The current research aims to understand the unique types of violence that Dalit women undergo, as well as the special socio-economic or political limits they confront, via the application of intersectional analysis.This study explores the manner in which Indian social norms and institutional practices sustain the caste system's inherent prejudice against Dalit women. It employs a mix of literature research and qualitative case study analysis to accomplish this. In addition, it evaluates the efficacy of various institutional frameworks and legal safeguards in reducing various forms of intersectional oppression. The study shows that Dalit women have their own set of advantages and disadvantages, and it stresses the importance of intersectionality in policy frameworks. All women, especially those from oppressed groups like the Dalits, need an inclusive and egalitarian society that upholds their rights and dignity. By bringing attention to the need to change social conventions and legislation that restrict the possibilities accessible to Dalit women in India, this study contributes to the continuing conversation about social justice including gender equality.

Keywords: *Dalit women. Discrimination, barriers, violence, human rights, India*

Introduction

The idea of intersectional provides a crucial theoretical framework to analyse how many social, economic, & political identities interact to provide various advantages and disadvantages. It is essential to understand this in order to fully understand intersectionality. Kimberlé Crenshaw first used the term in 1989

*Associate Professor, Department of English, Delhi College of Arts and Commerce, University of Delhi
**Professor, Department of English, School of Media Studies and Humanities, Manav Rachana International Institute of Research & Studies, Faridabad, Haryana

to refer to the struggles faced by African American women, who face numerous forms of discrimination due to their gender and race. An intersectional perspective is useful for understanding the experiences of Dalit women in India because of the double prejudice they experience due to their gender and caste. Examining intersectionality through the lens of India's sociocultural context is the goal of this study. The "double burden" that Dalit women experience is the primary emphasis of the research. This statement, when used to Dalit women, suggests the double marginalization they experience due to their gender and caste (Joshi). A complicated interaction between caste prejudice and gender inequality characterizes the dilemma that Dalit women in India face. This is what sets their predicament apart from all others. Being a woman compounds the difficulties of overcoming institutionalized discrimination, social exclusion, and violence that Dalit women encounter. This is the reality notwithstanding the persistence of legal protections like the Prevention of Atrocities Act (1989). In order to better understand the multi-faceted nature of the discrimination that Dalit women encounter, this study will use the intersectionality framework to show how gender and caste interact to amplify existing inequalities(Limbale).This project aims to shed light on the complex sociopolitical issues they face and to call for more nuanced policy responses that take into account the multiple forms of oppression they experience over the course of a lifetime.

Objective of paper

1. Caste and gender shape Dalit women's discrimination experiences.
2. Identify barriers in education, employment, healthcare, and political participation for Dalit women.
3. Specific instances of violence and discrimination against dalit women.

Change: Dalit Women Take Control of Their Lives and Bodies Through Writing

Dalit literature, especially the literary contributions of Dalit women, serves as a compelling testament to the challenges, hopes, and personal development of marginalised communities in India. Literary compositions of this kind offer a forum for the expression of the complex realities that persistently affect the Dalit community in the country, specifically Dalit women: caste-based prejudice, gender inequity, and societal intransigence.

Bama, a notable figure in Dalit literature, is most renowned for his autobiographical narrative "Karukku," which holds a classic status in the Tamil language.

"Karukku," which translates to "palmyra leaves" in Tamil, explores in depth Bama's identity as a Dalit woman during her formative years in Tamil Nadu. The literary work delves into the intricate facets of caste persecution within a Christian society, shedding light on the pervasive bias and societal marginalisation that Dalits encounter, both in and beyond religious institutions. Through her intimate anecdote, which challenges dominant narratives and magnifies the voices of marginalised communities, Bama inspires readers to combat injustice and work towards social transformation. (Bama)

P. Sivakami is another renowned female Dalit author whose works have had an impact on Dalit literature. The novel "The Grip of Change" adeptly portrays the aspirations and challenges faced by Dalit women living in rural India. Set against the backdrop of a dynamic social climate, the literary work explores prejudice on the grounds of gender, social class, and caste, presenting a compelling narrative of resistance and tenacity. Sivakami sheds light on the intricate circumstances that Dalit women in Indian society face through the perspectives of female characters, such as the heroine Janaki, who highlights the intersections of patriarchy and caste.

Perhaps another well-known figure in contemporary Dalit literature is Meena Kandasamy. "When I Hit You: Or, A Portrait of the Writer as a Young Wife" is an intellectually stimulating literary work that thoroughly examines taboo topics, including domestic violence, marital abuse, and discrimination. The artwork of Kandasamy offers a perceptive analysis of patriarchal structures and the constraints imposed on women's independence. In addition to its aesthetic appeal, the piece is incisively critical. This literary work explores the intricate dynamics among gender, identity, as well as caste, unveiling the reader to the stark realities of privilege, power, and oppression. (Kandasamy)

Baby Kamble's book "The Prisons We Broke" is a motivational account of her triumph over oppression and subsequent transformation into an empowering persona. Kamble's narrative highlights the interplay between caste, gender, and identity, while also exemplifying the resilience and resistance exhibited by Dalit women when confronted with systemic discrimination. Kamble inspires readers to combat injustice while striving towards social equality through the narratives of her community's tribulations and triumphs. (Kamble)

Madhuri B. G.'s "Gorilla" explores the experiences of urban Dalit women residing in India, delving into a range of concerns that encompass prejudice, sexual assault, and social exclusion. Through the utilisation of narrative

techniques, Madhuri B. G. sheds light on the challenges and triumphs that her characters experience as they surmount oppressive societal structures. Through its compelling portrayal of privilege, oppression, and social injustice, the book effectively challenges and condemns these matters. (Madhuri)

VIOLENCE AND DISCRIMINATION AGAINST DALIT WOMEN

In India, caste, gender, and economic inequality intersect in complex ways, making Dalit women targets of prejudice and violence. Physical aggression, sexual misbehaviour, economic exploitation, and discrimination in healthcare, education, and employment are some of the most serious manifestations of these issues. Because of cultural standards that emphasise caste purity and long-standing gender inequality, Dalit women confront an already precarious socioeconomic environment.There is a complex interplay between caste, gender, and economic inequality in India, which leads to the prevalence of discrimination and violence against Dalit women. Physical aggressive behaviour, sexual misbehaviour, economic exploitation, and discrimination in accessing medical care, schools, and employment are some of the worst manifestations of these difficulties. Cultures' long-established practices of caste purity and prejudice based on gender exacerbate Dalit women's already precarious social positions. (Mani).

There is a disturbingly high percentage of impunity for acts of physical and sexual abuse against women belonging to the Dalit caste. The low social rank of Dalit women makes them easy targets for upper caste persons, who commit rape, assault, and murder at alarming rates. Many cases are either dropped or postponed because of caste allegiance and institutional prejudices in the justice system, which results in a sluggish reaction from the courts to these kinds of offenses. The social shame associated with sexual assault makes matters worse since the victims often experience isolation and even revenge from those closest to them, especially members of their own families. As a consequence, the crime goes unreported.Dalit women face enormous emotional and verbal assault, including gendered insults and caste-based slurs, in addition to the horrors of physical torture. Abusive conduct like this may happen anywhere, even in the comfort of their own homes, and it can even come from people they know and trust, such as family and friends. They suffer a decline in their personal and social well-being as a result of the vicious cycle of marginalization as well as poor self-esteem that results from such persistent maltreatment. (Michael)

In terms of public services, Dalit women encounter discrimination that hampers their access to healthcare, education, and even basic amenities like clean water. They are often denied entry into schools and hospitals, and at water sources, they are forced to wait until upper-caste members have utilized the facilities, if they are allowed to use them at all. Such systemic exclusion has profound implications on their health and educational outcomes, perpetuating a cycle of poverty and limited economic opportunities.Economically, Dalit women are often relegated to the most menial and low-paying jobs, frequently without any form of job security or legal protection. They face exploitation in various forms, including unpaid wages, harsh working conditions, and lack of recourse in situations of labor rights violations. Their economic marginalization makes them more susceptible to further exploitation and less able to advocate for their rights or improve their circumstances. (Omvedt)

Reforms to the legislation, stricter enforcement of current laws, campaigns to raise public awareness, and measures to empower Dalit women economically are all necessary to combat the multi-faceted forms of discrimination and violence against Dalit women. There must be stricter legislative mechanisms to make sure that violent offenders pay for their crimes, and the justice system must investigate all reported instances fairly and thoroughly. One way to change people's minds and lessen prejudice is to bring attention to the plight of Dalit women and to fight against long-standing gender and caste inequalities.It is possible to empower Dalit women and lessen their reliance on exploitative labor circumstances by giving them access to economic opportunities that provide stable work and fair compensation. Dalit women might find new opportunities for economic independence via skill development and vocational training programs. (Omvedt)

Educational Barriers for Dalit Women

Dalit women in India face severe educational barriers that stem from a complex interplay of caste discrimination, economic constraints, and gender biases. Systemic caste discrimination ensures that Dalit women are often viewed as undeserving of education, perpetuating a cycle of ignorance and poverty. This discrimination manifests in both overt and covert ways, from the denial of admission and resources to subtle discouragements and a hostile school environment. The safety concerns for Dalit girls are significant, as schools can be arenas of caste-based violence and harassment, making the educational journey perilous. (Paik)

Economic hardships compound these educational challenges, as many Dalit families live in poverty. Often, these families are forced to make difficult choices about which children to educate, if any. Typically, due to prevailing gender biases, male children are given educational priority over females, leaving Dalit girls doubly disadvantaged. The limited access to educational resources in Dalit communities—such as books, uniforms, and transportation—further impedes their ability to attend or succeed in school.

The school environment itself can be unwelcoming or even hostile to Dalit students, particularly women. Prejudices held by teachers and fellow students can lead to discrimination in the classroom, lower expectations, and discouragement, which significantly affects the performance and continuation of education among Dalit girls. Such an environment not only stunts their educational growth but also impacts their self-esteem and aspirations for the future. Addressing these barriers requires a multifaceted approach, including stringent anti-discrimination laws, community education programs, and targeted support for Dalit girls in the educational system. (Prasad and Gaijan)

Employment Barriers for Dalit Women

Employment opportunities for Dalit women are severely restricted due to entrenched caste biases, gender discrimination, and economic disenfranchisement. In the Indian job market, Dalit women often find themselves confined to the lowest-paying, least-secured, and most labor-intensive roles. These jobs are typically informal, lacking in job security, benefits, or growth opportunities. Discrimination in hiring practices is rampant, with many employers unwilling to hire Dalit women due to caste prejudices or perceived inferiority. (Rajshekhar)

The work environments for those Dalit women who do find employment are often exploitative and abusive. They face harassment, both sexual and psychological, and have little recourse due to their marginalized status. The absence of supportive labor policies that address the unique challenges faced by Dalit women exacerbates this situation. The few available jobs do not provide a living wage, forcing many Dalit women into a cycle of poverty and dependency without hope for improvement. (Rege)

The socio-economic status of Dalit women also restricts their access to skill development and vocational training programs, which are crucial for better employment opportunities. There is a pressing need for inclusive policies that ensure equal employment opportunities and safe working conditions for Dalit women. These should include rigorous

enforcement of anti-discrimination laws, establishment of affirmative action programs in both public and private sectors, and creation of support networks that provide legal and psychological assistance to Dalit women facing workplace harassment.

Healthcare Barriers for Dalit Women

Access to healthcare is a critical issue for Dalit women, who face numerous barriers in obtaining quality medical services. Geographic isolation of Dalit communities often places quality healthcare facilities out of reach. Those facilities that are accessible frequently perpetuate caste-based discrimination, either through denial of services or provision of substandard care to Dalit patients. This discrimination is not only practiced by healthcare providers but is also embedded in the policies and practices of healthcare institutions. (Samaddara and Shah)

Economic deprivation further complicates access to healthcare for Dalit women. The lack of financial resources means that even basic healthcare becomes a significant burden, and advanced treatments or chronic care are often out of the question. This economic barrier is compounded by a general lack of health education and awareness among Dalit women, which prevents them from seeking medical help in the first place or leads them to accept inferior care without question. Cultural and social stigmas associated with caste and gender also play a significant role in the healthcare disparities faced by Dalit women. These stigmas can discourage them from accessing reproductive health services or seeking help for issues that are culturally sensitive, leading to poor health outcomes. To bridge these gaps, it is essential to implement community-based health programs that focus on education and awareness, improve the affordability and accessibility of healthcare services, and enforce non-discrimination policies within healthcare settings. (Sharma)

Political Participation Barriers for Dalit Women

Despite constitutional guarantees of equality and political representation, Dalit women remain largely excluded from the political sphere in India. Cultural norms and existing political structures systematically exclude them from decision-making processes, effectively silencing their voices in the arenas that most affect their lives. The challenges they face in the political realm are deeply entrenched in the patriarchal and caste-based structures of society, which see Dalit women as unworthy of political authority or influence. (Zelliot)

The intimidation and violence that Dalit women face when they attempt to engage in political activities are

significant deterrents. These acts of suppression are often carried out with impunity, reflecting a broader societal sanction of such behavior. Moreover, the lack of resources and support for Dalit women who wish to pursue political roles further restricts their participation. There is a dire need for targeted support and protection for Dalit women in politics, including training programs, legal protections, and public awareness campaigns that challenge the prevailing norms and promote inclusive governance. (Takhar)

Efforts to empower Dalit women politically must also address the broader issues of caste and gender discrimination that permeate all aspects of their lives. This involves reforming political party structures, enhancing the representation of Dalit women in political offices, and ensuring that their issues are adequately represented and addressed in political agendas. Only through such comprehensive measures can the political marginalization of Dalit women be effectively challenged, paving the way for a more inclusive and equitable political landscape. (Sangave)

CASTE AND GENDER SHAPE DALIT WOMEN'S DISCRIMINATION EXPERIENCES

The plight of Dalit women in India is a poignant illustration of intersectional discrimination, deeply rooted in the interwoven fabric of caste, gender, and economic disadvantage. As members of the lowest caste in India's social hierarchy, Dalit women are designated as "untouchable," a status that perpetuates their marginalization and subjects them to severe social and economic exclusion. This status is not merely a label but a determinant of their life's trajectory, influencing their access to resources, opportunities, and basic human rights. The caste system, which affects approximately 260 million people worldwide, uniquely disadvantages Dalit women. Their dual identity as Dalits and women places them at a distinct intersection of systemic discrimination that is exacerbated by their often impoverished economic conditions. Most Dalit women are landless laborers, dependent on daily wages from jobs that offer little security and are fraught with exploitation. This economic vulnerability is compounded by a lack of access to essential resources such as education, healthcare, and even clean water, which further limits their opportunities for advancement and entrenches their poverty. (Gorringe)

Within both the broader societal framework and their own communities, Dalit women face patriarchal structures that curb their autonomy. This patriarchy manifests not only in public spheres but also within the domestic sphere, where

women often encounter additional layers of control and oppression. The discrimination against Dalit women is thus multifaceted, affecting them socially, economically, and personally. The human rights violations experienced by Dalit women are severe and widespread. They are subjected to dehumanizing living conditions and systemic violence that includes physical assault, sexual exploitation, and verbal abuse, often with little to no recourse. The perpetrators of such violence frequently benefit from impunity, protected by societal norms that devalue Dalit lives and by institutional failures that inadequately address or even acknowledge such crimes. This systemic impunity not only perpetuates the cycle of violence but also silences Dalit women, stifling their ability to seek justice or aspire to better conditions. (Malik)

Ultimately, the intersectional oppression of Dalit women undermines their dignity, self-respect, and fundamental human rights. It denies them equality, freedom of choice, and the opportunity for development. Addressing this grave issue requires a nuanced understanding of the intersectional dynamics at play and a concerted effort from all sectors of society, including policy interventions that specifically target the unique challenges faced by Dalit women, ensuring their protection and empowerment. (Bharathi)

VIOLENCE AGAINST DALIT WOMEN

When gender and caste come together, it manifests in a different way as violence against women. Human rights organisations like the United Nations Committee on the Elimination of all Forms of Discrimination Against Women and the United Nations Special Rapporteur on Violence against Women have recognised this nexus, and several studies on discrimination and violence against Dalit women have also corroborated it. It is evident from Dalit women's stories that exploitation, abuse, and degrading, cruel treatment are pervasive. Their experiences with verbal and physical abuse, enslavement, trafficking, kidnapping, and sexual assault (including rape) provide light on how their social status makes them susceptible to these human rights abuses.. (Mangalam)

Violence is a common means by which the ruling castes punish Dalit women or demonstrate their superiority over her group. Making Dalit women march nude or force-feeding them disgusting foods like human faeces are examples of the terrible violence and humiliation they endure. A key issue to address when thinking about racism and brutality against Dalit women is the issue of authorised impunity for perpetrators. If a Dalit woman seeks legal and

judicial assistance, the police may ignore her or even refuse to assist her. Police officers would not listen to or do anything about the complaints of many women, according to those ladies. The court has repeatedly struck down legislation that would have protected Dalit women from prejudice. Official convictions concerning allegations of crimes perpetrated against Dalits in India were 5.3% as of 2006.Dalit women face humiliating working conditions on top of sexual assault, trafficking, forced labour, exploitation, and exploitation. The forced prostitution systems of devadasi and jogini in India inflict tremendous suffering on certain Dalit women. A distressing trend exists in which Dalit girls are enslaved in Indian brothels, and among Nepal's Dalit population, Badi women are often stigmatised for their profession as sex workers. Sexual violence, kidnapping, and forced religious conversion are among the many atrocities perpetrated against Dalit women in Pakistan. Narratives shared by Dalit women indicate that abduction often leads to forced conversion and marriage to Muslims. (Gundappa)

Conclusion

Essentially, the intersections of gender and caste, together with the social norms that govern Dalit women's access to healthcare, education, jobs, and politics, greatly amplify the bias they face. Evidence of the systemic character of this bias includes the recurrence of violent crimes and the ineffectiveness of current protective laws and institutions. This highlights the need of a comprehensive strategy for formulating policies that takes intersectionality into account and seeks to alleviate current disparities while simultaneously empowering Dalit women via better educational and economic possibilities, more political participation, and better economic prospects.

In order to change people's minds and eliminate long-standing prejudices against Dalit women, it is essential to increase public awareness and take part in lobbying efforts. Education at the grassroots level and a national discussion championing the cause of justice and equality for Dalit women must be integral components of such initiatives. The business world, public sector, nonprofits, and international organisations must work together in harmony if meaningful change is to take place. In order to live dignified and affluent lives, Dalit women should strive for structural change and promote inclusion. This would help create a more equal society.

References

Bharathi, Thummapudi. "A history of Telugu Dalit literature." Delhi: Kalpaz Publications. ISBN 978-81-7835-688-4. OCLC 276229077, 2008.

Gorringe, Hugo. " Untouchable Citizens: Dalit Movements and Democratization

in Tamil Nadu." Sage Publications. ISBN 978-0-7619-3323-6, 2005.

Gundappa, Dr. ""Emergence of Dalit Literature in India" ." Shodhmanthan. X (3): 27–28. ISSN 0976-5255, 2019.

Joshi, Barbara R. " Untouchable!: Voices of the Dalit Liberation Movement." Zed Books. ISBN 978-0-86232-460-5, 2009.

Limbale, Sharankumar. "Towards an Aesthetic of Dalit Literature. Orient Longman." ISBN 81-250-2656-8, 2004.

Malik, Suratha Kumar. "Genesis, Historicity and Persistence of Dalit Protest Literature and Movements in Odisha." Contemporary Voice of Dalit. 13 (1): 81–94. doi:10.1177/2455328X20987370. ISSN 2455-328X. S2CID 233926734, 2021.

Mangalam, B. ""Tamil Dalit literature: an overview"." Language Forum. 33 (1): 73–85, 2007.

Mani, Braj Ranjan. "Debrahmanising History: Dominance and Resistance in Indian Society." Distributors, Manohar Publishers and. ISBN 81-7304-640-9, 2005.

Michael, S. M. "Dalits in Modern India – Vision and Values." Sage Publications. ISBN 978-0-7619-3571-1, 2007.

Omvedt, Gail. Dalit Visions: The Anti-caste Movement and the Construction of an Indian Identity.Orient Longman. ISBN 978-81-250-2895-6, 2006.

Omvedt, Gail. "Dalits and the Democratic Revolution – Dr. Ambedkar and the Dalit Movement in Colonial India." Sage Publications. ISBN 81-7036-368-3, 2004.

Paik, Shailaja. "The rise of new Dalit women in Indian historiography." History Compass. 16 (10): e12491. doi:10.1111/hic3.12491. S2CID 150339099, 2018.

Prasad, Amar Nath and M. B Gaijan. " Dalit Literature: A Critical Exploration." Sarup & Sons. ISBN 978-81-7625-817-3, 2007.

Rajshekhar, V. T. "Dalit – The Black Untouchables of India (2nd ed.)." Clarity Press. ISBN 0-932863-05-1., 2003.

Rege, Sharmila. " Writing Caste Writing Gender:Narrating Dalit Women's Testimonios." Zubaan. ISBN 978-8189013011, 2006.

Samaddara, Ranabira and Ghanshyam Shah. "Dalit Identity and Politics." Sage Publications. ISBN 978-0-7619-9508-1, 2001.

Sangave, Vilas Adinath. "Jaina Community: A Social Survey." Popular Prakashan. ISBN 978-0-317-12346-3, 2009.

Sharma, Pradeep K. " Dalit Politics and Literature." Shipra Publications. ISBN 978-81-7541-271-2, 2006.

Takhar, Opinderjit Kaur. "Sikh Identity: An Exploration of Groups Among Sikhs." Ashgate Publishing. ISBN 978-0-7546-5202-1, 2005.

Zelliot, Eleanor. "From Untouchable to Dalit – Essays on the Ambedkar Movement." Manohar. ISBN 81-7304-143-1, 2005.

Manjusha Art: Painting a Tale

Dr Shubhra Sinha

Abstract

Manjusha art is related to the region of Bhagalpur in Bihar. This art form is linked to a very popular folktale of Sati Bihula-Devi Bishahari which dates back to 7th century CE. There are several layers in this folktale pertaining to the main characters and their relation with the devi Bishahari, a local deity of pre-Aryan origin. One of the most interesting facets of this tale is that it's a living tradition in the region of Bihar, Bengal, Assam and the neighbouring country Bangladesh. Every year in the month of Shravan the festival of Sati Bihula-Devi Bishahari (also known as Devi Mansa) is celebrated across the eastern part of India. What makes the festival unique at the region of Bhagalpur, the place of origin of this folktale, is its association with Manjusha art (a colourful chest) which is created and offered to the Devi Bishahari. The paper intends to look at the belief, religious practices, cultural tradition, values, etc., associated with this art form. What is the artistic dimension of this art? How valuable is it to understand the local socio-cultural milieu of this region? This art form in present scenario has transcended the religious space and is recognised as a popular folk art like the Madhubani painting.

Key words: *Anga, Champapuri, Manjusha, Nag Maniyar, Devi Mansa, Sati Bihula*

Introduction

Visual art forms have always been a very powerful medium of cultural tradition and expression. It is associated with values, beliefs, behaviour of mankind and provides material objects to understand people's way of life, their thought process as well as creativity. In simple words, it has become a bridge to our past, reflecting what people think and want to depict. It is a human way of transforming elements of world and beyond into symbols, where each of it has distinct meaning. One such art form is Manjusha art from the region of Anga (Bhagalpur)in Bihar. It is part of tangible material culture and has helped us in understanding the cultural ethos of the region. Since the art form is associated with Anga, it's also known as Anga art. Reference of Anga as a region is in the epic Mahabharata as well as in Atharva

Associate Professor, Department of History, Kamala Nehru College, (University of Delhi), August Kranti Marg, New Delhi-110049, Mob.no. -9868674944, ssinha@knc.du.ac.in

Veda. In the Buddhist literature, Anga has been mentioned as one of the sixteen Mahajanapadas along with Magadh and Vajji. In fact this region had been inhabited from the pre-history period and the original inhabitants were non-Aryans, referred as Asuras who worshiped the serpent God Nag. The capital of Anga was Champa which as per contemporary literature was surrounded by the groves of Champaka trees and was not only a capital city but also a thriving centre of trade and commerce. Situated on the northern side of the navigable river Ganga, it facilitated trade by land route and river route. The Jain text Champaka Shresthi Katha, refers it as one of the six great cities of northern India. This fortified city had ramparts, gates and watch towers.

Manjusha art is a living tradition and is very integral to culture, society/ social groups, religious practices, regional identity of this region. This art form is associated with the famous folktale of Sati Bihula-Devi Bishahari , which dates back to 7th century CE. The folktale is a family saga of Chando Saudagar, a well-known merchant of Champapuri, who was an ardent devotee of Lord Shiva, his son Bala Lakhendra and the newlywed daughter-in-law Bihula's struggle to save family from the wrath of Bishahari, the snake Goddess and her determination to bring back her dead husband to life. Besides, it is also linked to the tradition of annual worship of Bihula-Bishahari, a festival celebrated during the month of Shravan (July-August) with the advent of Singha Nakshatra. This captivating three-day festival begins with the worship of the male cobra Nag Maniyar and the first day is known as 'Lakpanchak'. After purification of the houses, milk and lava (puffed rice) is offered to the deity Maniyar. On the second day, referred as 'Mainapanchak', the five sisters of Devi Bishahari is worshipped and offerings are made in form of the dallas (baskets filled with flowers, sweets, fruits, betel leaves etc.) and colourful Manjusha. This festival ends with festivities at Bishahari mela and during this period every temple of Mansa in Bhagalpur is adorned with idols of the characters of this folktale and the Manjusha. Along with the deity Mansa (snake Goddess), Bihula an epitome of courage, unwavering love and sacrifice is also worshipped.

This folktale and festival associated with it, are still in vogue in Bihar (specially in and around Bhagalpur) as well as other parts of eastern India and the neighbouring country of Bangladesh. This tradition was probably transmitted from Bihar to Brahmaputra region through North Bengal and Sumra valley region to Assam. Mansa in these regions is worshipped in different forms, for example- in some regions earthen pots personifies Goddess whereas in

other idol made of earth is venerated. What makes the worship in the region of Bhagalpur distinct is offering of Manjusha, which is not only a symbol of religious belief but also a unique piece of folk art. Interlinked with the folktale or the Gatha-creating and painting Manjusha is not only a simple act of devotion for seeking prosperity, good health, saving family from the snake bit, etc., but also an act of thanksgiving for the fulfilment of one's wishes to Devi Mansa. Devi Mansa is embodiment of fury as well safety when pampered with devoutness. During the festival this art form comes to life in the region of Bhagalpur and beyond. When did this practice of offering Manjusha began is difficult to ascertain. It must have been an ancient practice cherished through generation in this region. In 1930s WG Archer, a British official was enamoured by the colourful Manjusha art and he brought it to the forefront.

The Sanskrit term Manjusha means a box or a chest and during the three-day festival, temple shaped Manjushas are created and the devotees keep the ceremonial offerings to the deity Manasa, inside it. Material used for making it are bamboo, jute fibre (Sanai), pith balls (sola) and paper. As per legend the Manjusha signify the chest, in which the dead body of Bala Lakhendra was kept, when newlywed Bihula decided to carry it on boat to the Devlok. Manjusha, the temple shaped boxes are of various sizes and heights like two or three tiers. The sides of Manjusha are fixed with frames, three in numbers, meeting at each corner. The first frame is three or four inches above the ground, providing a strong base to the Manjusha whereas the second and third frames are on the top of Manjusha providing support to the Shikhar (upper most part of Nagara style of temple) like structure. To quote:

'The edges and arches of the frame is projected like a cornice and is decorated with hood of snake Nag, made of paper. In the centre of the Manjusha lies box like structure. The base, central box, top frame …are covered with paper from all sides with openings known as akshiya door.'

The paintings and the sketches are drawn on the paper covering the Manjusha and are referred as Manjusha art. Manjusha is a story-oriented art and hence the theme depicted in the painting is centred around the folktale of Sati Bihula-Devi Bishahari. This story is presented like a scroll painting found in other parts of India. Main events and figures like Bihula's journey on boat to the Devlok with the dead body of her husband, Panchmukhi Bishahari, Nag Maniyar, etc are essentially illustrated. Three main colours are extensively used in this art on white background of paper- green, pink and yellow. These colours have symbolic significance- Green represents nature,

health and prosperity; pink-care, relationship and victory; yellow-joy, youthfulness, optimism and confidence. In fact, these three colours are epitome of the virtues embedded in this folktale. The outlines and borders are drawn in green and the major figures illustrated in the white background are of Gods and Goddesses like Lord Shiva, Devi Mansa, Nag Maniyar and the main character of the folktale like Chando Saudagar, Bihula, Bala Lakhendra, etc. Besides, the illustration is also in form of motifs borrowed from the nature, celestial bodies, animal and aquatic lives, etc., and depiction of these are essential. Various types of trees, Champa and lotus flowers, leaves, fishes, gardens with snakes, bamboo, sun, moon, mongoose, elephant with mahout, horses, cats, mynah bird, hawk, bow and arrows, ships, kalashas are some of the examples of the motifs depicted on the Manjusha. Apart from the illustrations, Manjushas are also decorated with the shining margins of golden laces (gotas), pith balls (sola), etc. In Manjusha art, Lord Shiva is depicted in form of Shivalinga and five sisters of Bishahari is distinguished on the basis of objects held in their hands. Human figures are depicted in the form of alphabet X with raised limbs. Main characters have big eyes but no ears. Use of borders are also distinguished feature of this form of art- Belpatra (associated with Lord Shiva), Lehriya (depicting waves or course of river), Tribhuj (symbol of Shiva), Mokha (signs and decorations of the ancient inhabitants of Anga), series of Sarp Ladi (interconnected snake pattern). This art is not only a simple piece of piety but it also has a deep philosophical connotation. For example, use of lehriya motif is symbolic of ups and downs of life whereas series of sarp ladi symbolises essence of unity. All these elements has given this art a distinguished identity. This tradition is essentially local in its form and content, without any influence from other style of painting or art.

The colours used for Manjusha art are obtained from nature and traditionally it has been domain of castes of lower origin like Kumbhakar, Malakars, Kashira, etc. Decoration and making of colourful Manjusha is exclusively the work of Malakar families (caste of Mali) from olden times. All rituals are conducted through Bhagats (priests) belonging to castes like Musahar, Kewata, Chamar, Nishada, Dhobi, etc.

Conclusion

Today this vibrant art has transcended to the non-religious space. Canvas, clay objects, fabric and other types of surfaces are being used as medium. The local artists have played a very important role in preserving and popularising this art in and outside Bihar. Upendra Maharathi, a

connoisseur of art, took a keen interest in preserving the various art form of Bihar and Manjusha art is one of them. One of the well-known artists is Manoj Kumar Pandit and today this art is providing livelihood to 700-900 artisans families. In spite of changes brought in the realm of this art form with time, it's still embedded deeply in the culture, belief and religious practices of the local masses of the region of Bhagalpur and is integral to the local identity.

ENDNOTES

1. Manjusha art, a folk art is a story-oriented art. It is also called a scroll painting as it has a sequential representation of the folk tale which is displayed in a series.
2. Anga has been identified with the area in and around the modern district of Bhagalpur and Munger in the present state of Bihar.
3. Raja Karna was the ruler of Anga Desh. Duryodhana had given this kingdom to Karna.
4. Its four miles west of present Bhagalpur city.
5. PC Roy Choudhary, Bihar District Gazetteers: Bhagalpur, Superintendent Secretariat Press, Patna,1962, p.36-37.
6. Ibid., pp. 37-38.
7. This folk tale is graphically mentioned in Begali Kavya known as Manasa Mangal, one of the oldest Bengali Maha Kavya. These were composed somewhere around 13th-18th centuries and were narratives of indigenous deities of the rural eastern India and Devi Bishahari is one of them.There is variation in this folk tale as it was transmitted orally and were compiled later in different regions of the east.
8. BR Das, 'The Theoretical premise of Myth & Reality: A case study of Manjusa Art, Sati Bihula-Goddess Vishahari (Nagin) worship and Regional History of Ancient Anga Janapada (Bhagalpur Region of Bihar), Innovation the Research Concept, Vol.4, Issue 11, Dec.2019, pp.12-14.
9. The five sisters are-Aditi, Maina, Jaya, Padma and Dwitela or Mansa. They were foster daughters of Lord Shiva as per the Bihula-Bishahari folk lore.
10. Priyam Kumar Roy, 'Exploring the Mangal Kavya: A Narrative of the Pretext of the Textual Universe', Ensemble, Vol.2, No.1, March,2020, p.148.
11. For detail on shape and size, see Rajeev Kumar Sinha and OP Pandey, Manjusha Art Reflection in Folk Lore, Trade and Regional History, Varanasi,2008.
12. BR Das, op.cit., pp.13-14.
13. Jaya Bishahari-holds bow and arrow in one hand and amrit kalash on the other; Dohita or Dwitela-rising sun and snake; Mynah-mynah and snake, Mansa-snakes in both hands.
14. Gouri Basu (ed.), Chitralok Folk Art of India, Ministry of culture, GOI, Kolkata,2020, p.36.
15. Ibid.
16. Ibid.
17. Bihar Handicrafts, A Catalogue, Upendra Maharathi Shilp Anusandhan Sansthan, Department of Industries, Patna, Bihar, p.11.
18. Ibid.

Impact of 'laya', 'laykari' and 'jati' in sattriya dance and music tradition

Sreemoyee Borah

Introduction:

"Na Vidya Sangitat Para" – which means that no knowledge is superior to the knowlwdge of Music. Music is the most suitable form of fine art where the use of 'Swara' and 'Laya' gives the best experience of natural human emotions. Sarangadeva in his epic 'Sangit Ratnakar' (13th century) used a Sanskrit pharse to define music. The Sanskrit phase has been –

"Geetam Vadyam Tatha Nrityam Trayam Sangeet Muchyate"

That is to say music has been the coalescence of three different attributes – song, instrument and dance. It means that singing, playing instruments and dancing in tune with the two creates music. Song has been a medium that express a tune and a suitable sound fused in adequate Tala and Laya. In so far as instrument is concerned, Sarangadeva in his work 'Sangit Ratnakar' mentioned about four different types of instruments – Tat Vadya, Sushir Vadya, Avanddha Vadya and Ghana Vadya. On the other hand the systematic and rhythmic play in stylized costume in harmony with tala-mana-laya to express some emotions is called dance.

Tala:

Tala refers to musical meter in classical Indian music as Amor Kush mentioned –

"Tala Kala Kriya Manam" (Borthakur 2004, 21). The measurements of time in music in Indian tradition are called the tala. Generally, the generic name for rhythm pattern is called

"tala". It has been a 'rhythmic pattern' or 'time cycle' made up of a number of beats. 'Time cycle' implies precise location and length of a sound or silence. The group of various versified matras used for determining the speed and state of layas in song, instruments and dance are called tala. Sarangadeva in his work 'Sangit Ratnakar' defined tala as under –

"Tala sthola protishamitidh-atoghajyesmrita,

Gitang badyang totha nrityang jotas thale protisthitom." (Barthakur 2013, 71)

Research Scholar, Mahapurusha Srimanta Sankaradeva Viswavidyalaya, Guwahati, Assam

Thus, according to Sarangadeva 'tala' has been derived from the Sanskrit root 'tal', which is the base upon which an object is fixed. In the same way, 'tala' is the base upon which vocal, instrument music and dances are established.

In the book 'Tala-Monjuri', Aswini remarked

"Taker: Sanker Prokta Laker Parvati Smita
Shiva Sakti Samajugyatal Etyabhidhiyate"

It is said that the term 'tala' has been derived by taking the initial letters 'ta' from, "tandava" style of dancing by lord Shiva and the letters 'la' from goddess Parvati"s lasyanritya. Hence it is believed that both lord Shiva and goddess Parvati are the creators of "tala".

Introduction to the North Indian Tala System:

There are two types of tala in Indian tala system. One type has been the North Indian or Hindustani and the other has been the South Indian or Karnataki Tala system. Within the fold of North Indian or Hindustani tala system, there has been two different notation systems

– the Bhatkhande Talalipi and Bishnudigamber Talalipi system. Figure – 1.1 exhibits Indian tala system.

Figure – 1.1: Classification of Indian tala

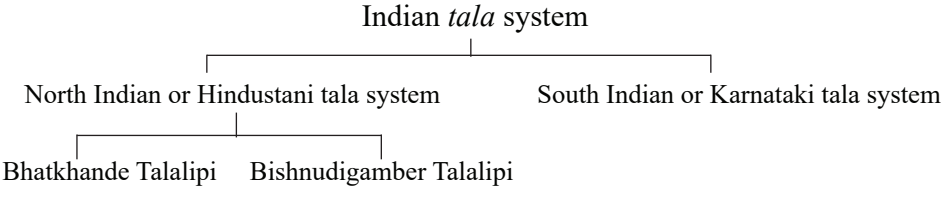

Sattriya Tala System:

Sattriya dance and music has unique tala technique which was develop by Srimata Sankardeva and Sri Sri Madhabdeva and other monks of later years. The Sattriya tala system differs from both the North Indian i.e. Hindustani as well as the South Indian i.e. Karnataki tala techniques – particularly in the sphere of its practical use. In sattriya music more than one tala are used in one song. As for example, in the kamalabari thul, the borgeet „ Kemone Paibo Hari Charana Ture" is performed by using total eight different talas. Similarly, nine different talas are used in the borgeet „ Hamara Gawe Dhula Dile Tomaro Charana".

The sattriya tala has been classified into two types –

i. Multala (Basic tala)
ii. Upotala (Sub tala)

Multalas (Basic tala) are those talas which are used in songs (geetas). Example of Multala have been – Pori

tala, Ektala, Rupaktala etc. Multala is further classified into three – Ga-man, Ghat and Chuk.

Upotala (Sub tala) are those talas which are often seen in the midst of songs (geetas). Examples of Upotala are – Thak, Birup, Dewaj etc. Upotalas are further classified into two – Ghat and Chuk. The Figure – 1.2 shows the classification of Sattriya tala –

Figure – 1.2: Classification of Sattriya tala

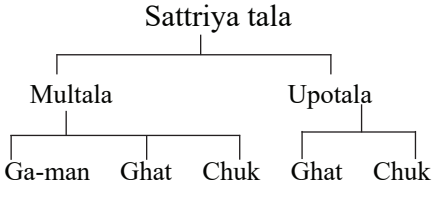

'Laya' in Sattriya Sangeet:

'Laya' means motion. Everything from human life to flora and fauna, the stars and planets of the universe are at motion at a specific frequency unique to all objects. As for example difference between walk and run lies in the motion. Natural movements like the motion of a deer is not similar to that of a tiger, a tree's wirling in breeze is different from its motion due to a cyclone, a river's flow in hilly region is different from its flow in the plain areas. Thus, every natural force from abiotic wind and river motion to biotic process – all have their own rule of motion. This is true for every object of the universe. Every element in nature is imbibed with an inherent 'laya' and 'tala'. The natural rule of day and night, the musings of bird, flowing of a spring and even our human movement are governed by their own motion. Similarly, the three components of music are bound in definite motion or 'laya'. 'Laya' are classified as follows –

Vilambita laya – where the movement is very slow.
Madhya laya – where the movement is neither fast nor slow.
Druta laya – where the movement is as double as the speed of Madhya laya.

In so far as the tala in Sattriya sangeet is concerned, it has certain similarities with the Hindustani tala system. Just as Hindustani tala has „laya" and „laykari", Sattriya sangeet tala has also „laya" and „laykari". In Sattriya tala firstly the 'Ga-man' part and then the 'Ghat' part and lastly the 'Chuk' part is played. Each of them has their own flow or motion. As for example the Sattriya Rupak tala can be cited.

Rupak tala
Matra – 12, Tali – 4, Khali – 2, Bibhag – 6

Ga-man:	Dhei	Dau	¦	Dhei	Dau	¦	Tinda	Khirkhir
	x			2			0	
	Rau	Drik	¦	Dau	Khit	¦	S	S
	3			4			0	
Ghat:	-	-	¦	-	-	¦	Thei	Thei
	3			4			0	
	Tadhe	Nita	¦	Khiti	Dau	¦	Tata	Khita
	x			2			0	
	Dher	Khita	¦	Dhei	Dau	¦	Tata	Khita
	3			4			0	
	Jidhi	Nak	¦	Dhei	Dau	¦	Tinda	Khirkhir
	x			0			2	
	Rau	Drik	¦	Dau	S	¦	Khit	S
	3			4			0	
Chuk:	Dher	Khita	¦	Dher	Khita	¦	Khita	Khita
	x			2			0	
	Dher	Khita	¦	Dher	Khita	¦	Khita	Khita
	3			4			0	
	Dher	Khita	¦	Dher	Khita	¦	Khita	Khita
	x			2			0	
	Dher	Khita	¦	Dhei	S	¦	S	S
	3			4			0	

It is to be noted here that the above mentioned tala will end with the rhythm of Ghat. If the songs of Jhumura dance are observed, it becomes clear that Ga-man part is slow, the Ghat part is little bit faster than Ga-man part while the Chuk part is the fastest.

Jyoti Tala
Matra – 14, Tali – 8, Khali – 6, Bibhag – 14

Ga-man:	Ratanita	Khititak	Ratanita	Khititak
	x	0	2	0
	Ratanita	Khitidau	Khitadhei	
	3	4	0	
	Dhinanita	Khitadhei	Dhinanita	Khitadhei
	5	0	6	0
	Dhinanita	Khitidau	Khit	
	7	8	0	
Ghat:	Dhagitak	Khrikhritak	Khitadhegi	Tatakhita
	x	0	2	0
	Jidhinakhi	Ta-	Thenitak	
	3	4	0	
	Dhethititadhe	Nitadhekhiti	Tadhenita	Khitatadhi
	5	0	6	0
	Nauthatha	Dhei	Khit	
	7	8	0	
Chuk:	Dherkhita	Khitadau	Takhita	Khitadau
	x	0	2	0
	Dherkhita	Tathitita	Khitidau	
	3	4	0	
	hinadhina	Dhinadhina	Dhenitadhe	Nitadhena
	5	0	6	0
	Dherkhita	Tathitita	Khitidau	
	7	8	0	

Here in the case of the Jyoti tala also, the tala ends with the rhythm of Ghat. Unlike the Bhatkhande tala system, in the Sattriya sangeet tala system, the verses or words (bol) don't increase with laya (motion). As for example, the Kaharba tala (Bhatkhande system) can be mentioned.

Kaharba tala
Matra – 8, Tali – 1, Khali – 2, Bibhag – 2

Theka:

Theka:										
1 gun -	Dha	Ge	Na	Ti	¦	Na	Ka	Dhi	Na	¦	Dha
	x					0					x
2 gun -	Dhage	Nati	Naka	Dhing	¦	Dhage	Nati	Naka	Dhina	¦	Dha
	x					0					x

In Sattriya tala system:

Chuta tala
Matra – 4, Tali – 2, Khali – 2, Bibhag – 2

Dhina	Khiti	Nadhei	Khit
0	x	0	2

When the above tala is played even in twice the motion of the initial rhythm (2, 4 gun), the verse or bols remain the same, only the time required to sing the verses increase.

Joti:

„Joti" has been a part of the „Dahapran" of „tala". „Joti" has been the movement of

„laya". It can be defined as the pace or flow of „laya". It is of five types –

i) Samajyoti, ii) Shrutagota, iii) Mridanga,

iv) Pipilika, and v) Gupussa

i) Samajyoti – The playing part (bol) of this Joti remains the same in three of the layas. For example –

Dhina	Kheti	Nadhei	Khit
0	x	0	2

ii) Shrutagota – Here the „laya" is very slow at the beginning, medium in the middle and fast at the end. For example –

Jin	Thei	S
0		
Jin	Thei	Thei S
x	2	
Dherkhita	Khita	Khitidau

0			
Tattau	Dhenitadhinau	Dhenitadhi	Nadhinau
3		4	

iii) Mridanga – The joti where „druta laya" (fast pace) is used both in the start and in the end and bilombita laya (slow pace) is used in the middle is called Mridanga joti. As for example –

Dhina-k	The-ithe-i	I-k	The-i-the-i
0	x	0	2
Tatak	The-ithe-i	Tatak	Ta-ta
0	x	0	2
S	Tha-tau	S	Tha-tau
0	x	0	2
Tha	Ta-khiti	Tattau	Ta-ta
0	x	0	2
Dhinak	The-ithe-i	Tata-k	The-o-the-i
0	x	0	2
Tata-k	The-ithe-i	Tata-k	Ta-ta
0	x	0	2

iv) Pipilika – Here the pace goes like that of arts, somehow. It is usually slow. For example –

Dheidheidheidau	Dheidheidheidau	Dheidheidheidau	Dheidheidheidau
0	x	0	2
Jintakhi	Ta-	Khitta	Ta
0	x	0	2
Tattalayana	Khititakhi	Ta-	S
0	x	0	2
Ta-	Grirgrir	Grirgrir	Dhei
0	x	0	2

v) Gupusssa joti – In this joti, the pace is very fast in the beginning, while it becomes very slow at the end. For example –

Dhekhriirikhri	Rindakiti	Takhriirikhri	Rindakhiti
0	x	0	2
Takhriirikhri	Rindakiti	Tatakdhe	Nitadheni
0	x	0	2
Ta-khiti	Dau	Dhenita	Khititadhe
0	x	0	2
Nitakhita	Dhi-Nanita	Dhe-ni-tini	Dau
0	x	0	2
Rinthak	Dhei	S	Khit
0	x	0	2

The impact of 'laykari' in Sattriya sangeet:

The variation in the play of „laya" is termed as „laykari". „Laykari" indicates number of subdivisions in a matra. In Sattriya music it is termed as „Upakat juwa". The use of „laykari" in Sattriya music, particularly in Gayan-bayan can be seen. As for example –

Nadubhangi bajana:

S tikhri	Nadhei	S tikhri	Nadhei
0	x	0	2

Rajaghari Cali Nac:

S tanita	Khitanita	S tanita	Khitanita
0	x	0	2

Bahar Nac:

S tau	S khri	Rata	Tau
0	x	0	2

Jati of Tala –

The meaning of jati has been Varnor Bhed. In Indian classical music tradition jati means a class or group. In North Indian as well as South Indian music, the tala system is written based on the jati. Every jati is denoted by a set of syllables. In Karnataki tala system jatis are of five types – Thisra (3 aksharas), Chaturasra (4 aksharas), Khanda (5 aksharas), Misra (7 aksharas), and Sankeerna (9 aksharas).

Thisra Jati: Impact of thisra jati can be seen in the Matiakharas, Lavanusurinac, Gosai Praveshnac, Cali nac, Gopinac, Rajaghoria Cali nac and other main talas of sattriya dance. For example:

Matiakhara:

Dheikhiti	Takhiti	Takhiti	Thendak
0	x	0	2
Takhiti	Takhiti	Takhiti	Thendak
0	x	0	2

A through research on application of laya and laykari in sattriya dance form would.

Aims and objectives of the study:

The study mainly aims to throw light on the influence of „laya", „laykari" and „jati" in sattriya dance and music tradition. The followings are the objectives of the present research work –

i) To explore the impact of „laya", „laykari" and „jati" in Sattriya tala tradition.
ii) To comprehend the unique features as well as techniques used in the Sattriya tala tradition.

Importance and necessity of the study:

Sattriya has been a living dance tradition of over 550 years – which got recognition as classical dance in the year 2000. It has been the most popular dance form of Assam – which is full of both religious as well as different ethnic cultural attributes of Assam. Influence of Natyashastra on different ingredients of sattriya dance is also evident. This dance form is based on the four „Vrittis" as mentioned in Natyashastra and it falls under the 'Audra- magadhi Provrittis'. Hence, as a dance form within the „Audra-magadhi Provrittis", it embodies „laya", „laykari" and „jati" in wider perspective. In other forms of classical dance

„laya", „laykari" and „jati" are reflected through Ghungroos used by the performers. However, in Sattriya dance tradition Ghungroos are not used. So, in depth study is necessary to understand the relevance of „laya", „laykari" and „jati" in Sattriya dance tradition. Sattriya artists have been displaying Sattriya music and dance before the audiences across the continents. In present time it's popularity has increased manifold. So, an academic discussion on the above mentioned topic is utmost necessary to give an insight of the unique tala pattern of the Sattriya music and dance – which will benefit the scholars and audiences in general and give edge to the performers in particular.

Scope of the Study:

While studying the impact of „laya", „laykari" and „jati" in Sattriya dance and music tradition, the scope of the study will basically include the Kamalbari Thul (Gharana in Indian tala system). However, as per the demand of the subject matter, the other Thuls, i.e. Barpeta and Bardowa will also be included.

Methodology and data collection:

Historical, descriptive as well as analytical methods were used in this study.

Both primary and secondary data were collected for the study. The sources of primary data have been the practice skill of the investigator,

performance by the specialities of the Sattriya tradition, performers of Gayan-Bayan etc. Primary data were collected from field with an unstructured interview schedule. Participatory methods were also used to get firsthand knowledge about the subject.

The secondary data were collected from books, journal articles, articles published in newspaper as well as unpublished manuscripts.

Review of early works:

Though no scholarly works on impact of „laya", „laykari" and „jati" in Sattriya dance and music tradition have published, only a few books on the tala system as well as mnemonics (Bajana) of Sattriya tala have published. Some important works are as under –

Dr. Maheswar Neog and Keshav Changkakati's work „Sattriya Nritya Aru Sattriya Nrityar Tal" has been an important work relating to Sattriya dance and music tradition. The work not only throws light in to the origin and development of sattriya dance tradition, but also contains scientific notations of music and dances of the Kamalabari Sattra and Auniati

Sattra of Majuli. However, no in depth discussion on „laya", „laykari" and „jati" in Sattriya dance and music tradition is available in this work.

Dr. Jagannath Mahanta in his work „Sattriya Nritya-Git-Badyar Hat Puthi" made a brief mention about the Sattriya tala system, Dah Pran of Sattriya tala etc. The work also incorporates explanation regarding use of different talas in Sattriya music and dance. However, the author didn't delved deep into the impact of „laya", „laykari" and „jati" in Sattriya tala pattern.

„Tal Pradip" by Keshav Changkakati has been another important work in Sattriya tala system. The author compares the Hundustani and Sattriya tala system in relation to Laya, Laykari, Chapori, Maan, Jati, Dah Pran of tala etc.

Dr. Dilip Ranjan Barthakur in his work „Khol Vigyan" enclosed a discussion on North Indian and Sattriya tala system. The author also includes brief discussion about Karnataki tala pattern as well as on Laya, Laykari, Jati, Dah Pran of Sattriya tala etc.

„Sattriya Khol Pradip" by Gobinda Saikia has been another important work on „Khol"

– the most prominent musical instrument of Sattriya tradition. The author engaged in depth discussion about „Ga-man", „Ghat", „Chuk", „Hochar", „Bhangoni", „Matra" etc. of Sattriya tala. The author also throws light on similarities between Tabla – the prime musical instrument in North Indian tala system and Khol – the main musical instrument of Sattriya tradition.

Karuna Borah in his work „Sattriyar Nrityar Rup Darshan"

discussed about different talas used in sattriya dance and music. However, the work doesn't contain in depth discussions on Laya, Laykari, Jati, Dah Pran of Sattriya tala etc.

„Sattriya Khol Badya" has been another important work on different Sattriya talas of the Sundaridiya Sattra of Barpeta district. Himangshu Kumar Baruah, the author of the work has taken pain in collecting some traditional Bol-Barna (mnemonics) and talas of the Sattra – which have found place in the work. However, the work doesn't contain any discussion on Laya, Laykari, Jati etc. of the Sattriya tala.

Reference:

1. Dilip Ranjan Borthakur, Khol Vigyan.
2. Dilip Ranjan Borthakur, Tabla Vigyan.
3. Jaganath Mahanta, Sattriya Nritya – Geet – Badyar Hatputhi.
4. Jatin Goswami, Nritya – Siksha.
5. Junali Guswami Sharma, Bharatnatyam.
6. Mahaswar Neog and Keshab Changkakoti, Sattriya Nritya and Sattriya Nrityar Tal.
7. Notun Kamalabari Sattra, Ankia Natar Sachipatia Puthi.
8. Saru Bordoloi, Narttran – Kala Manjuri.

Navigating the Impact: Exploring the Implementation of the prevention of Sexual Harassment (POSH) at Workplace Act 2013 and its effects on Employees and Employers of Higher Educational Institutions

MS.Tanu Arora*, **Dr. Sandhya Rohal

Abstract:

This research paper delves into the multifaceted landscape of workplace harassment, focusing on the implementation and impact of the Prevention of Sexual Harassment (POSH) at Workplace Act 2013 in India. Through a comprehensive analysis, the study investigates the efficacy of the POSH Act in mitigating instances of harassment and fostering a safer work environment. Additionally, it explores the diverse effects of harassment on both employees and employers, shedding light on the financial, legal, and socio-emotional ramifications. Drawing upon empirical evidence, case studies, and legal frameworks, the paper aims to provide insights into the challenges and opportunities associated with enforcing the POSH Act and addressing workplace harassment in specific manifestation in universities, institutes and colleges level effectively. By examining the experiences of affected individuals and organizations, this research seeks to offer actionable recommendations for policymakers, employers, and stakeholders to enhance compliance, promote accountability, and safeguard the rights and well-being of all members of the workforce.

1. prevention of sexual harassment law

Preventing sexual harassment in the workplace is one of the primary objectives of the 2013 Preventing Sexual Harassment Act, which also offers guidance to employers on how to better accommodate female employees. The legislation specifies a set of rules for businesses to follow. Specifically, it is concerned with avoiding workplace harassment and

*Research scholar, BPSMV,K.K, Sonipat, (tanu.kinra@oulook.com)

**Assistant Professor,Dept. of laws, BPSMV,K.K, Sonipat, Haryana

other legal infractions that might have both personal and commercial consequences for female employees.

"PoSH Act" is an Indian legislation aimed at preventing, banning, and remedying sexual harassment of women in the workplace. The Prevention, Prohibition, and Remediation of Sexual Harassment of Women in the Workplace Act of 2013. India's Ministry of Women and Children Development enacted the legislation on December 9, 2013, making it applicable to everyone in the country.

2. BACKGROUND:

The rule against sexual harassment in the workplace was implemented 16 years after the Supreme Court decision in Vishaka and Ors. vs. State of Rajasthan and Ors., By non-governmental organizations (NGOs) in the course of their operations. The Supreme Court ruled that workplace sexual harassment infringed on women's basic rights (including the right to equality, the freedom to practice any profession, and the right to a decent income) and discriminated against them in this ruling. It was agreed that an "alternative emotional mechanism" was needed to prevent these basic rights from being abused at work, rectify the challenges, and replace the legal hole in the absence of statutory safeguards. The "Vishaka Guidelines" mandated that all employers have a policy in place to deal with allegations of sexual harassment in the workplace.

According to the Court, the Vishaka Guidelines should be recognized as a declaration of law and should be in effect until Parliament passes the necessary protective legislation.

Sexual harassment is an issue that has to be addressed in the workplace, and therefore the Ministry for Women and Children (Ministry) enacted the Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition, and Compensation) Law of 2013 on December 9, 2013.

Ministry regulations were also issued on the same day. Rules governing sexual harassment of women in the workplace were promulgated in 2013 and are known as the Sexual Harassment of Women in the Workplace (Prevention and Compensation) Rules, 2013.

The Companies Act 2013 stipulates that every company must submit a board of directors report at the end of each financial year. According to Article 134 of the law on corporations, the board of directors' report can be made public if it includes "the certificate that the company has complied with the provisions relating to the establishment of a commission on harassment complaints (Prevention, Prohibition, and Remedy) in the workplace."

3. LEGAL DEFINITION OF "SEXUAL HARASSMENT"

Sexual harassment is defined in Section 2 (n) of the Act as the following unpleasant acts:

i. Sexual approaches and physical touch.
ii. A request for sexual favours or a query about it.
iii. Make sexually suggestive remarks.
iv. Displaying pornography
v. Any other sexually inappropriate physical, verbal, or nonverbal act.

Undesirable activities may be performed on a woman who shows signs of discomfort or refuses to agree. Following the actions or behaviors stated above may also be deemed sexual harassment if they are linked to them.

i. An implied or explicit promise of special treatment at work. Discrimination, whether implicit or explicit, in the workplace
ii. Implicit or explicit threats to current or future employment.
iii. iii. Interfering with work or creating an intimidating, offensive, or hostile work environment.
iv. Irritating medical care that might endanger the patient's well-being.
v. Office workers, who deserve your respect and admiration?

If you are in charge of a government or local authority department, organisation, or office, you are an employer for the purposes of this Act. Employers are businesses.

iii. The person is responsible for monitoring and regulating any workplace that is not stated in item iii above.
iv. It does not matter whether a domestic worker is employed full-time or part-time, what he or she does for a living, or how long they have worked for the family.

4. OBJECTIVES OF THIS LAW, WHAT CONSTITUTES A "WORKPLACE"

The term "workplace" is defined in Section 2 (o).

i. There are many different types of government-run organisations and businesses. The most common are municipal corporations (which are run by local governments), public corporations (which are run by the federal government), and cooperative corporations (which are run entirely by the federal government).
ii. Organizations and service providers in the private sector that participate in commercial or professional activities, educational or entertainment activities, or industrial and/or financial services operations are called non-profit organisations

(NGOs).

iii. Infirmaries and long-term care facilities

iv. Sporting and recreational activities in sports facilities, stadiums, and other venues.

v. Any place that an employee travels to while on the job. This includes any company-provided transportation to and from the location.

vi. A family unit, whether it be a house or anything else.

vii. Individuals or self-employed employees who operate their own businesses in the unorganised sector that produce, sell, and distribute products and services. Taking a look at the PoSH legislation in a business context is equally fascinating.

Who are the people who benefit?

The PoSH statute protects women from sexual harassment in the workplace.

i. Everyone who works for the company on a regular basis, whether on a contract basis or on an hourly basis.

ii. Employed in one of two ways: either directly or via an agency or contractor.

iii. They may or may not be working for the primary employer.

iv. They are either paid or unpaid depending on the situation.

v. the terms of use might be explicitly stated or implied.

vi. The PoSH Act covers all of the above. There is a PoSH legislation that applies to all contract workers and trainees. Protecting the health and safety of women at work.

scope of the PoSH law?

i. Make the workplace a secure location to do one's job: Under the PoSH legislation, employers are tasked with safeguarding the safety of their workers on the job. When it comes to protecting their workers, they must take measures to safeguard them from both their own staff and anybody else who may enter the workplace (eg hunters). This restriction applies to all business vehicles and third-party websites that workers access, not only the official workplace.

ii. An internal committee should be established in any organisation with more than 10 workers.

5. FRAMEWORK AIMED AT COMBATING AND PREVENTING HARASSMENT IN VARIOUS HIGHER EDUCATION INSTITUTIONS IN INDIA.

The Prevention of Sexual Harassment (POSH) at Workplace Act 2013 constitutes a critical legal framework aimed at combating and preventing harassment in various organizational contexts, including higher education institutions in India. This paper seeks

to explore the implementation of the POSH Act within the realm of higher education, focusing on its effects on employees and employers. By examining key challenges, initiatives, policies, and socio-emotional impacts, this research aims to provide valuable insights into navigating the complex terrain of harassment prevention and promoting a safe and inclusive environment for all members of the academic community.

1. Implementation Challenges in Higher Education Institutions

Despite the enactment of the POSH Act 2013, higher education institutions in India face unique challenges in implementing and enforcing anti-harassment policies. This section examines the specific barriers and complexities encountered by universities and colleges in adhering to the provisions of the Act, including institutional culture, resource constraints, and bureaucratic hurdles. recently , it is been in news that various prestigious institutes have not mantained complaint commitess one of the most shocking update come in limelight when it become opened about The Sports Authority Of India has no internal complaint committee. One more protest come upfront that is protest aginst the president of wrestling fedration of india Mr. Brij Bhushan sharan singh against whome variuos players come upfront .

2. Awareness and Training Initiatives for Faculty and Staff

Effective implementation of the POSH Act necessitates robust awareness and training programs for faculty and staff members within higher education institutions. This subsection explores the importance of education and training in promoting a culture of respect, preventing harassment, and equipping employees with the knowledge and skills to address incidents effectively. Sometimes less tranning programes or no tranning programs can led towards more exploitainon.

3. Institutional Policies and Compliance Mechanisms

Institutions must develop comprehensive policies and mechanisms to ensure compliance with the POSH Act and address instances of harassment promptly and effectively. This segment delves into the design and implementation of institutional policies, the role of internal committees, and the establishment of grievance redressal mechanisms to safeguard the rights of employees and students.

4. Impact on Organizational Culture and Climate

The implementation of the POSH Act has profound implications for the organizational culture and climate of higher education institutions. This section explores how the

Act influences power dynamics, communication channels, and perceptions of safety and trust within academic settings, shaping the overall work environment and student experience.

5. Addressing the Socio-emotional Effects on Stakeholders

Beyond legal and procedural considerations, it is essential to acknowledge and address the socio-emotional effects of harassment on stakeholders within higher education institutions. This subsection examines the psychological, emotional, and social impact of harassment on employees, students, and institutional stakeholders, highlighting the importance of holistic support systems and trauma-informed approaches.

6. RESPONSIBILITIES OF EDUCATIONAL INSTITUTIONS

The POSH statute gives educational institution (employers) a slew of obligations. They begin when educational institution must set up an internal complaints committee so that anyone who has been victimised by sexual harassment can do so and seek compensation, and they end when a educational institution is required by law to provide specific information in its annual report about incidents of sexual harassment.

In addition to the above, there are a number of other legal obligations that an educational institution (employer) must follow:

1. Ensure the safety of everyone who comes into touch with your workplace, including your employees;

2. Workplaces should display the penalties for sexual harassment as well as the Internal Commission, the body that enforces the rules of the workplace, in prominent locations;

3. Organize regular training and awareness programs to make staff aware of the consequences of smoking. It is the responsibility of the employer to provide training and education for the members of its internal committee, as well as identify and address the root causes of a hostile work environment for women. Training and education for the members of the internal committee, as well as enhancing their capacity and skills, must also be provided.

4. In order for the Internal Committee to examine and resolve the issue, provide the required facilities.

5. Assist the Internal Committee in ensuring that the accused and witnesses appear before it.

6. Make sure the internal committee has all the information it needs about the grievance.

7. Make it easier for the woman's case against the criminal if he wishes to submit a complaint under the Indian Penal Code.

8. In order to submit a complaint under the Indian Penal Code or any other relevant legislation against the aggressor or, if the aggressor is not an

employee, in the workplace where the sexual harassment event occurred, if the aggressor is an employee.

9. According to service rules, take necessary action against sexual harassment.

10. Make sure that Internal Commission reports are delivered on schedule.

7. LACK OF IMPLIMENTAION POSH / GUIDELINES/ REGULATIONS, BY HIGHER EDUCATIONAL INSTITUTIONS AND OTHER ORGANIZATIONS.

Incidents of sexual harassment affect not just the establishment's image but also the manager's personal brand. Since they may deduce that the management is also promoting such behaviors and activities, for practically every instance of sexual harassment that happens on their grounds, a state or nation might bring legal action against them.

Article 4 of this legislation mandates the establishment of an Internal Complaints Commission by every firm with 10 or more workers (CIC). According to Pennsylvania's PoSH statutes, executives are accountable for making sure their organisation adheres to all applicable rules. If they don't follow the rules, there might be negative repercussions.

To be punished for not abiding by the law, one might choose between jail time and large fines (from Rs 50,000 to Rs 25 lakhs).

8. ANTI-HARASSMENT POLICIES IN INSTITUTIONS.

- Under the POSH legislation, you are required to execute awareness codes to raise knowledge of the law's availability and the rights of employees to report harassment.
- An organization's internal committee (ICC) must also be trained on harassment prevention, as well as the organization's employees.
- The International Criminal Court (ICC) was created in 1997 and is based in The Hague, Netherlands. If your company has more than 10 workers, you must have an ICC with an external representative, such as a lawyer.
- This committee must be trustworthy in the prevention and management of harassment in the workplace.
- A sexual harassment policy for the company should be written and publicized to everyone.
- This committee is responsible for resolving disputes and tracking harassment reports made by workers.
- Organizing and facilitating educational seminars. These training sessions are crucial in raising awareness of sexual harassment among employees.

The sexual harassment of women and girls on the job has been going

on for a long time now since women have been able to leave the safety of their homes and join the workforce. The guys were not pleased with this, believing that these women were accessible and unfettered in their favors inside the four walls of their house and in the kitchen, where they really belonged. Girls were expected to fulfill the dual roles of homemaker and procreator. The morality of our culture has also undergone a transformation.

9. CONCLUSION

The implementation of the posh act after the Vishakha ruling has made a significant contribution to addressing incidences of sexual harassment of women in the workplace. All over India, women have benefited greatly from this legislation. This is the moment to get the most out of this legislation by implementing this site properly. Increased awareness about workplace sexual harassment has resulted from the passage of the POSH Act. It is possible to address these issues if this legislation is effectively enacted and applied correctly. Sexual harassment of women, particularly in the workplace, is becoming a hot topic because of the "Me Too" movement and other recent campaigns. As a result, a slew of women has taken to social media to tell their own stories. More people are speaking out against sexual harassment than ever before. This means that the existing problem of workplace sexual harassment of women will be better addressed if the POSH Act is implemented correctly and improved in particular ways.In India various places in concern to educational institutions where students or working people have been harassed either physical or emotional , area in which students are more dependent , medical , nursing , art and craft, music etc here the students are completely dependent on teaching faculty at that very point where victim get trapped .

References

The POSH Act,2013

https://www.icsi.edu/media/webmodules/Labour_Laws&_Practice.pdf.

Vishaka and Ors. vs. State of Rajasthan and Ors.(1997 (7) SCC 323)

Kaushal Kishor vs. State of Uttar Pradesh and Ors. (03.01.2023 - SC): MANU/SC/0004/2023

Chapter VI of The POSH Act,2013

Sec 26(1)(a) of the POSH Act.

Sec 26(1)(c) of the POSH Act.s

.....

1. https://www.icsi.edu/media/webmodules/Labour_Laws&_Practice.pdf. Last accessed on 18-03-2024
2. Vishaka and Ors. vs. State of Rajasthan and Ors.(1997 (7) SCC 323)
3. Ibid
4. Sec 2(n) of The POSH Act,2013
5. Chapter VI of The POSH Act,2013
6. Ibid
7. Sec 2(o) of The POSH Act,2013
8. Sec 4 of The POSH Act,2013
9. Sec 19(a) of The POSH Act,2013
10. Sec 19(b) of The POSH Act,2013
11. Sec 19(c) of The POSH Act,2013

12. Sec 19(d) of The POSH Act,2013
13. Sec 19(e) of The POSH Act,2013
14. Sec 19(f) of The POSH Act,2013
15. Sec 19(g) of The POSH Act,2013
16. Sec 19(h) of The POSH Act,2013
17. Sec 19(i) of The POSH Act,2013
18. Sec 19(j) of The POSH Act,2013
19. Kaushal Kishor vs. State of Uttar Pradesh and Ors. (03.01.2023 - SC): MANU/SC/0004/2023
20. Sec 26(1)(a) of the POSH Act.
21. Sec 26(1)(c) of the POSH Act.

Human Ethical Values in Education

Vibha Kumari*, **Dr. Jay Prakash Singh

ABSTARCT

The present conceptual research focused on the study of Human Ethical Values in education. Values an important part of daily life, including the teaching learning process. Now a days value-based education and mindfulness peace activities and its theories and practices change in human life. Human Ethical Values has brought about many dramatic changes in how teachers teach & how students learn. Human Ethical Values brings many benefits and advantages to human life. Definitely, it also brings changes to human lifestyle today. If it is assimilated by human properly, it will bring effects on individuals, communities, and nations. The present paper focused on the study of human ethical values in education system.

Key words: *Human Ethical Values, Human Lifestyle.*

Introduction

Human Ethical Values are one of the most crucial dimensions of an individual's life. Ancient Indian education system was framed with the aim of leading man from untruth to truth, from darkness to light and from immorality to morality, but in this ambitious world, man seems to have compromised with his values, principles, and success, to earn more and more wealth in short term & anyhow. For this, it is noticed the excessive corruption, unlawful activities, brutal behavior, and immoral works, which is slowly breaking the backbone of our society, nation & the world. Therefore, there is an urgent need to impart value-based education system dealing specially with human ethical values and to do so reorganization of our educational system is essential. A child's mind is soft clay which can be molded to any desired shape. Thus, the early stage is the correct time to impart value inculcation into our system, so that the right impressions formed in the child's mind will guide him throughout his life based on noble principles.

Human Ethical Values neither can be defined nor be measured.

*Research Scholar, (Department of Education), Netaji Subhas University, Jamshedpur.

**Associate Professor, (Department of Education), Netaji Subhas University, Jamshedpur.

But it adds quality to life. It codifies the do's and don'ts of behavior. They form the basics of character formation and development of personality. The values that arise from within or the core of the heart, like love, compassion, appreciation, empathy, patience, etc. lay the basis for the external practiced values like discipline, regularity, and loyalty. It is important to recall that values are priceless, while valuables are priced (Goel and Goel, 2008). Value is also defined as important and lasting beliefs or ideals shared by the members of a society about what is right or wrong and desirable or undesirable.

Human Ethical Values education may be seen at three levels: household, classroom, and society. The levels interact with one another, as Household Level (Traditions, family culture, religious education), Classroom Level (Curriculum, Interaction with peer group, Professional Learning) and Society Level (Social Interactions).

Meaning of Human Ethical Values

Human Ethical Values are the principles or standards of an individual's behavior and can help him/her to judge what is important in their life. They reflect one's attitudes, choices, decisions, judgements, relationships, dreams and vision towards their life and surrounding environment. An individual learns different human ethical values from different sources like family, relatives, friends, community, religion, traditions, customs, books, environment, great personalities, and many other sources.

According to B. Ratna Kumari, "Human Ethical Values are standards which are desirable and are the preferred choices having social approval. They are centered around Man's strength and are derived from Human Nature out of a reasoning process. They provide directions for the maintenance, enhancement, and actualization of the self towards growth and development leading to the stability and effectiveness of the Society".

Classification of Human Ethical Values

Innate Values- Innate values are the inborn divine virtues such as love, peace, happiness, mercy and compassion or all positive moral qualities like respect, humility, tolerance, responsibility, co-operation, honesty, and simplicity. Innate values are more or less rigid and fixed.

Acquired Values- Acquired values are those external values adopted at our place of birth or place of growth and influenced by the immediate environment. Examples of acquired values are our mode of dress, the way we bless, our culture, customs, traditions, habits, and tendencies. Acquired values are very flexible and

changing.

Sources of Human Ethical Values

Human Ethical Values of people have their roots in numerous aspects of contemporary society. In particular, there are 4 sources of Human Ethical Values formation in any society. They are: - (i) Social Institutions, (ii) Organizations, (iii) Peers and Colleagues, (iv) Work and Career.

1. Social Institutions : The life and development of a society are both based upon and produce Human Ethical Values. There are various institutions in society which inculcate Human Ethical Values in an individual. In particular there are 4 major institutions which provide the basic Human Ethical Values for person:

> family, school, state, and religion. The basic process of Human Ethical Values formation by these institutions is that they prescribe what is good or bad for an individual. Good behavior is rewarded, and bad behavior is punished.

2. Organizations : Every Organization has a set of Human Ethical Values, whether or not they are written down. The Human Ethical Values guide the perspective of the organization subscribe to a common set of Human Ethical Values; the organization appears united when it deals with various issues. Human Ethical Value plays a very important role in determining how the organization confronts problems and issues.

3. Peers and Colleagues : An individual gets clues of behavior from his peers and colleagues. He develops and applies beliefs and attitude. Human Ethical Values derived from the group of peers and colleagues with whom he/she is associated. Individual feels an inmate involvement with a number of people, a nation, a society or a business organization or a work group. Human Ethical Values strengthen, protect, and solidify a given group. Therefore, the individual tries to follow that group norm of behavior.

4. Work and Career : Work consists of the task or responsibilities associated with a particular job or position in an organization. In organization this work is organized, directed, controlled, and entrusted to individuals willing to become employees. An individual's experience over a period of time constitutes his/her career create special values that give unity, cohesion and meaning to persons, and groups, Therefore, each work will have its own values and follow those values.

Role of Human Ethical Values in Education

- Character Development.
- Develops civic responsibility.
- Preparation for the real world.
- Improves leadership quality.

- Enhance social and emotional skills.
- Learning to adjust in a changing world.
- Develops the Decision-making capacity.

Purpose of Human Ethical Values in Education

- To develop non-violence, respect & democratic qualities in individual.
- To build the peaceful world.
- To guide us along a pathway to deal more effectively from dilemmas.
- To enhance the tolerance capacity & courage.
- To make the responsible citizen.

Human Ethical Values and the role of educational institutions

Human Ethical Values are the features that guide people to take into account the human element when one interacts with another human. They have many positive characters that create bonds of humanity between people and thus have value for all human beings. They have strong positive feelings for the human essence of the other. These human ethical values have the effect of bonding, comforting, reassuring, and procuring serenity. Human ethical values are the basis for any practical life within society. They build space for a drive, a movement towards one another, which leads to peace. In simple terms, human values are described as universal and are shared by all human beings, whatever their religion, their nationality, their culture, and their personal history. By nature, they persuade consideration for others. Common human values are brotherhood, friendship, empathy, compassion, love, openness, listening, welcoming, acceptance, recognition, appreciation, honesty, fairness, loyalty, sharing, and solidarity, civility, respect, and consideration.

Human Ethical Values are regarded enviable, imperative and are apprehended with high esteem by a particular society in which a person lives. Human Ethical Values give meaning and strength to an individual's character by occupying a central place in his/her life. They reflect one's personal attitude and judgments, decisions and choices, behavior and relationships, dreams, and vision. These values influence our thoughts, feelings & actions and guide us to do the right things. Human Ethical Values are the guiding principles of life that contribute to the all-round development of an individual. They give a direction to life and thus bring joy, satisfaction, and peace. Human Ethical Values add quality to life. Thus, one might say that any human activity, thought or idea, feeling, sentiment or emotion, which promotes self-development of an individual, constitutes a value.

Human Ethical Values may vary from one society to another and from

time to time. But every society abides by certain moral values and these values are accepted by all the societies as "Global values". The value system is the backbone of the society. Role of educational institutions in inculcating values: Value education is important to help everyone in improving the value system that he/she holds and puts it to use. Once one has understood his/ her values in life he/she can examine and control the various choices he/she makes in his/ her life.

In school, children are affiliates of a small society that exerts a great influence on their moral development. Teachers serve as role models to students in school. They play a major role in inculcating their ethical behavior. In ancient India, the Vedas, the Upanishads, the Epics manifested and upheld the values of Indian society. More importance was given to morality, honesty, duty, truth, friendship, brotherhood, etc. They were the themes of Indian culture and society. Imparting value education and reforming society were the only aims and objectives of the teachers of ancient age.

But in the present scenario, due to manifold changes in various aspects of our civilization such as population explosion, advancement in science and technology, knowledge expansion, rapid industrialization, urbanization, mobilization, IT revolution, liberalization, privatization & globalization as well as the influence of western culture, present society has become highly dynamic. The modernization process is accompanied with multifold problems, anxieties and worries to human life, endangering its original simple nature.

Growing global poverty, pollution, hunger, disease, unemployment, unsociability, caste system, child labor, gender inequality, ill-treatment of women, violence, disability, exploitation of natural resources and many such evils have caused value- crisis on the globe, adversely affecting the core human values such as honesty, sincerity, morality and humanity and, as such, there is a great transition in human society. To overcome the problems of the present era, inculcation of values among individuals and promotion of values in educational system, as well as society, is highly essential.

The prime concern of education is to evolve the good, the true and the divine in man so as to establish a moral life in the world. It should essentially make a man pious, perfect and truthful. The welfare of humanity lies neither in scientific or technological advancements nor in acquisition of material comforts. The main function of education is to enrich the character. What we need today more than anything else is moral leadership founded on courage, intellectual integrity and a sense of values. Since education is a powerful instrument of social

change and human progress, it is also a powerful tool to cultivate values in an individual. Therefore, all the educational institutes have greater responsibility to impart learning and cultivation of values through education.

Role of Teacher in Imparting Human Ethical Values in Education

The "Learned teachers" are like sign posts in the road, to tell you where the road leads to.

- The teacher should help the students achieve their full potential and bring out the best in them.
- Be able to lead them towards a better tomorrow.
- Most important of all must be loving and sincere.

Aren't imparting values the responsibility of parents? Yes, it is. But teachers and schools play a big role too.

- Students spend more time in campus.
- Campus forms the bridge between the Home and the Society.
- It is in Schools and later in the colleges that students learn how to behave in the society.
- It is in schools and colleges that a good human ethical value system can be nurtured.

"A teacher's purpose is not to create students in his own image, but to develop students who can create their own image".

Teachers are role models for the students. Their actions convey more than their words. Students learn values from what the teachers are rather than from what they say. Teachers make a maximum impact on the personality of a student in the formative years. Students imbibe virtues and vices knowingly and unknowingly from these role models. Teachers demonstrate the appropriate behaviour of their students by their actions.

Teachers must have healthy attitude and should possess rich human ethical values. Teaching is all about attitude positive/negative towards their job of imparting quality education. Teacher should act as a friend philosopher and guide. A teacher not only a source of information but it also a mentor and guardian. Forth is teacher must respect the teaching profession, love her subjects and students. Students will seek inspiration from teachers who have high self-esteem.

A decade back or so the role of a teacher was limited to being a source of information. But today this place is shared by books, coaching classes, multimedia technology etc. So the role of a teacher is marginated role of a teacher has increased manifold. In modern times we are experiencing transition. A teacher can maintain values and nurture them. A teacher has an immense potential of bringing

about a sea change in the society by demonstrating essential values of head and heart. Teacher can impart values in student's by giving them instructions through decisions experimentation and lecture and by the following mentioned ways.

- Teachers can maintain a case study register to closely observe the students and note down the positive and negative traits of their personality.
- By organizing cultural and sports event values like team spirit, sharing, spirit of cooperation, patience, courtesy etc can be imparted.
- National and religious festivals must be celebrated to foster a feeling of homo-gently.
- "Thought for the Day" should be employed in assemblies. Moral thoughts trigger in them moral thinking.
- Teachers should give importance to cooperative learning.
- Skits, role plays propagating moral values can be performed by students under the guidance of teacher.
- Teacher must tell the students to go to the libraries-the treasure house of knowledge.
- Teachers must explain the students the importance of meditation & yoga practices.
- Impart knowledge of foreign languages to make them know different cultures.
- Organize games, excursions, visit to places of historical importance. Club activities like nature club, literary club, wildlife prevention club, social service camps, blood donation etc.
- Suicidal tendencies in students should be cured. They must be prepared by the teacher to face the challenges of life fearlessly and with courage.

Conclusion

Thus, teachers play an important role in the nation building by character building of the students. The best and the greatest profession in the world is that of a teacher, because the future of a nation depends upon the type of teachers who shape the future generations. Every teacher plays the most important role in shaping the students as enlightened citizens. Swami Vivekananda's words should not be forgotten by the teachers, "Arise, Awake and Stop not till the goal is achieved."

References

Ahmed Z, Bikal K, Khan A, Riaz N (2015), The impact of Emerging Technologies on Human Values, International Journal of Care Engineering & Management, Vol.1, Issue 12, ISSN:23489510

Dr. Gururaj Karajagi, Role of Teachers and Parents in Imparting Values

Jyoti Kumta, Value Education: What can be Done

Pamela Yousuf, Imparting Value Education

Prof. Prasad Krishna, Education in values- Strategies and Challenges for Value Education

Radovan, M (2013), ICT and Human Progress, The Information Society: An International Journal, 10.1080/01972243.2013.825686

Sharma H.K (2022), Role of ICT in Value based Education: A conceptual study, Peer reviewed & Referred Journal, Nov.-Dec. 2021, Vol.9/68, 16102-16107, ISSN:2278-8808

Swami Nikhileshwarananda, Teacher- As A Torch-Bearer of Change.

Endnotes:

http://www.tandfonline.com

http://www.slideshare.net

http:risingkashmir.com

http://www.iedunote

www.educationhp.org/education-board-2013/Cahpter 9.pdf.

www.sssieducare.org/Valueeducation

Pala performing art of India based on the Ramayana Theme:A Study

***Dr Tridib kr Goswami, ** Himanshu Sharma, *** Dr Jagadish Patgiri**

Abstract

Pala plays a pivotal role as a media of focusing different themes of the Ramayana among the people of the upper and lower starta of India and aborad. The Ramayana has the immense influence on the cultural life of the people of India. In a sense, the epic has established a class of tradition of its own and has spreaded the high morality and dignified ideology amongst the people of India. Saint poet Valmiki was directed by Brahma to compose the Rámáyana and made the following prediction:

Yábat sthasyanti girayah saritáshwa mahitale
Tábat rámáyanie katha lokesu prachárisvati

(The story of the Ramayana shall be prevalent in the world till the mountains stand like guard and the rivers continue to flow)

***Keywords :** Pala,Ramayan,gan etc.*

Objectives:

1. To know the folk elements of pala performing art .
2. To know the Ramayana themes of Pala- performing art.

Methodology:

Descriptive methodology is applied here to analyse the subject and necessary references have been made where applicable.

Introduction:

In the fourteenth century, the learned Kachari king of the ancient Barahi Kingdom[2] brought Madhava Kandali and extended all facilities to do the literal translation of the Sanskrit Ramayana into Assamese verse. Kandali did it accordingly and since that time the Ramayana has been influencing on the life of the people of Assam. Later on, literal translation of the Sanskrit Rámáyana into Oriya was done. Consequently, tremendous impact of the Ramayana is seen in the life of the people of Orissa also.

The Impact of the Ramayana is

*Selection Grade Professor in English, Batadraba Sri Sri Sankaradev College,Nagaon, Assam.
** PhD Scholar.
*** PhD Guide and Supervisor.

immense in the greater Assamese and the Oriya society. It enriches both the Assamese and Oriya literature. On the other hand, the poems of the Ramayana have distinctly appeared in the performing folk-art-forms such as Kushan- gán, Bhari-gán, Raiman, Ojápali, pálá-gán etc. And this pálá-gân is found prevalent in both the states i.e. Assam and Orissa.

Findings and Discussion:

In Assam, the term pálá-bháoná takes the place of pálá- gân and this pálá-bháoná is also popularly known to the people of Assam as pálá. But in Orissa the term pálá-gán remains same and continues as a source of entertainment like chhou-gán and Danda nât among the Oriya people.3

The pálá-performance presents theme from three sources. Those are The great epic tradition, the folk-tale tradition and the modern tradition. The Ramayana theme is very popular in the both states as its story is known to the common people. The Ramayana theme includes – Taraka-vadha (killing of Taraka), Haradhanu Vanga (Breaking of Haradhanu), Sita Haran (Abduction of Sita), Vali-Vadha(killing of Vali), Ravan-Vadha (killing of Ravana), Sitar Vanawasha (Banishment of Sita), Ramar Ashwamedha Yanja (Ashwamedha yanja of Ram) etc. These are the commonly performed themes of pálá-performance which are taken from the Ramayana. These Ramayana themes attract both the eyes and heart of the audience because of its impact upon the people of India. And although, it can be considered as the adventure of Rama, but in reality, it is more than that. The Ramayana, strictly speaking, is the guide of a man who starts his life at zero point and is willing to go to the last. It is a companion and can provide solutions of problems to the people, who feel frustrated, alienated and consider life as the only reflection of nothinglessness and absolutely vacuum. It is not easy for the common people to read out all the pages of the Ramayana, excepting a few. To these people, pálá-performance clears the picture that Rama is the hero and the only hero of the Ramayana, and who has link with each and every episodes of the epic. A minuate investigation of the main themes of the Rámáyana is necessary which are considered as the main story of pálá- performance in Assam and Orissa and which also bring Valuable messages to the people who enjoy the folk-art-form heartially.

A brief discussion of the Rámáyana theme of pálá- performance helps to know the living-performing art-form.

1. Taraka-Vadha: King Dasaratha sent his sons Rama and Laxmana with Visvamitra to keep his hermitage free from evil powers. Ram killed Taraka, the daughter of Suketu, who possessed the power of thousand elephants and who for the curse of Angustya, became a very dangerous demon and

destroyed anything before her. So, for creating peace, Rama killed Taraka and rescued Visvamitra from evil powers.

2. Haradhanu-Vanga:- Janaka, the king of Mithila, got the Haradhanu (Bow offered by Siva) from his fore-father Devrat. Sita was his daughter and Janaka confirmed his mind that he would offer his daughter to a man who could fix the string of Haradhanu, Rama could do it easily and unfortunately, Haradhanu broke itself in its midst.

3. Sita-Haran:- Sita was abducted by Ravana while she was alone in the Janasthan (name of the forest) Ravana came to Sita as Sainyasi and she could not understand Ravana's mentality and consequently she had to spend a period of mental and physical torture.*

4. Vali-vadha:- Vali, the king of Kriskindha, was killed by Rama in a battle between Sugriva and Vali, and Ram was unseen from Vali Ram's act of killing Vali was not just but he did so only to disburden Sugriva in attaining his crown of Kriskindha?

5. Ravan-Vadha: Ravana, the king of Lanka, was killed by Ram, sonOf Dasaratha, husband of Sita, and a part of Vishnu for his act of kidnapping Sita. Rama's act of killing Ravana, created peace to Tribhuvana 10

6. Asvamedha yanja: The character of Sita, the leading woman of the story has also been projected in such a way that most of the people will be memorized by her ideal role as daughter, as wife and as mother, which have been inducing a lasting impact on the ignorant, simple masses. After Sita's exile in the forest an Asvamedha yanja was to be performed where the presence of the wife of the king was all the more important. In order to fill the sit of Sita a statue of Sita was put beside Rama to perform the function."

6. Sitar Vanavása : Sita had been left out deep inside the jungle at the advanced stage of her pregnancy to satisfy the masses for saving the honour of Rama. Against the order of Rama, none could dare to challenge. And while Laxamana dared to oppose then Rama said:

Ráme bulilanta páce bacana bicátá
Sitáka rákhibi jebe áge moka kkátá//12

i.e., Rama speaks to Laxamana: I should be cut into pieces, provided Sita is kept in resort.

Conclusion:

Above cited Rámáyana-themes of pálá-Performance play a very significant role in moulding the life of the people of India in general and of Assam and Orissa in particular as a media of instruction and morality. It brings pleasure and happiness to the mind of the audience as a source of relief amidst the different tensions of modern day-to-day life. On the contrary, its impact upon our life is everlasting as it guides us with valuable teachings like-humanity,

brotherhood, duty and sacrifice and it reflects philosophy, religion, morality and psychology of Indian people.

Footnotes and References and informants:

1. Ramayana Mahatmya 1/2/36.
2. Maheswar Neog Asamiya Sahityar Ruprekha, Lawyers Book Stall, Guwahati, 1962.P.52.
3. Informant Yudhisthir parida, 51, Jagannathpur, Khurda, data collected on 27-03-09
4. Informant: Bisnu Kundu, 53, Bhubaneswar data collected on 26-03-09.
5. From the Lecture delivered by Indira Goswami, 3rd International Conference on the Ramayana: The World peace and Harmony, Asom Kalatirtha, Guwahati, 19th Jan. 2008.
6. MG Gupta: Inner meaning of Ramayana and Mahabharata, M.G. Publishers, 34 Hirabagh, Colony, Agra, 2002, P45. Vishwa means world and Mitra means friend ie, friend of the world.
7. Purna Ch. Dey Kabyaratna Udvatsagar. Saptakanda kirtibashi Ramayana, Chakraborty, Chetterjee Co. Ltd. Kalikata, 3rd Edn. 1945. Adikanda P99.
8. Ibid. P.185. Aranya Kanda.
9. Ibid. P. 218, Kriskindha Kanda
10. Ibid. P. 526, Lanka Kanda
11. Ibid. P. 688, Uttarakanda
12. Madhava Kandali, Sri Sri Sankaradeva and Sri Sri Madhavadeva Saptakanda Ramayana, Uttara Kanda, 1/33 Ajanta Prakasana, Delhi, P421
13. Tridib kr. Goswami,A Comparative Study of the Pala-art form of Assam and Orissa,PhD Thesis,2009, Gauhati University.

Representation of Masculinity in Popular Punjabi Song Lyrics

Kiranpreet Kaur

Abstract

Media often reinforce traditional gender roles and expectations however media is not the sole determinant of gender construction but media's pervasive presence and influence can significantly shape societal perceptions and expectations related to gender. The study focuses on how the lyrics of popular Punjabi songs' represent masculinity. The study involves thematic lyrical analysis of 30 Punjabi songs in order to explore the current behaviours expected by men. Results reveal that men who possess the traditional qualities associated with masculinity are celebrated. Glorification of the use of weapons, violence, accumulation and display of wealth, casteism, and misogyny are the key themes of Punjabi lyrics.

Keywords: *Gender, Masculinity, Media, Punjabi Songs, Stereotypes, Casteism.*

Introduction

Media has the potential to influence the socio-cultural makeup of a society. Masculinity and music have a complex relationship and are often associated with expressions of gender. Certain genres of music are regarded as much more masculine than others for instance hip-hop and heavy metal encompass more masculine traits like aggression, violence, and display of confidence. The study explores how masculine identities are formed in Punjabi songs Punjabi music industry as a colour of its own, the songs are usually non-film created independently by the artists free from any restrictions of a script. The construction of masculinity in Punjabi media, like in many other cultural contexts, is shaped by a combination of traditions, values, norms, societal expectations, and contemporary influences. Punjabi media, including oral traditions, literature, movies, songs, and television, plays a significant role in constructing and shaping perceptions of gender roles and behaviours. Punjabi culture has deep-rooted traditions that emphasize attributes such as strength, valor, bravery, and honour. These traditional

Research Scholar, Department of sociology, Guru Nanak Dev University

values greatly shape the expectations of gender performance in the region, for instance, the values that were greatly valued in Sikhism greatly impacted the perceptions of Punjabi masculinity, these definitions were further solidified during British rule. With changing times, there is a shift in societal norms and expectations. Globalization, migration, and exposure to Western media greatly impacted the construction of masculinity in Punjabi media. The intermixing of global and local trends contributed to a more diverse and inclusive representation of masculinity.

The recipe of a contemporary pop Punjabi song consists of a land-owning Jatt who is trying to establish his hegemonic masculinity in a patriarchal society using slurs and guns and is on the way to seek revenge on his luxury car. He is a righteous man who is ready to sacrifice his life to protect the honour of women and the core values which he holds. Sevea (2015) writes that the protagonist is always in search of an enemy to prove his masculinity. Up till the 90s the focus of Punjabi media was a macho hero in a rural background who loved his land dearly and used traditional weapons to defeat his enemies. Gill (2012) saw 'the transition of Jatt protagonist from regional to transnational'. The movement of Jatt was not limited to from rural to urban areas but to transnational spaces. The rise in migration of Punjabis abroad brought a new character to Punjabi media. Movies like Jee Ayaan nu, Munde UK de, Asan nu Maan Watna da, Mitti Wajjan Mardi , Dil Apna Punjabi catered to the Punjabi diaspora who moved to transnational spaces but dearly miss their homeland. The backdrops of songs changed from rural to urban spaces. The combined forces of migration, globalization, and liberalisation added a new dimension to the Punjabi industry. Since music and videos were produced in studios set in a foreign land it became more westernized. Along with music Punjabi videos saw a rise in consumer goods.

Lyrical analysis of Punjabi songs

For the sake of understanding masculinity in Punjabi music a focus on two of the most popular singers is taken into consideration. Diljit Dosanjh began his career in 2002 but gained popularity with his album Smile in 2005. Sidhu Moosewala on the other hand was heavily inspired by rapper Tupac Shakur and released his first song in 2017 while studying as an international student at Brampton. On 15 May Sidhu released a song 'The Last Ride' to pay homage to his idol who died because of gunshots shot at him while he was in his car, two weeks later Sidhu Moosewala faced a similar fate. The popularity

and political relevance of Sidhu rose after his death. Syl released after his death on YouTube gained a massive audience and later got removed from YouTube. Both singers have gained recognition from international platforms and have gained a lot of popularity.

The study aims to understand the popular depiction of masculinity in Punjabi songs through major themes identified in its lyrics. There exist multiple and varying forms of masculinity in Punjabi media but the selected singers and their songs have gained a wider audience in recent years. Since music reflects society there is a demand and supply relation between the songs released it can be assumed that these reflect the dominant forms of masculinity. The songs are chosen keeping in mind two main points one being Songs in which certain aspects of masculinity are highlighted and a high viewership on YouTube. Along with the analysis of lyrical content the songs which had their videos available were also examined thoroughly to get a better understanding of the context in which lyrics are placed.

Table No.1: List of Selected Songs

Serial number	Title of song	Views on YouTube in millions
1	Gulabi Pagg	72
2	Goat	220
3	Clash	105
4	Born to shine	228
5	High end	110
6	Putt jatt da	139
7	Mucch	99
8	Do you know	262
9	Veervar	118
10	5 Taara	204
11	El Suneo	46
12	Vibe	42
13	Chauffer	61
14	Lover	105
15	Peed	57
16	Dark love	161
17	Tochaan	330
18	Issa Jatt	80
19	Its all about you	106
20	Dollar	199
21	Sohne lagde	150
22	Trend	26
23	Jatt Da Mukabla	113
24	Same beef	493
25	So high	668
26	Goat	222
27	Last ride	231
28	Brown shortie	79
29	Levels	209
30	Tibeyan da putt	220

Findings and Discussion

Violence has been a key theme of Punjabi music, it might be used to win over an enemy, lover or used against the administration. The opportunities and ways to use violence are endless. The constant glorification of violence in Punjabi songs desensitizes people of the reality and what consequences violence brings along. It normalizes to an extent that violence becomes

acceptable and sometimes even desirable. Looking back Punjab always had a reference to weapons in ballads and songs. Wartime ballads were very popular and the purpose was to boost the morale of the fighters. It was during the 1970s that Punjab witnessed a newly formed gun culture. S.S Gill (2013, p.170) writes that "the culture of armed guards and rash driving is a legacy of the terrorist phase of Punjab" as during this phase political leaders at risk were allowed to carry guns. Today there are a total of 3,73,053 arms licences in Punjab . The use and display of guns in music videos has made them a symbol of power and fashion. Further taking risks is often associated with the presence of qualities like courage and strength in an individual. The willingness to encounter uncertain dangers and risks is linked with traditional masculinity. Lyrics in Punjabi songs often present men as risk-takers and who do not fear anyone. This recognition often leads men to participate in such activities to establish their identity as a manly man. Punjabi songs have played their part in making these markers of masculinity more embossed.

Out of the 30 songs which were lyrically reviewed 27 of them had the word 'Jatt' in them. The historical reference of Jat was found during the period of the fifth Sikh guru Arjan Dev. "Caste, as an institution, has largely been perceived as either absent or insignificant in Punjab because of its association to Sikhism, an egalitarian religion which emerged in the backdrop of, and in response to, the flaws of Hinduism, including caste untouchability, superstition, ritualism, and orthodoxies. Sikhism emerged as a critique to the Brahminical Hindu religion which had a rigid caste system based on the idea of purity and pollution" (Singh, 2017). Several majha jats converted into Sikhism to uplift their position in the caste hierarchy. 'Physical toughness, bravery, courage, loyalty, self-respect, and equality are some basic characteristics of jats' (K.S Singh, 2003). The idea of jatts as a martial race solidified during the British period as they believed in the idea that certain castes are 'inherently more warlike' than others. One-fifth of the total recruitment during World War I was from Panjab. The status of this group begins to rise and a struggle began by the lower castes to be recognized as a martial race or the 'chosen castes' so they could join army. There was a differentiation between martial races and non-martial castes. The martial race had masculine qualities such as courage and sacrifice whereas the non-martial caste was termed as 'cowards and effeminate'(Chowdhry,2013). This divide further aggravated the differences between North and South Indians. 'Jatt Sikhs, the landed caste of Punjab, continued to monopolise

public spaces. The dominant caste status of the Jatt Sikhs is a function of a composite set of conditions, including their numerical strength (one-third of the state's total population), ownership of land (more than 80% of the available agricultural land is owned by them), dominant stakes in agriculture, and status as a historically martial race, among others' (Singh 2017). The relationship between dominant caste and masculinity is clearly depicted in these songs. The interrelations between hegemonic and subordinate masculinity is also present which seem to be unequal. The protagonist is the saviour having strong core values and the enemies as the inferior ones having no moral values. In opposition to the flourishing Jatt music rose Dalit music often referred as 'chamar pop' (Singh, 2018).

The true worth of a women is often calculated in terms of her beauty whereas for men the measuring unit to calculate their value is wealth. Siddiqui in his study of sexist Bollywood songs (2020, p.130) highlights that "money as the only determinant of men's attractiveness can misguide our country's youth by disseminating the false message that character, values, morality, intelligence and other individual traits are not important for a man, to be desirable." There are various ways in which wealth is flaunted in lyrics as well as videos of Punjabi songs. Cars form an integral part of the music videos as well as the lyrical content of the songs. Most of the songs have cars as a major status-defining object. Flashing luxury cars in music videos depicts the success these singers have attained. Whether to impress women, kidnap enemies, or to show off status one way or the other cars make a place in the lyrical as well as video content of the songs. Lamborghini, Porsche, Range Rover, Mustang, and Rolls Royce are a few to name. The music videos are filled with cars to attract the youth who yearn to own these cars. Craig (1992, p.425) argues that men are trying to "symbolically reaffirm their status as real men through compensatory consumption. Songs like Jatt da muqabla, Goat, Chauffer have numerous luxury racing cars as a main element. Traditionally men dressed in vibrant kurta pyjama and turbans adoring traditional jewellery. Nowadays the music industry has evolved to fusion between traditional and western clothing the reason for westernization of Punjabi music is migration to the west and liberalization of the economy. Kentha got replaced by Gucci dapper dan necklace and the dazzling kurta pyjama are replaced by vibrant shirts and oversized jackets costing over lakhs. The obsession of owning and wearing luxury brands is not only limited to videos but its influence can be seen in lyrics for instance Roli layi gutt te (wearing a Rolex on my wrist) ,

paira wich yeezy munda rehnda bahla busy (Wearing Adidas Yeezy shoes in the feet, the boy is pretty busy), gal wich paya 40 lakh bolda (wearing 40 lakh worth neckpiece). “Dressing for success took the point to the extreme as the acquisition of the "power look" came to precede the acquisition of power itself” (Barthes,1983, p.139). Accumulation and depiction of wealth through owning luxury cars and clothing seems to be the new trend.

Another important theme in Punjabi songs is the portrayal of love which often has an undertone of violence. A lot of verses highlight how men try to persuade women to fall in love with them, these modes of persuasion often involve violence along with stalking and blackmailing. Adams and Fuller (2006, p.939) define misogyny as the “hatred or disdain of women” and “an ideology that reduces women to objects for men’s ownership, use, oral abuse.” Another noteworthy mode of persuasion is the use of expensive cars to woo his love interest. this is evident from verses like, Tere piche mai mustang lai layi (I bought mustang because of you), Tesla truck balliye tere layi layaya mai kadha ke (You are the reason I got tesla).

Masculinity is often associated with being able to control and suppress their emotions. Seidler (1994, p.29) writes “Within a liberal moral culture we are so used to treating emotions and feelings as if they are signs of weakness that it is hard to share with others without feeling that we are not letting ourselves down. Men probably feel this more intensely since they are used to identifying male identity with a vision of reason and self-control. Lyrics of the analysed songs see men as an individual who does not express his emotions since it is viewed as a sign of vulnerability. The following verses highlight this: Muho bht bolde aa ghat issa jatt (this man speaks very little), Muhan utte rakhde aa chup Balliye (keeps quite on their face). For Seidler (1989, p.80) language is used by men as a weapon for ‘self-assertion’. It is used as a tool to hide feelings and vulnerabilities and project a desirable image in front of others.

Conclusion

The objective of the study was to analyse how Punjabi music lyrics endorse masculinity. No doubt Punjabi music industry has singers like Satinder Sartaj and Amrinder Gill who portray a non-problematic image of a man however the number of singers who project a problematic kind of masculinity are many and more popular. The type of content produced depends on various social cultural and economic variables. music is linked with social processes such as globalization, the creation of identity and the reproduction of inequality, and social movements (Dowd, 2007). The lyrical analysis of these 30

Punjabi songs reveals that the lyrics of these songs strengthen the traditional definitions of masculinity. Men are portrayed as aggressive and dominant. The study implies that how in times when the media messages are seeping into young minds and it is becoming difficult to separate real life from reel life these songs have negative repercussions for both men and women. The depiction of man as an alpha male who is afraid of no one and is not worried about the consequences of his actions is worrying. Money can buy cars, and brands as well as women shows a sexist and misogynist approach towards women. Media plays a crucial role in maintaining gender stereotypes however it holds the power to change these existing definitions and help in breaking these gender stereotypes.

References

Adams, T. M., & Fuller, D. B. (2006). The Words Have Changed but the Ideology Remains the Same: Misogynistic Lyrics in Rap Music. Journal of Black Studies, 36(6), 938–957.

Barthes, R. (1983). The fashion system. New York: Hill and Wang.

Chowdhry, P. (2013). Militarized Masculinities: Shaped and Reshaped in Colonial South-East Punjab. Modern Asian Studies, 47(3), 713–750.

Craig, S. (1992). Men, Masculinity and the Media. California, CA: Sage Publications.

Dowd, T. J. (2007). The Sociology of Music. In C., D. Bryant, & D., L. Peck (Ed.), 21st Century Sociology: A Reference Handbook (pp. 249-260). Thousand Oaks, CA: Sage Publications.

Gill, H. (2012) Masculinity, Mobility, and Transformation in Punjabi Cinema: From Putt Jattan De (Sons of Jat Farmers) to Munde UK De (Boys of UK). South Asian Popular Culture, 10 (2), 109-122.

Gill, S. S. (2013). Gun Culture in Punjab. Economic and Political Weekly, 48(8), 16–18.

Gill, H. S. (2022). Transnational hair (and turban): Sikh masculinity, embodied practices, and politics of representation in an era of global travel. Ethnography, 23(2), 226–248.

Seidler, V.J. (1989). Rediscovering Masculinity: Reason, Language, and Sexuality. London: Routledge.

Seidler, V.J. (1994). Recovering the Self, Morality and Social Theory. London: Routledge.

Sevea, I. (2014). “Kharaak Kita Oi!”: Masculinity, Caste, and Gender in Punjabi Films. South Asian Screen Studies, 5(2), 129–140.

Siddiqi, Nasrina. (2020). A Thematic Analysis of Sexist Bollywood Songs. Multidisciplinary Journal of Gender Studies 9(2), 113-136.

Singh, S.K. (2017). The caste question and songs of protest in Punjab.The Economic and Political Weekly, 52(34),33-37.

Singh, S.K. (2018). Dalit Politics and its fragments in Punjab: Does religion hold the key? The Economic and Political Weekly. 53(35), 32-36.